ब्रजविदेही चतुःसम्प्रदाय श्रीमहन्त

श्री १०८ स्वामी श्रीसन्तदास काठिया बाबाजी महाराज का

जीवन चरित्र

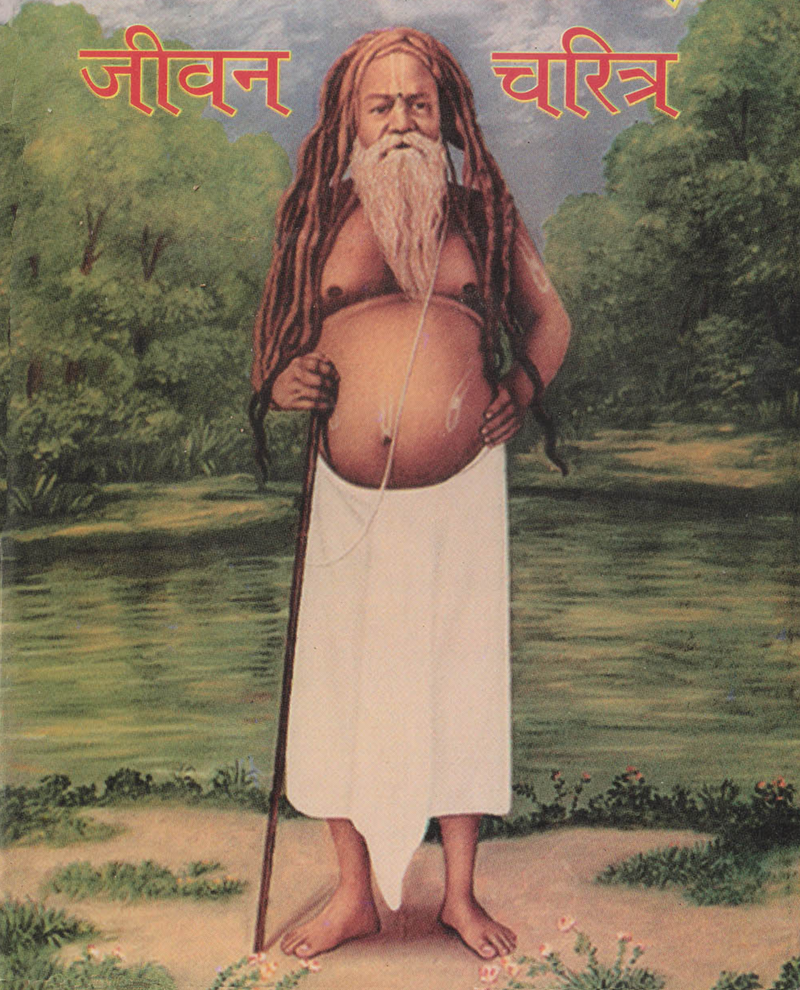

।। ॐ हरिः ।।

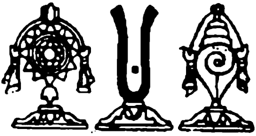

व्रजविदेही तथा चतुःसम्प्रदाय के श्रीमहन्त

श्री श्री १०८ स्वामी सन्तदास बाबाजी महाराज

का

जीवन-चरित्र

उन्हीं के शिष्य

व्रजविदेही श्री महन्त

श्रीमत् स्वामी धनञ्जयदास काठियाबाबाजी महाराज

तर्क-तर्क-व्याकरणतीर्थ,

द्वारा लिखित

❑ **प्रकाशक :**

श्रीकाठियाबाबा चैरिटिबल ट्रस्ट
काठियाबाबा का स्थान
गुरुकुल रोड, पो. वृन्दावन
जिला मथुरा (उ.प्र.)

❑ **प्राप्ति स्थान :**

१. **काठियाबाबा का स्थान**
गुरुकुल रोड, वृन्दावन (मथुरा)
२. **काठियाबाबा आश्रम**
सुखचर, जिला चौबीस परगना, पं. बंगाल

❑ **द्वितीयावृत्ति :**

५०० प्रतियाँ

❑ **मूल्य :**

पैतालीस रुपया मात्र

❑ **मुद्रक :**

खेतान कम्प्यूटर ग्राफिक्स
पत्थरपुरा, वृन्दावन
फोन : (०५६५) ४४४६७२

ॐ श्री श्री गुरवे नमः

भूमिका

परमाराध्य श्री गुरुदेव ब्रजविदेही महन्त श्री १०८ स्वामी सन्तदास बाबाजी महाराज का जीवन-चरित्र उनके यह दीन शिष्य ३७ वर्ष पूर्व बंग भाषा में लिपिबद्ध कर, सन् १६४० में छपाकर प्रकाशित किया था। उसकी सभी प्रतियाँ समाप्त हो जाने पर उनका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित करने के लिये बहुजन अनुरोध करते जा रहे थे। मेरे गुरुभ्राता मथुरा के सुप्रसिद्ध मोक्तार स्वर्गीय बनवारीलाल भटनागरजी की कन्या श्रीमती शीला ने हमारी आज्ञा से विशेष परिश्रम करके कुछ संक्षेपाकार में इसका हिन्दी भाषा में अनुवाद कर उसे मेरे पास भेज दिया। उसे प्रकाशित किया गया। उम्मीद करते हैं कि हिन्दी भाषाभिज्ञ व अध्यात्म प्रेमी पाठक इस संक्षिप्त जीवन-चरित्र के पाठ से लाभ उठायेंगे तथा आनन्द लाभ करेंगे। सम्पूर्ण मूल जीवनी का अनुवाद भी श्रीमती शीला कर चुकी हैं, मगर उनका मुद्रण अधिक निधि की जरूरत के कारण यह संक्षिप्त अनुवाद ही प्रकाशित किया गया।

श्रीमती शीला एम. ए. पास तथा पी-एच.डी. कर रही थी एवम् वे बंग भाषा में अभिज्ञ होने से हिन्दी भाषा में अनुवाद कर सकी है—इस महान कार्य में उसके श्रम के कारण उसे मैं बहुत-बहुत आशीर्वाद कर रहा हूँ। श्री भगवत्कृपा से उनका यथार्थ कल्याण होवे, ऐसी आशा है।

श्री वृन्दावन — **श्री धनञ्जयदास काठियाबाबा**

महालया, सम्वत् २०३४

प्रकाशक के दो शब्द

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के ५५तम आचार्य एवं हमारे गुरुदेव चतु:सम्प्रदाय के श्रीमहन्त तथा ब्रजविदेही महन्त श्री श्री १०८ स्वामी सन्तदास काठिया बाबा ब्रह्मज्ञ महापुरुष थे। मेरे श्रीगुरु महाराज जब संसार-आश्रम के विपुल यशः मान-प्रतिष्ठा त्यागकर श्रीवृन्दावनधाम पहुँचे—उनके यह अचिन्त्य अभूतपूर्व त्याग से तदानीन्तन शिक्षित समाज में हलचल मच गयी थी। अनेकों जन उनके प्रति विशेष श्रद्धायुक्त होकर आकृष्ट होने लगे। उनकी मर्त्यलीला के अवसान के पश्चात् मेरे परम श्रद्धेय गुरुभ्राता चतु:सम्प्रदाय के श्रीमहन्त एवं ब्रजविदेही महन्त श्री श्री १०८ स्वामी धनञ्जयदास काठिया बाबाजी महाराज ने उनका यह 'जीवन-चरित्र' बंगला भाषा में लिपिबद्ध कर उनके पूतजीवन की सर्वांगसुन्दर इतिवृत्त प्रकाशित की एवं सहस्र-सहस्र शान्तिकामी नर-नारियों ने उनको आभार भी प्रदर्शन किया। उनका द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हो चुका है।

परमाराध्य श्रीगुरुदेव का एकमात्र प्रामाणिक यह 'जीवन-चरित्र' हिन्दी भाषा में प्रणयन के लिये अध्यात्म प्रेमी हिन्दीभाषी प्रान्तों की जनता विशेष आग्रह प्रकाश कर रही थी। मथुरा के सुप्रसिद्ध मोक्तार हमारे गुरुभ्राता स्वर्गतः बनवारीलाल भटनागरजी की कन्या श्रीमती शीला जी जोकि बंगला भाषा में विशेष अभिज्ञ होने के कारण यह महान् जीवनी की हिन्दी भाषा में अनुवाद संक्षिप्ताकार में विशेष प्रेम के सहित सम्पादन कर मेरे पास भेज दी। महाराज श्री की यह पूतजीवन-चरित्र-प्रेमियों के आग्रह के कारण हिन्दी भाषा में इसका पहला संस्करण प्रकाशित कर स्वयं को बहुत ही धन्य मान रहा हूँ। इति-

निवेदक
श्रीगुरुचरणाश्रित दीन सेवक
श्रीमनोहरदास काठिया

श्रीवृन्दावन
कार्तिक पूर्णिमा
विक्रम सम्वत् २०३४

"वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्"

अनन्त श्रीविभूषित महापुरुष स्वामी सन्तदासजी बाबाजी महाराज जी का अमृतोपम जीवन-चरित्र मानवमात्र के लिए अनुशीलन करना परम अपेक्षित है। यह लोकोत्तर व अनुपम जीवन-चरित्र व्यावहारिक वेदान्त तथा शास्त्रस्वरूप है। शास्त्रों में त्रिगुणात्मक मायाजाल से निकालने के लिए जो सरल संस्कृत भाषा निबद्ध श्लोकात्मक उपदेश निहित हैं, वही ज्यों के त्यों मानवजीवन में उतारने वाले जीवन्त महापुरुष को जो जानना चाहते हैं व उनके जीवन-दर्शन से परिचित होना चाहते हैं, तो काठिया बाबा स्वामी सन्तदासजी महाराज के दिव्य जीवन-चरित्र का अनुध्यान करें। गार्हस्थ्य-जीवन तथा संन्यास-जीवन में शास्त्रानुकूल आचरण व सद्जीवन निर्वाहात्मक सदुपदेश इस जीवन-चरित्र में सम्यक् उपलब्ध हैं, जो अन्यत्र सुदर्लभ हैं। वर्तमान समय में भारत तथा पृथ्वी में हर मानव जाति की मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा दैहिक परिस्थिति बहुत ही दयनीय हो गयी है। चारों तरफ अशान्ति परिव्याप्त है। जनमानस अतिशय चंचल है। ऐसी दुर्दशा में मानवमात्र के लिए महापुरुषों के जीवन-संग की परम आवश्यकता है। महापुरुषों के सदुपदेशरूप सत्संग से ही मानव-समाज की उन्नति हो सकती है, ऐसी ही शास्त्रों की मान्यता है। श्रीभगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा है-"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कायाकार्य व्यवस्थितौ, तस्माच्छास्त्र विधानोक्तं कार्यं कर्त्तुमिहार्हसि।।" महापुरुषों की दिव्य वाणी तथा जीवन-चरित्र ही एक मात्र जीवन्त शास्त्र ही है।

अस्तु, प्रस्तुत जीवन-चरित्र का पठन-पाठन से परम सत्संग का लाभ हो सकता है। बाबा सन्तदास जी स्वयं शास्त्रमूर्ति थे। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण जीवन-यात्रा में शास्त्रों के सदुपदेशों को उतारा है। त्याग तथा वैराग्य के वे ज्वलन्त विग्रह थे। जो त्याग वैराग्य तथा सद्धर्म एवं सद्गुरु की परिभाषा को जानना चाहते हैं, तो बाबा सन्तदासजी महाराज के जीवन-दर्शन को अध्ययन करें। उनमें विलक्षण दार्शनिक

प्रतिभा थी। अप्रतिम आध्यात्मिक अनुभूतियाँ थी। उनके लिखित "ब्रह्मवादी ऋषि व ब्रह्मविद्या" का सम्यक् अध्ययन करने पर आप महानुभाव भली-भाँति अवगत हो सकते हैं। वे अलौकिक शक्ति सम्पन्न महान् सन्त थे। जनकल्याण के निमित्त ही वे अध्यात्म शक्ति प्रयोग करते थे। स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं। ऐसे दृष्टान्त उनके जीवन-चरित्र की हर पृष्टाओं में उपलब्ध हैं। गृहस्थजीवन व संन्यास-जीवन निर्वाह करने वाले साधकों के लिए शास्त्रों में जो सदुपदेश निहित हैं, ऐसे उभय जीवन के विविध कर्त्तव्यों को शास्त्रीय पद्धति से श्रीसन्तदासजी ने निभाया है। ऐसे साधक पृथ्वी में विरल ही दिखाई देते हैं। श्रीभगवान् कृष्ण ने श्रीमद्भगवत् गीता में कहा है-

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिताः जनकादयः"

अर्थात् जनक, वशिष्ठ आदि राजर्षियों ने निष्काम कर्मयोग द्वारा सम्यक् सिद्धि प्राप्त की थी। श्लोक के आदि शब्द से वर्तमान युग में बाबा सन्तदास जी महाराज के नाम का ग्रहण हो सकता है। उन्होंने भी प्रथम जीवन वकील के रूप में तथा संन्यास-जीवन सन्तदास के रूप में निष्काम भाव से सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए साक्षात् भगवान् कृष्ण के दर्शन कर कृतकृत्य हुए। उनका महामहिम अमृतोपम जीवन-चरित्र ही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होंने अपने सदुपदेशों द्वारा हजारों संसारतप्त नर-नारियों को मोक्ष प्राप्त करवाया। उन्होंने हजारों उपदेशों से जो जीवों को मार्गदर्शन दिये, उसकी एक झलक निम्नरूप है-हमेशा मन में यह धारणा रखना कि यह स्त्री, सन्तान, घर व पैसा जो कुछ है, वह सब भगवान् की धरोहर है। तुम तो केवल सेवक मात्र हो। सेवक तो उन सब पर अपना अधिकार नहीं जमा सकता है। वस्तुतः इस संसार में कोई सुखी नहीं है। करोड़पति व भिखारी जिससे भी पूछो, वही कहेगा मैं बहुत दुःखी हूँ। तुम लोग जिसे सुख समझते हो, वह यथार्थ में सुख नहीं है। सिनेमा व थियेटर देखने से जो सुख व आनन्द मिलता है, वह क्षणिक है। ....रुपये पाकर भी सुख नहीं मिलता है। क्योंकि रुपये भी तो हमेशा नहीं रहेंगे। ग्रीस देश में

विज्ञ सोलोन (Solon the wise) की एक कहानी है। Croasus नामक एक राजा थे, जो अत्यन्त वैभवशाली थे। वे सोलोन को अपने यहाँ महल में ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपना ऐश्वर्य दिखाया। फिर उनसे पूछा कि संसार में आप किसको सबसे अधिक सुखी समझते हैं। सोलोन ने थोड़ी देर सोचने के बाद एक किसान का नाम लिया। उसके बाद कौन सुखी है, यह पूछने पर उन्होंने अन्य किसी का नाम लिया। राजा सोच रहे थे कि इस बार तो वे मेरा नाम लेंगे, लेकिन जब उन्होंने उनका नाम नहीं लिया तो वह पूछने लगे–"मेरे बारे में आपका क्या विचार है?" इस पर सोलोन ने कहा–"I have not seen your last"। मैंने आपका आखीरी तो अभी नहीं देखा है। कुछ दिन बाद एक अन्य राजा ने इनको परास्त कर दिया। इनका धन वैभव सब कुछ छीन लिया तथा फाँसी की बात याद आई तो वह कहने लगे–"Oh, Solon, Solon, how lioly wise thow art" (हे सोलोन ! तुम वास्तव में कितने ज्ञानी हो) उनकी यह बात सुनकर प्रहरियों ने पूछा कि इसका अर्थ क्या है? तब उन्होंने सब कुछ बताया। विपक्ष के राजा ने सब कुछ सुनकर उन्हें छोड़ द्रिया। अतः संसार में कोई स्थायी नहीं है। यदि संसार में स्थायी सुख होता तो इतने महात्मा-महानुभाव संसार क्यों छोड़ते? अस्थायी वस्तु तो सुख नहीं दे सकती?

अतः ऐसे-ऐसे दिव्य शिक्षा-संवलित इस जीवन-चरित्र को आप महानुभाव पढ़ेंगे तो इस मानव-जीवन को देव-जीवन बनाने में सफल होंगे, ऐसी शुभकामना के साथ हम अपनी लेखनी को यहीं पर विराम देते हुए श्रीचरणों में प्रनमन करते हैं–वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् !

इति

दिनांक १.६.२००१
गंगा दशहरा

श्रीरासबिहारीदास काठियाबाबा
द्वारा श्रीकाठिया चैरिटेबल ट्रस्ट
काठिया बाबा का स्थान
गुरुकुल मार्ग, वृन्दावन

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय- जन्म, बाल्यावस्था, विद्यारम्भ, मातृ-वियोग, विद्या के लिये श्रीहट्ट जाना, आचारनिष्ठा और विवाह। ६

द्वितीय अध्याय- कलकत्ता में शिक्षा, ब्राह्मधर्म ग्रहण, पिता का क्रोध, एफ. ए. परीक्षा में सफलता व वृत्ति लाभ। भगवद्विषयक चिन्ता, बी.ए. व एम.ए. में सफलता, विशुद्ध नैतिक चरित्र। १५

तृतीय अध्याय- आभ्यन्तरिक परिवर्तन, योगी सम्प्रदाय से दीक्षा, शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन, मन ही मन ब्राह्म-समाज का त्याग। २५

चतुर्थ अध्याय- श्रीहट्ट में वकालत, हिन्दू-समाज में प्रत्यावर्तन। ३७

पंचम अध्याय- कलकत्ता हाईकोर्ट में योगदान और सद्गुरु लाभ। ४६

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय- वकील् के रूप में। ६४

द्वितीय अध्याय- पारिवारिक और सामाजिक जीवन। ७३

तृतीय अध्याय- साधना की ओर। १०८

चतुर्थ अध्याय- वृन्दावन आश्रम निर्माण। १२२

पंचम अध्याय- वानप्रस्थ। १२८

षष्ठ अध्याय- वृन्दावन वास। १३४

सप्तम अध्याय- संन्यास और ब्रजविदेही पद का लाभ। १६२

तृतीय खण्ड

प्रथम अध्याय- तीर्थ-भ्रमण और दीक्षादान आरम्भ। १७७

द्वितीय अध्याय- प्रश्नोत्तर। १८६

तृतीय अध्याय- साधु-समाज में बाबाजी महाराज। १६५

चतुर्थ अध्याय- श्रीसद्गुरु रूप लीला। २०२

पंचम अध्याय- चरित्र। २२८

षष्ठ अध्याय- सदाचार और आभ्यान्तरिक प्रकृति। २५३

सप्तम अध्याय- अन्तर्धान। २६६

ऊँ श्री श्री श्री गुरुवे नमः

श्री १०८ स्वामी

सन्तदास बाबाजी महाराज

का

जीवन-चरित्र

प्रथम अध्याय

आविर्भाव एवं बाल्यावस्था

श्री हट्ट जिले के अन्तर्गत हबिगंज महकमे के वामै गाँव में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का जन्म १० जून १८५९ ई० को हुआ, उस दिन गंगा दशहरा था।

वामै गाँव में चौधरी वंश एक प्रसिद्ध व सम्मानित वंश था। ये लोग प्रतापशाली जमीदार तथा धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। इस वंश में बहुत से साधक पुरुष हुए जिन्होंने अपनी शक्तिसाधना से सिद्धि लाभ की। स्वर्गीय गंगा प्रसाद चौधरी को माँ काली का दर्शन भी हुआ और उन्हीं की कृपा से सद्गुरु की प्राप्ति हुई फिर उन्होंने हिमालय पर जाकर कठोर तपस्या कर सिद्धि लाभ की। ये बाबाजी महाराज के अतिवृद्ध प्रपितामह-(पूर्व षष्ठपुरुष) थे।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के वंशजों के विषय में यह अनुमान किया जाता है कि ये लोग सोलहवीं शताब्दी के मध्य में वामैं गाँव में

आकर बसे, आदि पुरुष देशमुख्य मिश्र थे। इस वंश के स्वर्गीय हरकिशोर चौधरी निरामिष आहारी थे तथा परम वैष्णव थे। जबकि इनके सभी वंशधर शाक्त थे। इन्हीं की पत्नी स्वर्गीया गिरिजासुन्दरी के गर्भ से श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने जन्म लिया। अन्नप्राशन के समय उनका नाम ताराकिशोर रखा गया।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का लालन पालन उनके पिता की ताईजी ने किया। उन्हीं से बाबाजी महाराज ने रामायण और महाभारत की सम्पूर्ण कथा सुनी। वह बहुत ही ध्यान से यह सब कथाऐं सुनते थे। इस तरह बहुत ही छोटी अवस्था में उनको रामायण व महाभारत का आख्यान भाग याद हो गया, जो आजीवन याद रहा।

वह बचपन में बहुत ही चंचल प्रकृति के थे तथा साथ ही साथ मेधावी तथा तीक्ष्ण बुद्धि वाले थे। उनके ताऊजी श्रीयुक्त दीननाथ चौधरी उन्हें विद्याभ्यास करवाते तथा अन्य प्रकार की शिक्षा भी देते थे। उन दिनों सदाचारी ब्राह्मण के यहाँ पुत्र संतान का जन्म सौभाग्य व महत्वपूर्ण समझा जाता था, सब गुरुजनों की यही चेष्टा रहती थी कि वह शिक्षित, सच्चरित्र और धर्मनिष्ठ हो जिससे कि वंश के समस्त संस्कार रक्षित रहें।

छः वर्ष की आयु में उनका विद्यारम्भ हुआ। उनके ताऊजी दीननाथ चौधरी उन्हें वर्ण परिचय सिखाते, रिश्ते के एक बाबाजी ईश्वर चौधरी उन्हें संस्कृत श्लोक याद करवाते। इसी तरह अन्य लड़कों को भी सिखाया जाता था। फिर किसी दिन सब लड़कों की परीक्षा होती, संस्कृत श्लोकों की अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता होती जो श्लोक नहीं बोल पाता वह हारा हुआ माना जाता। इस तरह बाबाजी महाराज को बहुत

से श्लोक कंठस्थ हो गये। वह किसी भी श्लोक को दो तीन बार सुनने के बाद ही याद कर लेते थे।*

चौधरी गढ़ी के पास एक संस्कृत पाठशाला थी, वहाँ के अनेक छात्र इनके यहाँ रहते थे, वे भी इन्हें श्लोक सिखाते थे। संस्कृत व्याकरण पढ़ने वालों ने बाबाजी महाराज को संस्कृत व्याकरण के प्रथम कई पृष्ठ मुखस्थ करवाये।

प्रातःकाल साधारणतः लिखाई का अभ्यास होता था। उन दिनों की लिपि-शिक्षा आज की भाँति सहज नहीं थी। कागज पर लिखने का अधिकार काफी समय और अभ्यास के बाद मिलता था। पहले बाँस की कलम, फिर सरकंडे की कलम, फिर मोर के पंख की कलम तथा फिर अन्त में पैन मिलता था। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने प्रचलित पद्धति के अनुसार ही लिखना सीखा।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज कभी-कभी अपने बचपन की बातें सुनाया करते थे। एक बार उन्होंने हमें यह सुनाया:-

"बचपन में मेरा स्वभाव बहुत ही चंचल था। एक स्थान पर मैं अधिक देर तक बैठ नहीं सकता था। मैं अपने पिताजी से बहुत डरता था। वे मुझे देखकर अकसर डाँटते थे इस कारण मैं उनके पास बहुत ही कम जाता था। यदि किसी कारणवश उनके पास कभी बैठना पड़ता तो मैं डर के मारे सिकुड़ कर एक कोने में बैठ जाता था। लगातार देर तक बैठने की आदत न होने के कारण थोड़ी ही देर में पैर इधर से उधर करने लगता था, यह देखकर वह मुझे डाँटते थे।"

---

* संस्कृत भाषा का आदि श्लोक-

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

यह सबको सर्व प्रथम सीखना पड़ता था।

"गाँव में अनेक प्रकार के खेल खेले जाते थे। मैं सभी तरह के खेल खेलता था। गुल्ली डंडा, काठ की गेंद का खेल, तैरना, पेड़ पर चढ़ना आदि सब खेल मेरे प्रिय खेल थे। पिता जब बाहर आँगन में बैठते तो मैं चुपचाप बाहर भाग जाता तथा बराबर उनसे छिपने की कोशिश करता। एक दिन खेलते में काठ की गेंद सिर में लग गई तथा वहाँ सूजन आ गई। पिता की मार के डर से चोट की पीड़ा भी भूल गया। दो एक दिन अपना सिर ढककर भी रखा, लेकिन फिर भी सबको पता लग गया। पिता ने खूब डाँटा तथा भविष्य में खेलने के लिये मनाही कर दी।"

हमारे गाँव की नदी के किनारे ब्रह्मपुत्र-स्नान के दिन एक मेला लगता था। उस मेले में लोहे की छोटी-छोटी छुरियाँ भी बिकती थीं। चैत्र के महीने में कच्चे आम का मौसम होता है और यह सभी बच्चों की प्रिय खाद्य वस्तु होती है। आम का छिलका छीलने के लिये बच्चों को मेले में से छुरी खरीद देते थे। मुझे भी एक छुरी मिली। एक दिन मैं एक सम्बन्धी के घर बैठा हुआ था कि देखा कि वहाँ एक 'गुस्सी' (मिट्टी की हाँडी में भूसा भरकर उसके ऊपर एक उहकता हुआ अँगारा रख देते हैं, उससे भूसा थोड़ा-थोड़ा जलता रहता है और इस तरह सारे दिन आग रहती है, उसे बंगला में 'आइल्ला' कहते हैं) रखी हुई थी। मैंने अपनी छुरी उसमें घुसा दी। ऐसा करने का कुछ विशेष अभिप्राय नहीं था, बस चंचल प्रकृतिवश कर बैठा। गरम होने पर वह चाकू मैंने निकाल लिया तथा अपने पास बैठे हुए एक लड़के के पैर पर रख दिया। यह किसी विद्वेषवश नहीं किया, बस बिना सोचे समझे शैतानी कर बैठा। लड़का दर्द के मारे चिल्ला पड़ा 'अभी तुम्हारे पिताजी से कहता हूँ'। यह सुनकर तो मैं बहुत घबड़ा गया। भाग्य से

पिता उस समय घर पर नहीं थे। लड़के ने घर जाकर सब स्त्रियों को यह घटना बताई। मैं बहुत देर तक तो डर के मारे घर नहीं गया लेकिन जब भूख लगी तो जाना पड़ा। घर में सबने बहुत ही तिरस्कार किया किन्तु पिता तक यह बात नहीं पहुँची इस तरह उनकी फटकार से मैं बच गया।"

सात साल की उम्र में श्रीयुक्त बााबजी महाराज अंग्रेजी स्कूल में दाखिल हुए। वहीं गणित, अंग्रेजी और बंगला की शिक्षा आरम्भ हुई। अगले वर्ष लस्करपुर महकमे के स्कूल में गये। उनके ताऊजी पास के गाँव में कविराज गौरचन्द्र के यहाँ उनको छोड़ गये। उन दिनों अनेक जाने की कोई सवारी न होने के कारण पैदल जाना पड़ता था।

नौ साल की आयु में वे मातृहीन हो गये। माँ की मृत्यु के समय किसी ने उन्हें सोते से उठाया तथा उनके हाथ से उनके मुख में गंगाजल दिलवाया तभी उन्होंने विसर्जन कर दिये।

इस विषय में उन्होंने एक बार हम सबको बताया कि इस घटना से तब उनको इतना दुःख नहीं हुआ। वैसे भी नौ-दस वर्ष के बालक मातृ-व्यथा समझते, किन्तु उन पर बचपन ही से मृत्यु जनित शोक विशेष प्रभाव नहीं डालता था। वे कहते थे "मृत्यु भी जन्म की भाँति स्वाभाविक है।"

इसी प्रसंग में एक अन्य घटना का भी उल्लेख किया जा सकता है। उन्हें अपनी बहिन की मृत्यु पर भी जो कि उन्हें बहुत प्रिय थी कुछ दुःख नहीं हुआ। यह सोचकर कि दूसरे क्या कहेंगे उन्होंने थोड़ा अश्रुपात किया।

दस वर्ष की आयु में वे श्रीहट्ट पढ़ने के लिये गये। वहाँ मिशन स्कूल में कुछ दिन पढ़कर गवर्नमेण्ट स्कूल की तीसरी कक्षा में दाखिल हुए। इसी स्कूल से बाबाजी महाराज ने १८७४ ई. में चौदह साल की

उम्र में प्रवेशिका की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में सफलता प्राप्त की। उन्हें पूरे प्रदेश में प्रथम होने के लिये १५) की वृत्ति मिली।

इस समय छात्र-जीवन के विषय में उन्होंने हमें थोड़ा बहुत बताया। वे बहुत परिश्रमी थे। श्रीहट्ट आने से पहले उनका उपनयन संस्कार हो चुका था। वह नियमानुसार दिन में तीन बार सन्ध्या करते थे। सन्ध्यान्हिक किये बिना जल तक नहीं ग्रहण करते थे। इतनी छोटी-सी उमर में वे खाना भी स्वयं बनाते थे, चूल्हे पर कुछ चढ़ाकर थोड़ी दूर चौकी पर बैठकर वह पढ़ा करते थे।

प्रवेशिका परीक्षा देने के समय ही उनका विवाह हो गया था। श्री श्री माता अन्नदादेवी बेजुडा ग्राम निवासी प्रसिद्ध विशारदवंशीय स्वर्गीय हरचन्द्र भट्टाचार्यजी की पुत्री थीं। इनके जन्म के बाद ही से भट्टाचार्यजी की खूब आर्थिक उन्नति हुई। इस कारण उन्होंने इनका नाम 'अन्नदा' रखा। जितने दिन श्री श्री माताजी जीवित रहीं उन्होंने सब प्रकार से अपना नाम सार्थक किया।

दूसरा अध्याय

कलकत्ते में अध्ययन, ब्राह्मधर्म-ग्रहण

एन्ट्रेन्स परीक्षा में उत्तीर्ण होकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज एफ. ए. पढ़ने के लिए कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में भरती हुए। उन दिनों साधारणतः प्रत्यक जिले के विद्यार्थी अपना-अपना छात्रावास बनाकर कलकत्ते में रहते थे। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज भी श्रीहट्ट जिले के छात्रों, डाक्टर सुन्दरीमोहनदास और देशनेता विपिनचन्द्रपाल (दोनों ही तब कॉलेज में छात्र थे) के साथ ही उनके मैस में ठहरे।

यहाँ आकर आरम्भ में उन्होंने श्रीहट्ट की भाँति ब्राह्म धर्म के आ़चार की निष्ठापूर्वक रक्षा की। धीरे-धीरे उनके भावों में परिवर्तन होने लगा। स्वर्गीय देशनेता सुरेन्द्रमोहन वन्द्योपाध्याय और ब्राह्मधर्म प्रचारक शिवनाथ शास्त्री ने उनके तरुण हृदय पर विशेष प्रभाव डाला। उनके संसर्ग में आकर ब्राह्म धर्म के प्रति उनकी आस्था ही नहीं रही। इस तरह उन्होंने सब कुछ आचार निष्ठा छोड़ दी। यह उनके चरित्र की विशेषता थी कि जब उन्हें जो कुछ उचित और सत्य लगता वह उसका मन, वचन, कर्म से अनुसरण करते थे।

इस समय वे एफ. ए. के प्रथम वर्ष में थे। गाँव में पिता ने जब यह समाचार जाना तो उन्होंने पढ़ाई का खर्चा भेजना बन्द कर दिया। पैसे के अभाव के कारण उन्होंने विद्यासागर के कालेज में एडमिशन लिया लेकिन केमिस्ट्री के लिए उन्हें प्रेसीडेन्सी कालेज ही जाना पड़ता था।

इन सब असुविधाओं और परेशानियों पर भी एफ. ए. की परीक्षा में वे सर्वप्रथम आये और २०) की छात्रवृत्ति मिली। एफ. ए. का

परीक्षाफल देखकर पिता ने फिर से खर्चा भेजना आरम्भ कर दिया। बाबाजी महाराज ने तृतीय वर्ष में फिर से प्रेसीडेन्सी कॉलेज में एडमिशन लिया।

छात्र-जीवन ही में उनकी जो चारित्रिक विशेषताएँ प्रकाशित हुई वह थी उनकी चिंतनशीलता और सत्यानुसंधान की लगन। आध्यात्म-तत्त्व और धर्म की ओर से वे कभी उदासीन नहीं रहे। कुछ समय के लिए ईश्वर के अस्तित्व के विषय में उन्हें कुछ संशय हुआ, जब वे तृतीय वर्ष में थे तब कुछ समय के लिए वे निरीश्वरवादी हो गये थे लेकिन एक घटना ने उन्हें फिर से आस्तिक बना दिया और तब उन्होंने ब्राह्म-समाज में प्रवेश किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो हमें सुनाया वह निम्नलिखित है–

"जब मैं तृतीय वर्ष में था उस समय मेरा एक मित्र द्विजदासदत्त बहुत ही बीमार हो गया था। जब मैं उसे देखने गया तो वह ज्वर से कातर होकर बिस्तरे पर पड़ा था। मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा सब अपनी-अपनी पढ़ाई में व्यस्त हैं मेरे पास कोई बैठता भी नहीं है। एक बार तो इतनी तकलीफ हुई कि आत्महत्या करने की भी इच्छा हुई। लेकिन अब भगवत्-उपासना से ही शान्तिलाभ कर जीवित हूँ।' उसने बातचीत के दौरान में यह भी बताया कि इस बीमारी में वह भगवत् कृपा भी विशेष रूप से अनुभव कर रहे हैं जो अन्य समय उपलब्ध नहीं हुई। उसने यह बातें इतने गद्गद स्वर में बताई कि मैं मुग्ध हो गया। वहाँ लौटकर मैं सोचने लगा कि ऐसी बातें अनेक महापुरुषों ने भी कही हैं कि भगवत्कृपानुभव से उन्हें असीम शान्ति लाभ हुई। ईश्वर के अस्तित्व के विषय में संदिग्ध होने के कारण मुझे बहुत अशान्ति थी। महापुरुषों की साक्षात् अनुभूति

अग्राह्य नहीं कर सका। मैं स्वयं वह अनुभव नहीं कर सका था, क्योंकि मैं भजन-पूजन नहीं करता था। सभी देशों में इस प्रकार के अनेक महात्मा हो गये हैं, जिन्होंने साक्षात् भगवद्दर्शन किया है। तर्क के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। जिन महात्माओं ने उनके साक्षात् दर्शन किये हैं, सो उन्हें झूठा ठहराने का कोई कारण नहीं है। जिनके चिंतनमात्र से ही एक व्यक्ति जो रोग यंत्रणा के कारण आत्महत्या करने को प्रस्तुत था, अब वह यंत्रणा भी नहीं अनुभव कर रहा है तो मेरी यह निरीश्वरवादित संगत नहीं है।

"कुछ समय तक इस चिंतन के फलस्वरूप ब्राह्मसमाज में ईश्वर के अस्तित्त्व का उपदेश तथा उपासना ही संगत प्रतीत हुई और मैंने ब्राह्मसमाज में प्रतिष्ठित होने का निश्चय कर लिया। मेरे मित्र सुन्दरीमोहन बाबू को मैंने अपना निश्चय बताया। वे राजी हो गये और अगली समाज के दिन मैंने उनके साथ जाकर ब्राह्मसमाज में योगदान दिया। इस तरह मैं ब्राह्मसमाज हो गया।"

इसी समय उनके मन में विलायत जाने की इच्छा हुई। यह सोचकर कि पिता तो खर्च नहीं देंगे, वह स्वयं ही अर्थ संग्रह के लिए प्रबन्ध करने लगे। गिलक्राईस्ट वृत्ति* के लिए उन्होंने पढ़ाई आरम्भ की लेकिन फिर यह सोचकर कि इस वृत्ति से सब खर्चा नहीं निकलेगा, इसके लिए चेष्टा करना छोड़ दी। प्रेमचन्द्र रामचन्द्र वृत्ति इसकी अपेक्षा अधिक थी, सो वे इसके लिए सचेष्ट हुए। यह वृत्ति आजकल जिस

* Gilchrist scholarship के लिए रसायन शास्त्र की परीक्षा होती थी। जो छात्र प्रथम आता उसे विदेश में जाकर रसायन शास्त्र में गवेषणा करने के लिए यह वृत्ति मिलती थी।

तरह गवेषणामूलक प्रबन्ध के लिए मिलती है तब ऐसा नहीं था। तब इसके लिए भी कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रतिवर्ष परीक्षा होती थी। एम. ए. पास करने पर कम से कम तीन विषयों में यह परीक्षा देनी होती थी। एम. ए. परीक्षा भी बी. ए. परीक्षा के साथ ही एक के बाद एक दी जा सकती थी। यह १८७७ ई. की बात है तब बाबाजी महाराज बी. ए. के प्रथम वर्ष में थे। बी. ए. के बाद ही एम. ए. परीक्षा देने का संकल्प कर उन्होंने इतिहास और राष्ट्रीय अर्थनीति की पुस्तकें पढ़नी आरम्भ कर दीं। वह घर में एम. ए. की पढ़ाई करते तथा कॉलेज में बी. ए. की कक्षाओं में जाते।

इस समय देश में जो राजनैतिक क्रान्ति हो रही थी उस ओर भी आप आकृष्ट हुए। वैरिस्टर आनन्दमोहन बसु ने विलायत लौटकर एक छात्र समिति बनाई जिसमें स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय को भी निमंत्रित किया। देश की स्वाधीनता व उन्नति विषय की वक्तताओं (भाषणों) का आयोजन होता। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज भी इन समितियों के उत्साहित कार्यकर्त्ता थे।

इसके कुछ समय बाद ही ब्राह्मसमाज में भी आन्दोलन हुआ। १८७८ ई. के आरम्भ में ब्राह्मसमाज के तत्कालीन नेता केशवचन्द्र सैन की पुत्री के विवाह को लेकर यह आन्दोलन उठा। ब्राह्मसमाजियों के अभिमत के अनुसार तथा कानून के अनुसार चौदह वर्ष से कम आयु वाली लड़की का विवाह अनुचित समझा जाता था। केशवबाबू की लड़की तब चौदह वर्ष की भी नहीं थी। फिर उसका विवाह कूच बिहार के राजा से हो रहा था जो कि ब्राह्म भी नहीं था। हिन्दू धर्म के अनुसार ही विवाह होगा यह शोर भी मच गया। शिवनाथ शास्त्री तथा अन्य

लोगों ने मिलकर (जिनमें बाबाजी महाराज भी थे) संकल्प किया कि सोलह वर्ष से छोटी कन्या का विवाह अनुचित है। अनेक स्थानों पर विरोध प्रदर्शन हुआ। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। इसके कारण उनकी पढ़ाई में विघ्न हुआ। उनके घनिष्ठ बन्धु डॉ० सुन्दरीमोहनदास ने १९३५ ई. पौष मास की 'प्रवर्तक' पंजिका में लिखा "वे राजनैतिक व धार्मिक क्षेत्र दोनों ही में गणतन्त्रता चाहते थे। भारतवर्ष की ब्राह्मसमाज जब केशवचन्द्र सैन के आधीन थी तो ताराकिशोर ने कूच बिहार के विवाह प्रस्ताव के विरोध में एलबई हाल में जो भाषण दिया उसमें समाज की एकतन्त्रता के विरुद्ध प्रबल युक्ति-प्रदर्शन किया। तरुण सदस्यों में वही सक्रिय कार्यकर्त्ता थे।"

इसके कुछ वर्षों बाद उनका स्वयम् का विवाह हो गया। वे पत्नी को लेकर कलकत्ते आ गये। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज 'पटल डांगा' में रहते थे। उनके पिताजी भी किसी कार्य हेतु कलकत्ते आये थे। वह रोज शाम को कॉलेज के बाद अपने पिता से मिलने जाते थे। उनके पिता उन्हें ब्राह्मसमाज छोड़ने के लिए बहुत जबरदस्ती करने लगे। अनेक चेष्टा करने पर भी जब वे नहीं माने तो एक दिन उनके पिता उन्हें मारने के लिए उद्यत हो गये। इस पर उन्होंने कहा–'मेरा शरीर आप ही के द्वारा उत्पन्न हुआ है यह ठीक है, किन्तु मेरी आत्मा मेरी अपनी है। शरीर को आप नष्ट कर दीजिए, किन्तु मुझे जिस पथ पर आत्म-कल्याण दीखेगा वह पथ मैं नहीं छोडूँगा।' राधूसिंह नामक एक नौकर ने जो उनके पिता के साथ आया था, उन्हें समझा बुझाकर शान्त किया। अन्त में उनके पिता ने हताश होकर कहा–"मैंने तुम्हें अँग्रेजी अवश्य पढ़ाई किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि तुम विधर्मी हो जाओ।

खैर मैंने जो कुछ तुम्हारी पढ़ाई पर खर्च किया है, वह तुम परिशोध करोगे ऐसा लिखित वचन दो"। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने प्रतिज्ञा-पत्र लिख दिया कि वह उपार्जन करके तीन हजार रुपये देंगे।

इस घटना के दो तीन दिन बाद ही पिता अपने गाँव को लौट गये। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को कुछ भी खर्चा नहीं दे गये, लेकिन रास्ते ही में कुछ भगवान की ऐसी प्रेरणा हुई कि उन्होंने राधूसिंह के हाथ पत्र के लिए चार-पाँच महीने का खर्चा एक साथ भेज दिया। इस बीच श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने कैथेड्रिल मिशन कॉलेज जहाँ की फीस प्रेसीडेन्सी कॉलेज से काफी कम थी–में भरती होने का सोचा लेकिन फिर रुपये मिल जाने से ऐसा नहीं किया। उनके श्वसुर श्री श्रीमाताजी को लेकर गाँव लौट गये।

इन सब बातों के कारण उनके स्वास्थ्य व पढ़ाई लिखाई में बहुत हानि हुई। उनके माथे में दर्द रहने लगा। फिर एक होमिआपैथ डाक्टर बिहारीलाल भादुड़ी के इलाज से रोगमुक्त हुए। बी. ए. की परीक्षा के केवल दो मास रह गये थे। थोड़ी बहुत पढ़ाई की, लेकिन विशेष नहीं पढ़ पाये। भगवद् कृपा से ही सफल हो गये।

१८७६ ई. में उन्होंने बी. ए. पास किया, स्वास्थ्य तथा पढ़ाई भी ठीक न होने से एम. ए. की परीक्षा नहीं दे सके जब कि वृत्ति लेकर विलायत जाने की इच्छा पूर्ववत बलवती रही। प्रेमचन्द्र रायचन्द्र वृत्ति के लिए तीन विषय ही यथेष्ट थे लेकिन चार विषय होने से अधिक नम्बर मिलने के कारण वृत्ति मिलने की अधिक सम्भावना थी। तीन विषयों पर तो उनका पूर्ण अधिकार था। पदार्थ विज्ञान, अँग्रेजी साहित्य तथा इतिहास के साथ एक अन्य विषय पढ़ेंगे तथा अगले वर्ष एम. ए. की परीक्षा देंगे, यह सोचकर उन्होंने इसके लिए अपना विषय फिलोसफी

चुना। अभी तक यह विषय उन्होंने बिल्कुल नहीं पढ़ा था। अतः एम. ए. के अध्यापक भी पढ़ाने को तैयार होंगे अथवा नहीं इस विषय में संदिग्ध होकर वह प्रोफेसर हेस्टि के पास गये और उन्हें अपना मन्तव्य बताया। प्रो. हेस्टि ने पाठ्यतालिका उनके सम्मुख रखकर कहा कि जब उन्होंने बी. ए. ही में फिलोसफी नहीं पड़ी है तो एक वर्ष में इतनी पुस्तकें पढ़कर एम. ए. की परीक्षा देना असम्भव है। प्रोफेसर हेस्टि के कथन से वे हताश होने के बजाय और दृढ़ संकल्पी हो गये।

१८७६ ई. में ब्राह्मधर्म के प्रचार के लिये सिटी स्कूल की स्थापना हुई। प्रो० हेस्टि द्वारा प्रात्याख्यात होकर उन्होंने उस स्कूल में शिक्षक के रूप में योगदान दिया। किन्तु कुछ समय बाद अपने मित्र श्रीकालीनाथदत्त के अनुरोध पर उनके ग्राम-२४ परगना जयनगर ग्रसम के स्कूल के हैडमास्टर हो गये। वहाँ पास ही एक स्कूल था, इन दोनों में काफी प्रतिद्वन्द्विता थी। इसलिये शिक्षकों को काफी परिश्रम करना पड़ता था। हैडमास्टर की तो पढ़ाने के अतिरिक्त और भी अधिक जिम्मेदारी रहती है, सो बाबाजी महारज को काफी परिश्रम करना पड़ता था। लेकिन उनका पूर्व संकल्प- फिलोसफी में एम. ए. तथा वृत्ति की परीक्षा में कोई ढील नहीं आई। बी. ए. की फिलोसफी की पाठ्यपुस्तकें तथा 'मिल' रचित तर्कशास्त्र पढ़ते रहे। एन्ट्रेन्स के छात्रों की निर्वाचनी परीक्षा हो जाने पर वह कलकत्ता लौट आए।

एम. ए. परीक्षा के लगभग तीन महीने बाकी थे वह पुस्तक संग्रह कर परीक्षा की तैयारी में लग गये। रोज १५ व १६ घण्टे पढ़ते थे। जो कुछ पढ़ते उसे संक्षेप में लिख लेते, आगे पढ़ने से पहले उसे दुहरा लेते तथा उस पर मनन करते। इस तरह वह जो कुछ पढ़ते उस पर पूर्ण अधिकार हो जाता। सारे दिन पढ़ते-पढ़ते वह थक जाते और

शाम को पढ़ने में मन नहीं लगता। जब कुछ दिनों तक रोज ऐसा हुआ तो उन्होंने सन्ध्या को गायन-वादन में समय बिताने का निश्चय किया। वह अपने मित्र से संगीत सीखने लगे। इससे उनका मन, मस्तिष्क दोनों प्रफुल्ल हो जाते और फिर काफी देर तक पढ़ाई कर लेते थे।

इतनी पढ़ाई करने पर भी वह इतने थोड़े समय में सब पुस्तकें समाप्त नहीं कर सके। पाश्चात्य दर्शन का मूल मर्म समझकर उसके सम्बन्ध में स्वाधीनभाव से मनन करने लगे। ऐसी अवस्था में १८८० ई. में उन्होंने एम. ए. की परीक्षा दी तथा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हो गये। उस वर्ष 'फिलोसफी' में अन्य कोई उत्तीर्ण नहीं हुआ। परीक्षा के बाद फिर सिटी स्कूल में शिक्षक का पद ग्रहण किया। स्कूल के अध्यक्ष श्रीउमेशचन्द्रजी ने निर्दिष्ट अध्यापन कार्य के अलावा छात्रों को नीति-शिक्षा देने तथा उनके चरित्र पर दृष्टि रखने का भार भी उन पर सौंपा। स्कूल की छुट्टी होने के बाद नीति-शिक्षा का घण्टा होता था। उन्होंने छात्रों के लिये एक साप्ताहिक सभा की स्थापना की। वह सभापति का आसन ग्रहण करते, कोई कोई छात्र अपने घर से प्रबन्ध लिखकर लाते तथा सभा में उसे पढ़ते, अन्य लड़के उस विषय में आलोचना करते। अन्त में वे उस सम्बन्ध में यथोचित उपदेश देते। शीघ्र ही यह सभा तथा यह क्लास छात्रों को प्रिय हो गया। अच्छे छात्र स्कूल के बाद नीति-शिक्षा के क्लास में बहुत समय तक रहते तथा साप्ताहिक सभा में भीं भाग लेते। अनेक छात्र उनके घर जाकर भी उनसे उपदेश लेते, इस प्रकार छात्रों के साथ उनकी खूब घनिष्ठता हो गई।

इसी समय एक घटनावश उनकी ख्याति और भी बढ़ गई। उनके इस दूसरी बार के अध्यापन से कुछ पहले विद्यासागरजी ने अपने स्कूल के एक सैक्शन के समस्त छात्रों को दुष्चरित्रता के कारण स्कूल

से वहिष्कृत कर दिया था, इनमें से अनेक सिटी स्कूल में आकर भरती हो गये थे। श्रीबाबाजी महाराज विद्यार्थियों के चरित्र पर विशेष लक्ष्य रखते थे इस कारण उन लड़कों के अनेक चरित्र-दोष उनके समक्ष आए उन्होंने उमेशबाबू से उनको निकालने के लिये परामर्श की। एक दिन जब वह छुट्टी के बाद घर जाने को प्रस्तुत हुए तो एक आदमी ने उन्हें आकर बताया कि वे लड़के कुछ गुण्डों के साथ गली के मोड़ पर खड़े हैं। श्रीयुक्त उमेशबाबू ने उनसे दरवान साथ ले जाने को कहा, इस पर श्रीयुक्त श्रीबाबाजी महाराज ने कहा "आज तो आप मुझे दरवान के साथ घर भिजवा देंगे लेकिन हर समय जब मैं बाहर जाता हूँ तब तो वह हमेशा मेरे साथ नहीं जा सकेगा। इस कारण जैसे मैं रोज अकेला जाता हूँ वैसे ही जाऊँगा। आप निश्चिन्त रहिये छात्र मेरा कुछ नहीं करेंगे।" जब वे बाहर आये तो देखा कि कुछ लड़के गली के मोड़ पर खड़े हैं जो कि स्कूल में अनुपस्थित थे। उन्होंने तीक्ष्ण दृष्टि से उन लड़कों की ओर देखा वे लोग दौड़कर गली में घुस गये। उनको सामना करने की किसी को साहस नहीं हुआ। दूसरे दिन उन लड़कों का नाम ही स्कूल रजिस्टर से काट दिया गया और वे भी फिर स्कूल नहीं आये। इस घटना से उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई। खराब लड़के उनसे डरते थे।

अगले वर्ष सिटी स्कूल में एम. ए. का प्रथम वर्ष आरम्भ किया। वे इस कक्षा को पदार्थ-विज्ञान तथा तर्कशास्त्र पढ़ाते थे। ऊँची कक्षाओं को इंग्लिश साहित्य पढ़ाते थे। वे सभी छात्रों की श्रद्धा व आदर के केन्द्र थे।

श्रीयुक्त श्रीबाबाजी महाराज आजीवन ही अनलस कर्मी पुरुष थे। इस कारण तरुणावस्था ही में अनेक हितकर कामों में लिप्त रहना

उनका स्वभाव सा बन गया था। इतने व्यस्त जीवन में भी उनकी चिरभ्यस्त आत्मचिन्तन धारा समभाव से प्रवाहमान थी। नीति और धर्म विषयक उनका मौलिक चिन्तन देखकर ही उमेशबाबू ने उन्हें छात्रों के हृदय में धर्म की भावना जागृत करने का कार्य सौंपा था जो कि उन्होंने अच्छी तरह निबाहा।

धर्म प्रचार के लिये उनमें जो उत्साह था वह निम्नलिखित घटना से स्पष्ट है:-श्रीयुक्त विपिनचन्द्रपाल और दोनों ही श्रीहट्ट से कलकत्ते पढ़ने आए थे। दोनों ही घनिष्ठ बन्धु थे। दोनों ही एक साथ मैस में रहते थे। श्रीयुक्त पाल एफ. ए. करने के बाद आगे नहीं पढ़े। वे राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेने लगे। श्रीयुक्त श्रीबाबाजी महाराज ने सबके साथ परामर्श करके ब्राह्मधर्म प्रचार तथा राजनैतिक आन्दोलन जागृत करने के लिये उन्हें श्रीहट्ट भेजा उनके खर्चे के लिये श्रीयुक्त श्रीबाबाजी महाराज नियमित रूप से कुछ न कुछ भेजते थे। कुछ दिनों बाद जब श्रीयुक्त पाल को वहाँ एक शिक्षक का स्थान मिल गया तब उन्होंने रुपये भेजने बन्द किये।

तृतीय अध्याय

आभ्यन्तरिक परिवर्तन और योगी-सम्प्रदाय में प्रवेश

ब्राह्मसमाज में सम्मिलित होने के बाद वह बहुत दिन तक अपने घर नहीं गये। सिटी स्कूल में अध्यापन करते समय वह पूजा की छुट्टियों में घर गये। उनको देखकर सभी लोग प्रसन्न हुए। ब्राह्मसमाजी होने के कारण कुछ असुविधा व परेशानी भी हुई। वे रसोईघर, पूजाघर तथा खाने के कमरे में नहीं जाते थे सो इस तरह असुविधा का सहज ही में समाधान हो गया।

इतने दिनों बाद जाकर भी पिता से उनकी भेंट न हो सकी क्योंकि उनके पिता एक पण्डित को साथ लेकर उनसे मिलने के लिए पहले ही रवाना हो चुके थे। इस पण्डित ने उन्हें विश्वास दिलाया था कि वे ताराकिशोर बाबू को तर्क में परास्त करके उनका भ्रम निवारण कर उन्हें फिर से अपने मत का बना लेंगे। चौधरीजी जब अपने पुत्र से कलकत्ते में नहीं मिल सके तो वे काशी चले गये।

वहाँ पहुँच कर उन्होंने श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को पत्र लिखा कि उनकी अनुमति बिना घर जाना उनके लिये अनुचित था, वे बाहर ही भोजन करें, कमरे में प्रवेश न करें इत्यादि। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज तो स्वयम् ही इसी प्रकार का आचरण कर रहे थे। कुछ दिनों बाद उनके पिता का दूसरा पत्र आया कि वे बहुत बीमार हैं, सो पत्र को देखते ही काशी चले आओ।' यह समाचार पाकर वह अगली ट्रैन लेकर काशी जा पहुँचे। पिता को तब ज्वर तो नहीं था लेकिन वह काफी दुर्बल हो गये थे। उनको अस्वस्थ देखकर वे काशी में रुक गये। जब तक वे काशी रहे तो रोज ही गंगा स्नान को जाते थे इससे उन्हें

सन्तोष मिलता था। वहाँ उनके पिता के एक ब्राह्मण डाक्टर मित्र थे। एक दिन उनके पिता ने अपने मित्र के साथ उन्हें काशी के सब मन्दिरों में जाने को कहा। इस पर उन्होंने बता दिया कि वह दर्शन तो कर आवेंगे किन्तु पूजा अर्चना नहीं होगी। इस तरह पिता के मित्र ने इन्हें सब मन्दिरों के दर्शन करवाये लेकिन इससे भी उनका कुछ मानसिक परिवर्तन नहीं हुआ। इन्हीं दिनों वेदान्त और दर्शनशास्त्र के ज्ञाता एक बंगाली ब्राह्मण भी काशी में थे। डाक्टर बाबू इन्हें उस पण्डित के पास भी ले गये तथा उन्हीं के अनुरोध पर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज व उस पण्डित की धार्मिक आलोचना हुई। अन्त में पण्डितजी ने कहा-"जब सभी ब्रह्म हैं, देवता भी पूर्ण ब्रह्मरूप हैं तो पूर्ण ब्रह्मरूप में उनकी उपासना करने में क्या बाधा है?" श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने उत्तर दिया 'यदि सभी पूर्ण ब्रह्म हैं तो मैं भी वहीं हूँ। मैं अन्य किसी की उपासना क्यों करूँ? मेरा कथन आप क्यों अग्राह्य करते हैं, मेरी बात भी पूर्ण ब्रह्म की ही बात मानकर आदृत होनी चाहिये।' यह सुनकर पण्डितजी उत्तेजित हो गये और कहने लगे 'तुम अभी कुछ नहीं समझ सकते हो, छः महीने मेरे पास रहकर वेदान्त का अध्ययन करो तब समझ पाओगे।' श्रीबाबाजी महाराज ने कहा 'हाँ ! पढ़ने का तो यही फल होता है जैसा कि आपने कहा, लेकिन मुझे तो यह सब पसन्द नहीं है तो फिर कैसे पढ़ सकता हूँ।' पण्डितजी ने फिर कुछ नहीं कहा और वे भी उन्हें नमस्कार करके चले गये। बाद में उनके पिताजी ने काशी के अनेक प्रसिद्ध पण्डितों को बुलाकर एक सभा का आयोजन किया। उस सभा में काशी के एक जमींदार जो संस्कृत और अँग्रेजी दोनों भाषाओं के विद्वान थे, वे भी आए। सबने उन्हें अनेक प्रकार से समझाने की चेष्टा की। अपने मत की पुष्टि के लिये शास्त्रीय वचनों

का भी प्रमाण स्वरूप मानने को प्रस्तुत थे वह युक्ति द्वारा सब कुछ समझना चाहते थे सो कोई भी पण्डित उन्हें युक्ति द्वारा समझाने में समर्थ नहीं हुआ तथा इस प्रकार उनका भावान्तर नही हो सका।

सभा समाप्ति पर एक भद्र पुरुष जो वहाँ उपस्थित थे। उनके साथ बाहर तक आये, तथा श्रीयुक्त बाबाजी महाराज से थोड़ा ठहरने का अनुरोध किया। उसने हाथ से उनका सिर टटोला और कहा, "आपके सिर में कुछ असाधारण लक्षण हैं, आप अनेक महत् कार्य करेंगे।" इस प्रकार की अनेक बातें कहीं। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने बताया कि उनके लिये इन सब बातों का कोई महत्व नहीं था यदि मनुष्य के भविष्य का इस प्रकार निरूपण हो जाये तो फिर तो सभी कुछ पूर्व निर्धारित होगा, मनुष्य के हाथ में तो कुछ भी नहीं रहेगा।

इन्हीं दिनों एक प्रसिद्ध ज्योतिषी से भी उनकी भेंट हुई। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की उनसे काफी बातचीत हुई, बातचीत के दौरान उन्होंने ज्योतिशास्त्र की सत्यता बताने के लिये बहुत-सी घटनायें व दृष्टान्त सुनाए। थोड़ी देर तक सुनने के बाद श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने उनसे पूछा, "आप मनुष्य के पाप-पुण्य कर्मो को मानते हैं या नहीं?" ज्योतिषी ने उत्तर दिया 'पाप-पुण्य क्यों नहीं मानता ! प्रत्येक मनुष्य अपने किये हुए पाप-पुण्य का फल ही तो भोगता है।' तब श्रीयुक्त बाबाजी महाराजने कहा–'यदि ऐसा है तो ज्योतिष को सत्य कैसे माना जा सकता है। यदि मनुष्य का भूत-भविष्य सभी ज्योतिष द्वारा निर्धारित है, तो उसे अन्यथा करने की किसी में क्षमता नहीं है। इस प्रकार यदि मनुष्य नियति के आधीन होकर सब काम करने को बाध्य है तब वह अपने किये पाप-पुण्य के लिये क्यों कर जिम्मेदार होगा? वह तो स्वाधीन भाव से कुछ नहीं कर सकता।' ज्योतिषी उनका

मत सुनकर चुप हो गये, फिर कहने लगे 'यद्यपि मैं आपको उत्तर देने में असमर्थ हूँ, किन्तु ज्योतिष की गणना सत्य होती है यह मैं अनेक बार देख चुका हूँ।' बाबाजी महाराज ने उत्तर दिया "कभी आकस्मिक रूप से ऐसा हो जाता है, कोई स्थिर सिद्धान्त नहीं निकाला जा सकता है।"

जिन पण्डित को लेकर उनके पिता काशी आये थे, वे भी वहीं उपस्थित थे। उन्होंने कहा, "मैं सोच-विचार कर सब समझाऊँगा।" श्रीबाबाजी महाराज ने कहा–'ठीक है यदि आप मुझे समझा सकेंगे तो मैं मान लूँगा, मैं तो सत्य की खोज ही में हूँ।' किन्तु पण्डितजी ने एक मध्यस्थ के समक्ष विचार करने का प्रस्ताव किया। बाबाजी महाराज इस पर सहमत नहीं हुए वह कहने लगे "मध्यस्थ का तो कोई प्रयोजन नहीं है। आप यदि युक्तिपूर्ण ढँग से मुझे समझा सकते हैं कि आपका मत सत्य है तो मैं स्वयं ही मान लूँगा। यदि आप मेरा भली प्रकार समाधान नहीं कर सके और मध्यस्थ यह कहें कि आपकी बात सत्य है, तो भी मैं उनकी बात ग्रहण नहीं करूँगा।" बहुत वाद-विवाद के बाद यह निश्चय हुआ कि श्रीयुक्त भास्करानन्द स्वामी के सम्मुख विचार होगा।

स्वामी भास्करानन्द दुर्गाबाड़ी के समीप एक राजा के बगीचे में ठहरे हुए थे। दूसरे दिन पण्डितजी बाबाजी महाराज को लेकर उनके पास गये। स्वामीजी नग्न देह बैठे थे। बहुत ही दुर्बल थे, लेकिन बहुत ही हास्यमय थे। जब दोनों ने प्रणाम किया तो वे बाबाजी महाराज की ओर बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक देखले लगे। पण्डितजी ने स्वामीजी को बताया कि ये विधर्मी हो गये हैं, आपके समक्ष हम दोनों विचार-विमर्श करने की इच्छा से आये हैं। स्वामीजी ने यह सुनकर 'वाह !' कहा। इसके बाद पण्डितजी ने शास्त्रों की प्रामाणिकता ब्राह्मणोचित आचार-

व्यवहार की श्रेष्ठता आदि पर अनेक युक्ति प्रदर्शन करते हुए संस्कृत भाषा में बहुत कुछ कहा। बंगाली होने के कारण पण्डितजी का संस्कृत उच्चारण बिल्कुल शुद्ध नहीं था, इसलिये कहीं-कहीं स्वामीजी उनका उच्चारण सुधारते जाते थे। वे उनकी बातें बहुत ध्यान से सुन रहे थे और बीच-बीच में 'वाह ! अच्छा पण्डित है' कहते जाते थे।

पण्डितजी का तर्क समाप्त होने पर श्रीबाबाजी महाराज उनको उत्तर देने लगे। वे संस्कृत बहुत थोड़ी जानते थे, इस कारण पण्डितजी की जो बातें वे समझ पाये उसका जबाव टूटी-फूटी हिन्दी में देने लगे, स्वामी भास्करानन्द बंगला नहीं जानते थे।

ईश्वर के निराकारत्व के विषय में उन्होंने बहुत कुछ कहा। उनके तर्क सुनकर स्वामीजी कहने लगे 'यह तो अच्छी बात करता है।' फिर पण्डितजी ने नानायुक्तिपूर्ण संस्कृत में एक छोटा सा आख्यान दिया। बाबाजी महाराज ने फिर अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में जबाव दिया। इस प्रकार काफी देर तक दोनों तर्क-वितर्क करते रहे। स्वामीजी हर बार ही पहले की भाँति पण्डितजी से तो 'बड़ा अच्छा पण्डित है' तथा बाबाजी महाराज से 'यह तो अच्छी बात करता है' कहते गये। इस तर्क के फलस्वरूप कुछ भी मीमांसा नहीं हो सकी। श्रीबाबाजी महाराज के मत में भी कोई परिवर्तन नहीं हो सका, दोनों स्वामीजी को प्रणाम करके लौट आये।

श्रीहट्ट के पण्डितजी तो हताश हो गए किन्तु स्वामी भास्करानन्द के व्यक्तित्व की ओर बाबाजी महाराज आकृष्ट हुए। दोनों के प्रति उनका पक्षपात हीन व्यवहार शिशु की भाँति सरल दृष्टि तथा उनकी आनन्दपूर्ण मूर्ति से वह मुग्ध हो गए। वह उनके पास अकसर जाने लगे। स्वामीजी भी उन्हें पास बुलाकर बातचीत करते। एक दिन जब

वे स्वामीजी के समीप बैठे थे तो जिस राजा के बाग में वे ठहरे हुए थे वह राजा आए। स्वामीजी ने राजा को बाबाजी महाराज से कथावर्ता करने का आदेश दिया। राजा ने सबसे पहले उनसे यही पूछा कि वह किस के शिष्य हैं। बाबाजी महाराज ने नकारात्मक उत्तर दिया तथा बताया कि भगवान ही मेरे पथ-प्रदर्शक हैं। यह सुनकर राजा ने उनके प्रति अवज्ञा का भाव दिखाया। इसके बाद स्वामीजी उनसे बात-चीत करने लगे। कथा-प्रसंग में बाबाजी महाराज ने उनसे पूछा कि 'ब्रज को किस प्रकार जाना जा सकता है।' तब स्वामीजी उच्च स्वर में श्रुतियों का गायन कर उत्तर देने लगे। उस समय उनकी मुखश्री अवर्णनीय थी। यह छवि बाबाजी महाराज के हृदयपटल पर सदा के लिये अंकित हो गई।

इसके बाद पिता के वह डाक्टर बन्धु उनको स्वामी त्रैलंगजी के दर्शन कराने के लिये ले गये। वहाँ जाकर स्वामीजी के विषय में यह मालूम हुआ कि उन्होंने तीन महीने से कुछ आहार नहीं लिया है तथा एक यज्ञ करने की चेष्टा में हैं। दोनों ने जाकर दर्शन किये। वह उस समय छत पर थे। डाक्टर बाबू ने साष्टांग प्रणाम किया, किन्तु बाबाजी महाराज ने नमस्कार किया। स्वामीजी ने हाथ बढ़ाकर मौन भाव ही से आशीर्वाद दिया। उनकी ओर देखकर बाबाजी महाराज के मन में बहुत से विचार उठने लगे। वे सोचने लगे थे कि कुछ कठोर लगते हैं, भस्करानन्द स्वामीजी इनकी तुलना में सरस हैं। सुना है कि ये ज्ञानी पुरुष हैं, किन्तु तीन महीने से भोजन नहीं किया है तथा यज्ञ करने वाले हैं सो इन बाह्याडम्बरों की क्या आवश्यकता है।" वह जब तक मन में इस प्रकार की आलोचना करते रहे, तब तक स्वामीजी उन्हीं की ओर देखते रहे। स्वामीजी के विषय में उनके मन में कुछ संशय तो

अवश्य हुआ, किन्तु उन्हें यह अनुभव हुआ कि वह एक तेजस्वी पुरुष हैं। थोड़ी देर बाद दोनों ही ने स्वामीजी को अपने अपने ढँग से प्रणाम किया तथा उन्होंने भी पहले की भाँति ही हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। फिर ये दोनों घर लौट आए।

श्रीयुक्त हरकिशोर चौधरी इस बीच में पूर्ण स्वस्थ हो गए। इतनी सब चेष्टा के बाद भी जब बाबाजी महाराज का मत परिवर्तन होता नहीं देखा तो वह अपने गाँव लौटने को इच्छुक हुए। कलकत्ते तक सब एक साथ आए, बाबाजी महाराज कलकत्ते रह गये, वे वापस श्रीहट्ट लौट गये। इसके बाद उनकी विचारधारा में किस प्रकार परिवर्तन हुआ इस विषय में जो उन्होंने बताया वह निम्नांकित हैः-

'मैं नित्य क्रिया के बाद रोज ही समाचार पत्र पढ़ता था। काशी से लौटने के बाद की बात है कि मैं 'स्टेट्समैन' पढ़ रहा था। उसमें The Australian Times में से उद्धृत किया Chiarini चियारिनी सर्कस कि विषय में एक प्रबन्ध था। सर्कस देखने का शौक न होने के कारण यह सर्कस मैंने नहीं देखा था किन्तु उसके बारे में लेख देख मैं उसे पढ़ने लगा। उसमें लिखा था कि सर्कसवाला दोनों बाघों को जहाज़ में लेकर आस्ट्रेलिया जा रहा था। समुद्र की तरंगों को देखकर बाघ थोड़े उत्तेजित हो गये थे। इस कारण यथा स्थान पहुँचकर सर्कसवाले ने बाघों का खेल दो एक दिन तक नहीं दिखलाया। इसके बाद बाघों को शान्त देखकर वह उनका खेल दिखाने के लिये जब उन्हें लोहे के कटघरे में लाया तो बाघों ने उसकी ओर भीषण आक्रमणकारी रूप दिखाया, यह देखकर उस खेल दिखाने वाले ने गम्भीर होकर तीक्ष्ण दृष्टि से उन बाघों की ओर देखा। थोड़ी देर ही में बाघ शान्त होकर

पिंजरे में घुस गये तथा वह भी पीछे-पीछे गया और गम्भीरता से उनके सिर पर हाथ फेरने लगा और फिर उनका खेल दिखाने लगा।

"यह घटना पढ़कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और मेरे मन में एक अद्‍भुत विचार आया, सोचा कि बाघ जैसा हिंसक पशु भी साहब की दृष्टिमात्र ही से अभिभूत हो गया सो यह क्यों कर हुआ। अन्त में इस परिणाम पर पहुँचा कि साहब की आभ्यन्तरिक वशीकरण शक्ति ही उसकें नेत्रों द्वारा उनमें भी प्रविष्ट होकर उनकी पाश्विक वृत्ति को दूर करने में समर्थ हुई। इस सिद्धान्त पर पहुँचकर मेरे मन में विचार आया कि जैसे हमारे देश में मान्यता हैं कि गुरु-शक्ति से समस्त पाश्विक वृत्तियाँ विशुद्ध हो जाती हैं और इसी कारण शक्ति सम्पन्न गुरु का आश्रय ग्रहण करने की जो प्राचीन प्रथा है वह सारहीन तथा व्यर्थ नहीं हैं। इस प्रथा को जो मैं कुंसस्कार मानता रहा हूँ वह उचित नहीं है। ब्राह्मण केवल अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये गुरुदीक्षा लेना आवश्यक बताते हैं ऐसी जो मेरी धारणा थी वह भ्रमपूर्ण लगी। इसी विचारधारा के साथ ही साथ जड़विज्ञान और मनोविज्ञान के विषय में मैंने जो कुछ पढ़ा था उसके सब सिद्धान्त मेरे मन में आए। मुझे लगा कि मनुष्य का शरीर एक यन्त्रमात्र है। यह उसकी आभ्यन्तरिक तड़ित शक्ति उसके शरीर से प्रत्येक की आभ्यन्तरिक तड़ित शक्ति द्वारा परिचालित होता है और प्रत्येक की आभ्यन्तरिक प्रकृति के अनुरूप ही तड़ित शक्ति उसके शरीर से निसृत होकर बाहरी वस्तुओं में प्रविष्ट होती है। उसकी इच्छा शक्ति जितनी प्रबल होगी उतने ही अधिक परिणाम में वह दूसरों में संचारण कर सकती है। हाथ की उँगलियाँ बिजली के Points के समान हैं उसी के द्वारा प्रत्येक की आभ्यन्तरिक तड़ित शक्ति अपने आप ही निसृत हो दूसरे में संचालित होती है। शायद इसी कारण हमारे

देश के ऋषिगणों ने स्पर्श के गुण दोषों का वर्णना किया है। इस प्रकृतिगत गुण के कारण ही इस देश में सम्भवतः जाति-भेद भी प्रवर्तित हुआ। इस प्रकार मेरे मन में अनेक विचार आये और एक ही घण्टे में मेरी विचारधारा बदल गई और मैं नया आदमी बन गया।"

"मैंने इन सब चिन्तनीय विषयों के बारे में अनेक दिन तक किसी को नहीं बताया, स्वयम् भली भाँति चिन्तन करता रहा। लेकिन जितनी ही गम्भीरता से सोचता उतने ही हिन्दू-धर्म के आचार-विचार के प्रति मेरा विश्वास दृढ़ होता जाता। ब्राह्मसमाजी होने के कारण मैंने जो सब विलायत जाने का जो संकल्प किया था वह भी परित्यक्त हो गया।"

"चौबीस परगने के अन्तर्गत मंजिलपुर ग्राम निवासी कालीनाथ दत्त मेरे ब्राह्म बन्धु थे। मेरे प्रति उनका प्रगाढ़ मैत्रीभाव था। वे ब्राह्मसमाज में रहकर भी किसी योगी-सम्प्रदाय से जड़ित थे तथा गुप्त रूप से साधन करते हैं ऐसा मैंने सुना था। जब मेरा पूर्वोक्त मानसिक परिवर्तन हुआ तो मैंने गुरुशक्ति आदि विषयों पर उनसे बात-चीत की तो उन्होंने बताया कि वह स्वयम् सभी सद्गुरु लाभ करके सब कुछ अनुभव कर रहे हैं। किन्तु ब्राह्मसमाजी इन बातों को नहीं मानते हैं इस कारण उन्होंने इस विषय में किसी से बात-चीत नहीं की है। लेकिन अब जैसा कि मैंने बताया तो उन्होंने दृढ़ता से इन सब बातों की सत्यता पर जोर दिया। मैंने उनसे कहा कि यदि कोई इस प्रकार का शक्ति सम्पन्न पुरुष उनकी दृष्टि में हो तो वे मुझे उनसे मिलायें। वह अतिशय आनन्दित होकर कहने लगे कि उनके गुरु तो देह त्याग कर चुके हैं लेकिन उनके स्थान पर जो अन्य महापुरुष हैं उनके पास ले जावेंगे। इस बात-चीत के थोड़े दिन बाद ही पूजा की छुट्टी में कालेज बन्द हो गया।"

"मैं घर गया, मेरे विचारों में कुछ परिवर्तन आया है यह जानकर पिता कुछ सन्तुष्ट हुए। यद्यपि मैं शास्त्रलिखित आचार-विचार के प्रति आकृष्ट हुआ था किन्तु वर्तमान हिन्दू समाज शास्त्रों के अनुरूप समाज है इस पर मुझे सन्देह था, मुझे लगा कि वर्तमान जाति भेद वैज्ञानिक नहीं हैं, इसके द्वारा प्रकृत-परिचय नहीं हो सकता है। वर्तमान समाज न तो प्रकृतिगत भेदों के ऊपर स्थापित है और न इसका आचार व्यवहार ही वैज्ञानिक है, ऐसी आस्था देख हिन्दू समाज में भी प्रविष्ट होने की मेरी इच्छा नहीं थी।"

यह सब देखकर उनके पिताजी ने उन्हें फिर से उपवीत धारण करके हिन्दू समाजयुक्त होने के लिये बाध्य किया, लेकिन वे इस पर सहमत नहीं हुए। जब स्वयम् वह पुत्र को वश में नहीं कर पाये तो वे पुत्रवधू को नैहर से ले आए। लेकिन इसका भी कुछ फल नहीं हुआ। श्री श्रीमाताजी अब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के साथ रहना चाहतीं थीं। खैर कुछ दिन अपने घर और ठहर कर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज कलकत्ता लौट आये और श्रीयुक्त द्विजदास दत्त के साथ एक स्थान पर ही रहने लगे।

उन्होंने उन्हीं दिनों एक योगी सम्प्रदाय में प्रवेश किया, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने बताया:-

"मैंने श्रीयुक्त कालीनाथ दत्त के साथ जाकर उनके बताये हुए महापुरुष से शिष्यत्व ग्रहण किया। उनका नाम श्रीयुक्त जगतचन्द्र सैन था। वे गृहस्थ थे तथा किसी आफिस में क्लर्क थे। उनके सम्प्रदाय में एक अति उच्च अंग का प्राणायाम साधन प्रचलित था जो कि साधारणतः इधर प्रचलित नहीं है। मेरे मन्त्र लाभ करने पर वे और उनके अन्य शिष्य मुझ में शक्तिसंचार करने का प्रयत्न करने लगे

लेकिन तब मुझे शक्तिक्रिया का अनुभव नही हुआ। मेरे गुरु का निवासस्थान मेरे स्थान से दूर था इस कारण रोज शाम को वहाँ जाना मेरे लिये सम्भव नहीं था। मैं उनके दिये हुए नाम का स्मरण तथा भजन घर पर ही करता था। भजन करते-करते दो-तीन दिन बाद मेरे शरीर में एक अद्‌भुत क्रिया हुई। गुरु तथा शिष्यों की मैने जिस प्रकार श्वासक्रिया चलती देखी थी, उसी प्रकार की श्वासक्रिया स्वतः मेरी भी होने लगी तथा भीतर में एक विचित्र शक्ति का प्रकाश होता हुआ लगा। जिस दिन मुझे ऐसा अनुभव हुआ उस दिन छुट्टी थी। मैंने तभी कालीनाथ बाबू को जाकर यह बताता। उन्होंने मुझे फिर से साधन के लिये बैठाया और फिर से वही क्रिया होने लगी। वे कहने लगे कि मेरे शरीर में साधन-शक्ति का प्रस्फुरण हुआ है एवं षट्‌चक्र का मार्ग खुल गया है। यह सब स्वतः कैसे हुआ इस पर उन्हें विस्मय अवश्य हुआ। दो एक दिन में यह क्रिया मेरे आधीन हो गई, मैं इच्छानुसार घटा-बढ़ा सकता था। जब कालेज बन्द होता तो मैं गुरुजी के पास जाकर साधन करता तथा इस तरह धीरे-धीरे इस साधन के प्रति मेरी आसक्ति बढ़ती गयी। मेरे गुरु जगतबाबू ने थोड़े दिनों बाद नौकरी छोड़ दी तथा अपने पैतृक घर में जाकर रहने लगे। एक बार वह कलकत्ते में मेरे घर के समीप भी आकर रहे। वहाँ वे बीमार हो गये तो मैं उन्हें देखने गया, तब उन्हें खूब तेज बुखार था। मुझे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुए और उठकर बैट गये फिर वेग के साथ प्राणायाम आरम्भ करके मेरे शरीर में शक्ति-संचार करने लगे। मैं भी साथ ही साथ प्राणायाम करने लगा, शरीर में खूब क्रिया होने लगी। अन्त में वे प्रसन्न होकर कहने लगे आज तुम्हारे मूलाधार से द्विदल पर्यन्त छः चक्रभेद हो गये हैं, और कुछ अधिक चाहते हो? “मैंने कहा, आपकी जो इच्छा हो वही करें।”

उन्होंने कहा, "आज इतना ही रहने दो, इसी को अपने वश में करो।" इस प्रकार से एक बार में षट्चक्र भेद किसी का नहीं हुआ। मैं अपने भावों में लीन घर आया और साधन करने लगा। इस साधन की ओर मैं विशेष रूप से आकृष्ट हुआ तथा मन लगाकर इसका अभ्यास करने लगा।"

इस प्रकार योगी-सम्प्रदाय में प्रविष्ट हो साधनादि करते हुए भी ब्राह्मसमाज से उनका सम्बन्ध पूर्ववत् ही रहा। प्रत्येक रविवार को उपासना में योगदान करते रहे। तभी उनके पिता पुत्रवधू को लेकर कलकत्ते आये। कुछ दिन तो वे सब द्विजदास के साथ ही रहे, बाद में तीनों राजा लेन स्थित एक मकान में आ गये।

चतुर्थ अध्याय

श्रीहट्ट में वकालत, हिन्दू-समाज में प्रत्यावर्तन

श्रीयुक्त हरकिशोर चौधरी की हार्दिक इच्छा थी कि उनका पुत्र एक प्रतिष्ठित वकील बने। पिता के अनुरोध से एक वर्ष प्रेसीडेन्सी कालेज तथा दूसरे वर्ष मेट्रोपोलिटन कालेज के कानून की क्लास में भरती हुए थे। पढ़ाई कुछ भी नहीं की थी केवल हाजिरी देने ही के लिये जाते थे। १८८३ ई. में जब सिटी-कालेज में कानून विभाग खुला तो 'लॉ क्लास' में जाने लगे, इन दिनों वे सिटी-कालेज के अध्यापक थे। नौकरी छोड़ने पर भी 'लॉ कालेज' जाते रहे। परीक्षा देकर वकील बनने की कोई इच्छा न थी। किसी अदृश्य शक्ति से प्रेरित होकर 'लॉ क्लास' में उपस्थित हो जाते थे। वकालत न करके वह अध्यापन करना चाहते थे। लेकिन इस समय एक घटना के कारण उनके विचारों में परिवर्तन हो गया।

श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी ब्राह्मसमाज के आचार्य तथा प्रचारक थे। योगी सम्प्रदाय में प्रवेश लेने के बाद उसमें प्रचलित प्राणायाम आदि क्रियाओं का भी अभ्यास करते थे। साधन-शक्ति लाभ करने के कारण ब्राह्मसमाज में उनकी उपासना व भावना के प्रति अधिकांश लोग आकर्षित होने लगे थे। इसी समय गया के ब्राह्मसमाज के वार्षिकोत्सव में भी उन्हें बुलाया गया। वहाँ जाकर एक दिन जब वे आकाश-गंगा के पहाड़ पर घूमने गये तो उनकी कुछ साधुओं से भेंट हुई। उनकी बातों से वे इतने प्रभावित हुए कि गेरुआ वस्त्र धारण करके उन्हीं के आश्रम में रहकर भजन करने लगे। वहीं पर मानसरोवरवासी एक सिद्धपुरुष ने आकर उन्हें दीक्षा दी। यह घटना १८८३ ई. की है। श्रीयुक्त गोस्वामी

व बाबाजी महाराज में खूब प्रेम था, दोनों परिवारों में भी घनिष्ठ सम्बन्ध था। जब यह समाचार उन्होंने सुना तो कानून अध्ययन के विषय में उन्हें एक विचार आया। उन्होंने सोचा कि वकालत स्वाधीन व्यवसाय है कहीं भी रहा जा सकता है। किसी अन्य नौकरी में ऐसी स्वाधीनता नहीं है। अतः वह वकालत की परीक्षा देंगे तथा गया आदि पश्चिम के किसी स्थान में रहकर वकालत करेंगे। यह निश्चय करके वह पढ़ाई में लग गये तथा जनवरी १८८४ ई. में बी. एल. की परीक्षा दी। परीक्षा के बाद पिता के अनुरोध पर स्त्री सहित अपने गाँव गये।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के गाँव से हरिगंज महकमा विशेष दूर नहीं था। उन दिनों हरिगंज को फौजदारी अदालत में एक बहुत बड़ा जालसाजी का मुकदमा चल रहा था, रामानन्दपाल नामक जमींदार इससे सम्बन्धित थे। इस मुकदमे को लेकर श्रीहट्ट में काफी शोर था।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को थोड़े दिन बाद ही बी. एल. की परीक्षा में सफल होने की सूचना मिली। यह समाचार सुनते ही जमींदार रामानन्दपाल का एक मुंशी उनके घर आया और अपने मालिक के पक्ष में पैरवी करने के लिये उनसे व उनके पिता से अनुरोध किया। इस बार बाबाजी महाराज ने कहा-"अभी तो मैं केवल परीक्षा में पास हुआ हूँ, अभी तो सर्टिफिकेट भी नहीं मिला है, और फिर सर्टिफिकेट मिलने पर भी वकील के रूप में नामभुक्त कराया जावेगा तब कहीं मैं वकालत कर सकूँगा।" किन्तु मुंशी ने उनके पिता से बहुत विनती की इस पर उनके पिता ने उनसे कहा-"इनका मुकदमा तुम्हें लेना होगा।" उन्होंने जबाव दिया-"मुझे अभी सनद भी नहीं मिली है फिर किस तरह अदालत में वकील के रूप में जा सकता हूँ।" तब वे दृढ़ता से बोले-"तुम्हें कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा।" प्रिन्सेप साहब रचित

फौजदारी कार्यविधि सम्बन्धी एक कानून की पुस्तक उनके पास थी, उसमें एक स्थान पर लिखा हुआ था कि अदालत की स्वीकृति मिलने पर कोई भी आसामी के पक्ष में समर्थन कर सकते है। यह पढ़कर उन्होंने अपने पिता से कहा-"यदि अदालत की अनुमति मिल जावे तो आसामी के पक्ष में पैरवी कर सकता हूँ नहीं तो व्यर्थ में हँसी उड़ेगी।" उनके पिता ने कहा कि जिस प्रकार भी हो सके उनकी सहायता करो, यह एक सम्भ्रान्त जमींदार हैं। जमींदार के मुंशी भी सम्भ्रान्त वंशीय तथा श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के आत्मीय थे इस कारण वे बाध्य होकर मुंशी के साथ हरिगंज अदालत में गये।

एन्डरसन नामक विचारक की इजलास में यह मुकदमा चल रहा था। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने उन्हें अपना मन्तव्य बताया। इस पर उन्होंने विपक्षी दल के वकीलों से उनके वकालत करने के विषय में सम्मति जाननी चाही। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को सभी लोग अच्छी तरह जानते थे इस कारण वे सहज ही में सहमत हो गये तथा साहब ने भी उन्हें अनुमति दे दी।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज कॉलेज के दिनों ही से भाषण देने में अभ्यस्त थे। यद्यपि यह उनका पहला मुकदमा था तथा इससे पहले कभी अदालत में भी नहीं गये थे लेकिन भगवत्कृपा से जिरह के समय सब प्रश्नोत्तर अपने आप ही किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से आने लगे। जिरह काफी देर तक चली फिर मुकदमे की अगली तारीख पड़ गई। उनके बोलने के ढंग देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये, क्योंकि नये वकील के लिये इस तरह जिरह करना साधारण काम न था। इस तरह वहाँ उनकी खूब प्रशंसा हुई। बाद में वे घर लौट आए।

कुछ दिनों बाद ही बी. एल. परीक्षा का सर्टीफिकेट आ गया।

पहले ही दिन हरिगंज कचहरी में इतनी ख्याति मिलने के कारण उनके पिता तथा अन्य आत्मीयों ने श्रीहट्ट में ही वकालत करने के लिये आवेदन-पत्र भेजने को कहा। उन्होंने तो गया में वकालत करने का सोचा था लेकिन सबके अनुरोध पर श्रीहट्ट में ही वकालत करने का निश्चय कर आवेदन-पत्र भेज दिया। उस मुकदमें के सम्बन्ध में उन्हें प्रायः हरिगंज की अदालत में जाना पड़ता था। अन्त में भगवान की कृपा से विचारक ने अदालत में सैशन के विचार के लिये भेज दिया। इस मुकदमे से ही बाबाजी महाराज का खूब नाम हो गया।

इसके बाद ही श्रीहट्ट के एक और मुकदमे में भी जिस पक्ष में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज थे, वही पक्ष जीत गया। अतः इस तरह इन बड़े-बड़े मुकदमों में विजयी होने के कारण उनका नाम चारों ओर फैल गया तथा फौजदारी विभाग के वकीलों में उनकी प्रतिष्ठा हुई।

कोर्ट खुलने के कुछ दिन पहले ही श्रीयुक्त बाबजी महाराज श्रीहट्ट लौट गए। अदालत खुलते ही एक बड़े दीवानी मुकदमे की तारीख थी। एक पहाड़ी पर अधिकार करने के लिये यह एक जमींदार और सरकार के बीच का मामला था। सब-जज ने पहली बार विचार करके सरकार के पक्ष में अपना निर्णय कर दिया था। प्रतिपक्षी जमींदार ने इसके विरुद्ध जजी में अपील की। दोनों ओर से श्रीहट्ट के बड़े-बड़े वकील थे। तब तक बाबाजी महाराज भी काफी प्रसिद्ध हो चुके थे, अतः जमींदार-पक्ष ने उनको भी अपनी ही ओर नियुक्त कर लिया। उन्होंने खूब अच्छी तरह से मुकदमे के कागज को पढ़ा। मुकदमा आरम्भ होने पर दो-तीन दिन तक उन्होंने ही जिरह की । एक सप्ताह तक बहस होने के बाद जज ने जमींदार के पक्ष में फैसला दिया। इस तरह दीवानी और फौजदारी दोनों ही में उनका नाम हो गया। दोनों

तरह के मुकदमे उनके पास आने लगे। इस तरह वे थोड़े समय में श्रीहट्ट के एक प्रतिष्ठित वकील हो गये। उन्होंने शहर में जमीन खरीदकर अपना मकान भी बनवा लिया। घर में काफी लोग रहते थे। श्री श्रीमाताजी भी वहीं आ गई थीं। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के ताऊजी श्रीदीननाथ चौधरी तथा उनके दो सौतेले भाई उनके साथ ही रहने को आ गये। श्रीदीनानाथ बाबू बाबाजी महाराज से बहुत स्नेह करते थे। उनकी उन्नति देखकर वह बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्हीं के पास रहने लगे। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज भी जो कुछ कोर्ट से मिलता वह सब लाकर उन्हीं को दे देते थे, और इस तरह दीनानाथ बाबू ही घर चलाते थे। दोनों भाई अन्नदाकिशोर और हेमकिशोर गवर्नमेण्ट स्कूल में पढ़ते थे। इन लोगों के अलावा भी घर में अन्य लोगथे। बहुत से गरीब छात्र भी रहते थे। जो गाँव से शहर में किसी काम को आता वह भी इन्हीं के घर ठहरता था। इस तरह आत्मीय, स्वजन, छात्र तथा अतिथि से घर परिपूर्ण था।

गया अथवा उत्तर पश्चिम में जाकर किसी स्थान पर वकालत करने की जो इच्छा थी वह दब गई। यहीं रहकर वह उत्साहपूर्वक साधन-भजन करने लगे। उन्होंने अपना यह नियम बना लिया था कि सन्ध्या के उपरान्त मुकदमे सम्बन्धी कुछ काम नहीं करेंगे। दिन में वकालत का काम करते तथा शाम को साधन-भजन करते। भगवान की कृपा से उनकी बुद्धि तथा मेधा प्रखर थी, प्राणायाम और साधनादि क्रिया से चित्त की एकाग्रता भी वह लाभ कर चुके थे, इस कारण जब वह जो काम करते थे उसमें सम्पूर्ण मनोयोग दे सकते थे। उन्हें अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं होती थी। वह थोड़े ही समय ही में सब कुछ कर लेते थे। इस कारण उनके साधन-भजन में भी प्रायः

व्यतिक्रम नहीं होता था। इस समय उनके मित्र डॉ० सुन्दरीमोहनदास भी श्रीहट्ट ही में डाक्टरी कर रहे थे। ये दोनों ही योगी सम्प्रदाय में प्रविष्ट हुए थे। अपने घर में अधिक सदस्य होने के कारण बाबाजी महाराज इनके यहाँ जाकर प्राणायाम आदि क्रिया किया करते थे। १६३५ ई. की पौष मास की 'प्रवर्तक' पत्रिका में श्रीयुक्त सुन्दरीमोहनदास ने लिखा–"ब्राह्मसमाज से उनका सम्बन्ध शिथिल हो गया था। श्रीहट्ट में वकालत का प्रसार बढ़ने पर भी वह रोज सन्ध्या के उपरान्त हमारे साथ साधन करते थे.......हँसी सुनकर शहर के लोगों ने हम लोगों का नाम 'आनन्दी दल' रखा था।"

श्रीहट्ट में एक हिन्दू सभा थी। वहाँ पर प्रति रविवार को महाभारत आदि का पाठ होता था और कभी-कभी व्याख्यान भी होते थे। स्थानीय जज के रिश्तेदार इस सभा के सचिव थे। वे ढाका जिले के रहनेवाले थे। किन्हीं कारणोंवश इनके साथ कुछ सदस्यों का मतभेद हो गया था; अतः वह उन्हें सचिव पद से हटाने की चेष्टा में थे। यह सब देखकर वह दो मास के लिये ढाका चले गये, सभा के सचिव का पद खाली हो गया। योगी-सम्प्रदाय में प्रविष्ट होने के बाद से बाबाजी महाराज ने सभा-समितियों में जाना तथा भाषण देना बन्द कर दिया था। लेकिन अब सचिव का पद खाली होने पर अनेक सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने उनसे यह पद ग्रहण करने का अनुरोध किया। उन लोगों में से दो-चार लोग तो ऐसे थे, जिन्हें वे बचपन ही से आदरणीय मानते थे। पहले तो वह प्रस्तुत नहीं हुए लेकिन जब लोगों ने यह अनुरोध किया कि सभा की रक्षा के लिये सिर्फ दो महीने के लिये ही यह पद ग्रहण कर लें तो बाध्य होकर उन्होंने सब की बात मान ली। जब वह रविवार को गये तो देखा कि सभा की अवस्था बहुत शोचनीय है तथा

सभा में केवल चार-पाँच जन ही आते हैं। एक पण्डितजी आकर बहुत ही अनाकर्षक ढंग से महाभारत के कुछ श्लोक पढ़कर उनका बंगला भाषा में अनुवाद करते हैं, जब वे नहीं आते हैं तो कुछ नहीं होता है। सभा की ऐसी अवस्था देख उन्हें बहुत दुःख हुआ। अपनी आदत के अनुसार जो भी काम करें उसे यथासाध्य सुचारु रूप से करें, सभा की उन्नति के लिये चेष्टा करने लगे। वह स्वयं श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ किया करते थे, सो एक दिन जब पण्डितजी नहीं आये तो उन्होंने गीता का पाठ किया तथा व्याख्या की और यह अनुभव किया कि श्रोतावर्ग ध्यान से सुन रहे हैं। वह प्रति रविवार को गीता का पाठ व व्याख्या करने लगे। इससे लोगों की संख्या भी बढ़ गई तथा सभा में भी कुछ जीवन आया। पहलेवाले सचिव ने लौटने पर अपना पद ग्रहण नहीं किया सो बाबाजी महाराज ही उस पद पर आसीन रहे।

श्रीहट्ट शहर में गौड़ीय सम्प्रदाययुक्त अनेक गृहस्थ थे। इस कारण उन्होंने गीता के साथ-साथ चैतन्य-चरितामृत की व्याख्या करनी भी आरम्भ कर दी। इसके फलस्वरूप सभा में लोक समागम बढ़ता गया।

श्रीहट्ट में बदनसिंह (मणिपुरी) की एक मण्डली थी। वे लोग किसी के यहाँ कृष्ण-लीला का गान कर रहे थे। सब लोग मन्त्र-मुग्ध होकर लीला-गान सुन रहे थे तथा बीच-बीच में हरि-गान करते जाते थे। उस हरिध्वनि से ही उत्तेजित होकर जो लड़का कृष्ण बना था, वह मूर्च्छित हो गया। उसको घर ले जाया गया। उसकी मूर्च्छा सारे दिन नहीं टूटी। दूसरे दिन जब उसे स्नान कराया तो थोड़ा होश आया। फिर उसे एक मन्दिर में ले गये, ठाकुरजी के समक्ष बैठकर उसकी आँखों में से बराबर पानी बहता रहा। ठाकुरजी का प्रसाद खिला-पिलाकर उसे

उस दुकान पर ले गये जहाँ वह सुनार का काम करता था। वहाँ उसने जब कुछ काम करना शुरु किया तो फिर मूर्च्छित हो गया। इस तरह वह दो-तीन दिन में पूर्णरूप से होश में आया। इसी प्रकार दूसरी उल्लेखनीय घटना यह हुई कि एक बातरोग-ग्रस्त अर्द्धपंगु मनुष्य कीर्तन में सहयोग देकर पूर्ण स्वस्थ हो गया।

एक दिन जब सब लोग नगर-संकीर्तन के लिये इकट्ठे हुए। उस समय आकाश में बादल हो रहे थे। बूँदा-बाँदी शुरु हो गई, सब लोग खूब जोर से हरिनाम करने लगे। देखते-देखते बादल छट गये। इस तरह अनेक अद्भुत घटनाएँ घटने लगीं। एक बार लगातार पाँच दिनों तक रोज शाम को बाबाजी महाराज कीर्तन में जाते तथा सुबह लौटते और फिर स्नानादि से निवृत्त होकर मुवक्किलों का काम करते। इन पाँच दिनों में वे एक दिन भी एक घण्टे के लिये नहीं सोए लेकिन फिर भी उन्हें तनिक-सी भी थकान नहीं हुई।

संकीर्तन में हिन्दू ही योग देते थे, ब्राह्मसमाजी नहीं आते थे। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को अब हिन्दुओं सरीखा आचरण करते देखकर वे उन्हें कपटाचारी बताते थे, लेकिन वह सब ग्राह्य नहीं करते थे।

जब वह अदालत की परीक्षा देकर आये थे, उस समय उन्हें हिन्दू-समाज में लेने के सम्बन्ध में जो दलबन्दी हुई थी, वह पहले लिखी जा चुकी है। उस समय वह स्वयं हिन्दू-समाज में जाने को उत्सुक नहीं थे। लेकिन अब इस संकीर्तन के कारणवश उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि हिन्दू-समाजी ही मुक्त हृदय से कीर्तन में योग-दान करते हैं और भक्ति-भाव से परिपूर्ण होकर एक दूसरे से विद्वेष भी नहीं करते हैं। संकीर्तन के समय सब जाति-भेद भूलकर प्रेम में विभोर होकर नाचते हैं। उन्हें ऐसा लगा कि हिन्दू-समाज चाहे

कितना भी पतित क्यों नहीं हो गया हो, निकट भविष्य में हिन्दू भावापन्न मनुष्यों का अभ्युदय होगा, जिससे कि देश का कल्याण होगा। इसी धारणा के वशवर्ती होकर उन्होंने अपने को हिन्दू-समाजी मान लिया। खान-पान में तो वह बहुत ही नियमशील थे। माँस, मछली तो वे ब्राह्म समाज में हर समय ही छोड़ चुके थे।

थोड़े दिनों बाद उन्होंने यह भी अनुभव किया कि उनको हिन्दू-समाज में लेने के लिये जो दलबन्दी हो रही थी, वह भी शान्त हो गई है। तब उन्होंने भी अपना कर्तव्य समझकर पिता के आदेशानुसार पण्डितों की व्यवस्था के अनुरूप विधिपूर्वक प्रायश्चित किया। हिन्दू-समाज ने उन्हें पूर्णरूप से स्वीकार कर लिया।

"इसके बाद ताराकिशोर चौधरी के पिता ने अपने गाँव के गण्यमान्य लोगों-रामधन चौधरी, गोपीमोहन चौधरी आदि बहुत से बड़े लोगों से मिलकर जिनमें गंगाप्रसाद कर प्रमुख थे, हिन्दू-धर्म के अनुसार ताराकिशोर के कल्याण के लिये कालीपूजा आरम्भ की तथा सब गाँव वालों को निमंत्रित किया। ताराकिशोर के धार्मिक जीवन के साथ पूर्वोक्त व्यक्तियों का घनिष्ठ है। यदि हम उन्हें समाज में ग्रहण नहीं करते, तो हिन्दू-समाज का यह उज्जवल-रत्न सम्भवतः ब्राह्मसमाज ही में जीवन-यापन करता तथा ब्रजधाम के प्रधान महन्त स्वामी सन्तदास कोई नहीं हो पाता।"

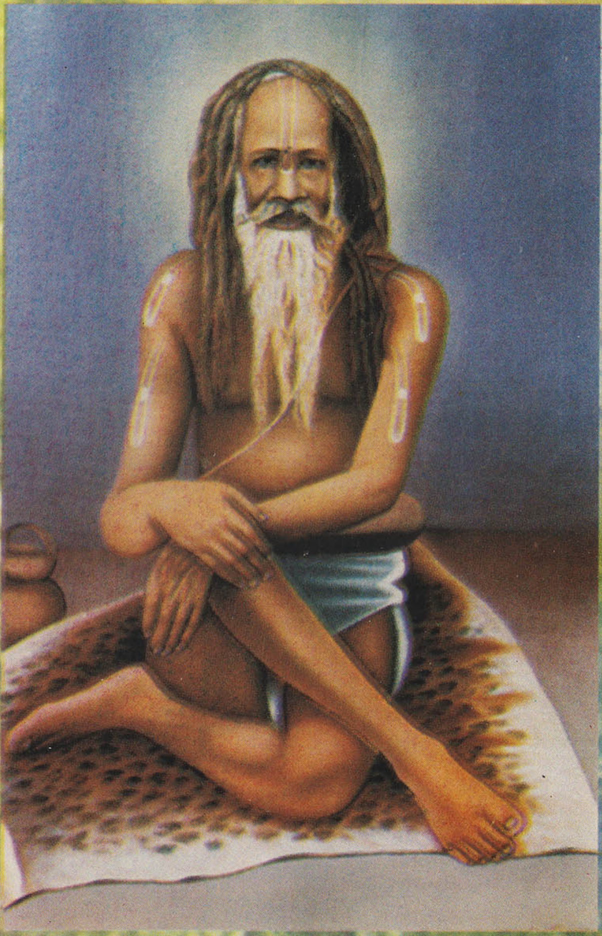

अनन्त श्रीविभूशित

स्वामी रामदास काठिया बाबाजी महाराज

पंचम अध्याय

कलकत्ते के हाईकोर्ट में योगदान, सद्‌गुरु लाभ

पूजा की छुट्टियों के समाप्त होते ही वह स्त्री के साथ कलकत्ता आ गये और १८८८ ई. के नवम्बर मास में हाईकोर्ट में योगदान किया। शुरू में व्यवसाय विशेष नहीं चला, इस कारण शीघ्र ही अर्थाभाव हो गया। जब उन्होंने शारदा बाबू से रुपये मँगवाये तो उन्हें उत्तर मिला कि वह रुपये उन्होंने और किसी को दे दिये हैं। इस कारण रुपये भेजने में देरी होगी, इस प्रकार वह रुपया भी उनकी जरूरत के समय काम में नहीं आया।

शाम को कचहरी से आकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज कुछ जलपान किया करते थे। इन दिनों अर्थाभाव के कारण उन्होंने जलपान छोड़ने का निश्चय किया तथा अपना यह मन्तव्य अपनी पत्नी को बतलाया। श्रीमती ठकुरानी के पास जो सिक्के जमा थे, वह उससे कुछ खाने के लिये मँगवाया करती थी। अतः यह उन्हें उचित नहीं लगता था। वह उन्होंने श्री श्रीमाताजी को बता दिया कि वह अब कोर्ट से आकर कुछ नहीं खायेंगे, लेकिन जब श्री श्रीमाताजी ने शाम को उनके कोर्ट से लौटने पर फिर नाश्ता दिया तो उन्होंने नहीं खाया तथा अपने गुरु श्रीजगतबाबू के यहाँ नित्य की भाँति चले गये। वहाँ पर ये सब गुरुभाई लोग मिलकर साधन किया करते थे। इधर इस तरह बिना खाये हुए जाते देखकर श्री श्रीमाताजी को बहुत दुःख हुआ। कलकत्ते के एक सम्भ्रान्त मल्लिक परिवार की नन्दिनी नाम्नी लड़की ने भी जगतबाबू से साधनादि सीखा था। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के पहुँचने के थोड़ी ही देर बाद वह भी वहाँ आई। अपने साथ वह फल, मिठाई

भी लाई। वह सब वहाँ के उपस्थित जनों में वितरित कर दी गई। इस घटना से बाबाजी महाराज इतने अभिभूत हुए कि उनके दोनों नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। उन्होंने सोचा-"हे भगवान ! तुम्हारी कृपा इतनी महती है कि एक दिन मैंने नहीं खाया तो तुम्हें सह्य नहीं हुआ जो यह उत्कृष्ट खाद्य-सामग्री तुमने अनायास ही लाकर प्रस्तुत कर दी।" उस मिठाई को भगवान का प्रदत्त समझकर उन्होंने ग्रहण किया। इसके बाद ही धीरे-धीरे उनकी आय बढ़ती गई फिर अर्थाभाव नहीं हुआ।

व्यवसाय का प्रसार बढ़ने लगा तथा उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी। साधन भजन पहले ही की भाँति चलता रहा। श्रीहट्ट की तरह सन्ध्या के उपरान्त मुकदमों का काम नही करते थे। कभी अकेले तो कभी गुरुभाइयों के साथ अनेक रात तक निष्ठा-पूर्वक आसन करते थे। कुछ वर्षो ही में उन्हें विशेष उच्चावस्था प्राप्त हो गई और उन्हें यह अनुभव हुआ कि इस स्थान पर जो कुछ प्राप्तव्य था वह उन्हें मिल चुका है। वह बहुतों को साधन में बैठाते तथा शक्ति का संचार कराते, शक्ति कहाँ और किस चक्र में है, वह सब उन्हें ज्ञात थी लेकिन इससे उनको तुष्टि नहीं हुई।

इस समय के मनोभावों के सम्बन्ध में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने स्वयं बताया-"इस योगी-सम्प्रदाय मे प्रविष्ट होकर प्रायः बारह साल तक प्राणायाम आदि किया। अन्त में मुझे ऐसा लगा कि जो कुछ साधन-क्रिया इस सम्प्रदाय में है, वह मुझे प्राप्त हो चुकी है.... और यहाँ रहकर ब्रह्म-साक्षात्कार हो सकेगा, ऐसा भी मुझे विश्वास न था। क्योंकि इस सम्प्रदाय में मैंने ऐसा कोई पुरुष नहीं देखा, जिसे ब्रह्म-साक्षात्कार हो गया हो। इस साधन में अपूर्व आनन्द अवश्य मिला, किन्तु यह ब्रह्मानन्द है, यह अनुभव नहीं हुआ। फिर यह आनन्दानुभूति

स्थायी भी नहीं थी, अतः यह क्षणिक आनन्द तो ब्रह्मानन्द हो ही नहीं सकता। मुझे आत्म-तत्त्व का भी प्रकाश नही हुआ।"

"इस साधन द्वारा शक्ति प्रकाशित हुई जो मैंने स्वयं अनुभव की। इस शक्ति के द्वारा ही मैंने केवल दृष्टिमात्र से कई रोगियों की व्याधि दूर की। मेरे दर्शन-मात्र से ही हिस्टीरिया के रोगी की मुर्च्छा दूर हो गई। किन्तु इस शक्ति ने भी आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-दर्शन का द्वार उद्घाटित नहीं किया।"

"अतएव इस साधन द्वारा मेरा अभीष्ट सिद्ध नहीं होगा, यह मुझे भली-भाँति अनुभव हो गया। इसके लिये तो ब्रह्मज्ञ सद्गुरु का आश्रय ही ग्रहण करना होगा, तभी मैं ब्रह्म-साक्षात्कार कर सकूँगा। इस तरह विवेचना करके मैं सद्गुरु-लाभ करने का उपाय सोचने लगा।"

उन्होंने साधक-दल में जाना कम कर दिया और ब्रह्मज्ञ सद्गुरु की प्राप्ति के लिये प्रयास करने लगे। श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामीजी के प्रति उनको सदैव ही से श्रद्धा थी। उन्हें जिस सद्गुरु की प्राप्ति हुई वह भी यह जानते थे। श्रीयुक्त गोस्वामी प्रभु अपनी पत्नी, सास और बन्धु उमेशबाबू के आग्रह पर गुरु से अनुमति लेकर कलकत्ता लौट आए हैं, सुनकर बाबाजी महाराज उनसे मिलने गये। बात-चीत के दौरान में गोस्वामी प्रभु ने यह भी बताया कि उन्होंने किस प्रकार सद्गुरु लाभ किया। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के हृदय में गोस्वामी प्रभु के प्रति अतिशय भक्ति थी, किन्तु उन्हें यह धारणा थी कि गोस्वामी प्रभु पूर्ण सिद्ध ब्रह्मज्ञ नहीं हुए हैं, इस कारण उनका शिष्यत्व ग्रहण करने के लिये उनका मन प्रस्तुत नहीं हुआ। इस विषय में बाबाजी महाराज ने अपने गुरुदेव के जीवन-चरित्र ग्रन्थ में लिखा है-"श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामी के साथ मेरा पुराना परिचय था। उन्हें

इस कुम्भ मेले से प्रायः बारह वर्ष पहले सद्गुरु लाभ हुआ था तथा फिर अनेक शिष्य भी हो गये थे। मैं अकसर उनके दर्शनों को जाता था और उनकी उत्कट तपस्या को देखकर मेरा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता था। उनके साधन से उनके मुखश्री में भी परिवर्तन होता हुआ देखता था। मैं उन्हें असाधारण पुरुष मानता, लेकिन फिर भी मैं उन्हें पूर्ण ब्रह्मज्ञ नहीं मानता था। वह सिद्ध मनोरथ हैं यह भी नहीं लगता था, इस कारण उन्हें गुरु बनाने की इच्छा नहीं हुई।" इस प्रकार वह सहसा ही अन्य प्रसिद्ध साधुओं को भी गुरु नही मान सके। महापुरुष साधारणतः आत्मगोपन करके रहते हैं, बाह्य लक्षणों से उनकी आभ्यान्तरिक अवस्था नही जानी जा सकती है, ऐसा बाबाजी महाराज का अभिमत था।

इस समय सद्गुरु प्राप्ति के लिये उनके हृदय में असीम व्याकुलता थी। लेकिन साथ ही साथ केवल जन-प्रसिद्धि ही के कारण किसी को भी गुरु मानने को प्रस्तुत न थे। बहुत ही अशान्ति में जीवन बीत रहा था। पूर्वोक्त जीवन-चरित्र-ग्रन्थ में उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा है-"सद्गुरु कब मिलेगा इसी चिन्ता में दिन बिता रहा था। दिन में तो जीविका के काम में व्यस्त रहता था, किन्तु सन्ध्या-उपरान्त तो बस यही चिन्ता रहती थी।"

एक दिन जब वे श्रीमद्भागवत ग्रन्थ पढ़ रहे थे, तो प्रथम स्कन्ध में एक स्थान पर उन्होंने यह लिखा हुआ देखा कि तीर्थ-पर्यटन द्वारा पाप-राशि धुल जाती है तथा सत्संग लाभ होता है, जिसके फल-स्वरूप धीरे-धीरे भगवद्भक्ति उदय होती है, फिर मोक्ष-लाभ होता है।* यह पढ़कर वह गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करने लगे तथा उन्हें यह उपाय

* प्रथम स्कन्ध, द्वितीय अध्याय के १६ वें से २१ वें श्लोक तक।

बहुत ही सहज साध्य किया। इस तरह उन्होंने यह स्थिर किया कि वह वकालत छोड़कर स्त्री के भरण-पोषण की व्यवस्था करके तीर्थ-पर्यटन को जावेंगे।

श्रीयुक्त मोहिनीमोहन चक्रवर्ती✤ उनके एक धर्मबन्धु थे। ये भी हाईकोर्ट के वकील थे तथा उनके पड़ौसी भी थे। बाबाजी महाराज ने इन्हें अपने मन की बात बताई तथा उनसे कहा कि उनकी पुस्तकें तथा फर्नीचर वगैरह बेच दें तथा इस तरह जो धन मिले वह श्री श्रीमाताजी को दे दें। श्रीहट्ट के श्रीयुक्त शारदाबाबू से भी रुपये मँगवा लिये। इस तरह सब प्रबन्ध करके जब उन्होंने घर पर यह संकल्प बताया तो उस दिन वहाँ बहुत ही करुणापूर्ण स्थिति हो गई। श्री श्रीमाताजी इतनी मर्माहित हो गईं कि वह ईंट से अपना सर फोड़ने लगीं तथा जिद करने लगीं कि वे भी उनके साथ जायेंगी। उस दिन की घटना के विषय में उनके भाई अन्नदाकिशोर ने बताया,"वकालत छोड़कर श्रीयुक्त मोहिनीबाबू को कानून की पुस्तकें देकर मुझे, हेमकिशोर तथा भाभी को निराश्रित छोड़कर सद्गुरु की आशा में तीर्थ भ्रमण को जावेंगे सुनकर हम सब रोने लगे। ठीक इसी समय भगवान् की कृपा से उनके क्लर्क 'हरिनारायणबाबू'● आ गए। यह दृश्य देखकर वह जल्दी ही जाकर हाईकोर्ट के जज श्रीयुक्त चन्द्रमाधव घोष तथा पूज्य भाईजी के मित्र प्रसिद्धि सामुद्रिक श्रीयुक्त रमणकृष्ण चट्टोपाध्याय को

✤ इनके अन्तिम दिनों में हमें इनके दर्शन हुए। बाबाजी महाराज के ऐसे घनिष्ट मित्र अधिक नहीं थे।

● श्रीयुक्त बाबाजी महाराज रचित उनके गुरुदेव के जीवन-चरित्र ग्रन्थ में जिन अभयनारायणबाबू के भाई हरिनारायणबाबू का उल्लेख है, वह क्लर्क हरिनारायणबाबू से भिन्न है।

बुलाकर लाये। वे लोग आए तथा उन्होने भाईजी को समझाया कि अभी उनके संसार-त्याग का समय नहीं हुआ है और इस प्रकार उन्हें शान्त किया।" यह घटना १८६१ ई. की होगी। इस घटना से सद्गुरु की खोज के लिये उनकी कातरता तथा व्याकुलता का अन्दाज लगाया जा सकता है। वह तीर्थ-भ्रमण को तो जा नहीं सके, किन्तु भगवान् ने उनकी आर्त पुकार सुनी। सब तीर्थों की सारभूता लोकतारिणी गंगा तो उनके पास ही थी "गंगा समं त्रिभुवने न च तीर्थमस्ति" और वे नित्य ही गंगा स्नान करते थे तथा कभी सुविधानुसार एकान्त में जाकर बैठते थे। एक दिन छुट्टी के दिन दोपहर के खाने के बाद गंगातट पर जाकर भजन करने की इच्छा हुई। जेठ का महीना था, भयानक गर्मी थी, रास्ता तप रहा था। तब भी वे गंगा की ओर चल दिये। हैरीसन रोड और चितपुर रोड के सुगम पर उन्हें याद आया कि निकटवर्ती मसजिद में एक मुसलमान फकीर रहते हैं। सो वह उनके दर्शनों को गये तथा प्रणाम किया। फकीर साह़ब ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया तथा कहा-"वहाँ बड़ा धूप है, बड़ा धूप है, घर में क्या नहीं होता?" पहले तो उनकी यह बात कुछ समझ में नहीं आई और वह गंगा की ओर चल दिये। चलते-चलते उन्होंने सोचा कि शायद फकीर साहब ने कहा है कि क्या घर में बैठकर भजन नहीं हो सकता है, जहाँ जा रहे हो वहाँ तो बहुत धूप है। फिर भी वह चलते गये और वहाँ जाकर देखा कि घाट पर कहीं भी तनिक सी भी छाया नहीं थी। सब जगह धूप थी। यह देखकर फकीर साहब के कथन की सत्यता को समझे तथा उनके प्रति श्रद्धा हो गई। लेकिन वह यह सोचकर कि जब भजन करने को आ ही गये तो अब न लौटेंगे। पण्डों के स्थान पर बहुत से काठ की सन्दूकणी पड़ी थीं जहाँ बैठकर स्नानार्थी तेल वगैरह लगाते थे सो

उन्होंने दो तीन को एक के ऊपर एक रख दिया तथा छाया में आसन लगा कर बैठ गये।

जब वह बैठे हुए गंगादेवी का ध्यान कर रहे थे तो एक बहुत ही आश्चर्यजनक घटना हुई। इस प्रकार की घटनाओं को वह साधारणतः बताया नहीं करते थे, यह तो हम लोगों का सौभाग्य है जो कि उन्होंने यह बताया जो इस प्रकार है-"मैं स्थिर होकर सोच रहा था कि यह गंगा तो मनुष्यों का पाप, ताप हरने के लिये धरा पर अवतीर्ण हुई है। शास्त्रों ने इन्हें पापनाशिनी कहा है सो मेरे पाप क्या इतने अधिक हैं जो यह धो नहीं सकती। मैं बहुत ही कातर दृष्टि से गंगा की ओर देख रहा था तभी मेरी आँखों के सम्मुख गंगोत्तरी का दृश्य स्थापित हुआ तथा वहाँ विराजित उमा-महेश भी दृष्टिगोचर हुए। मैं अभिभूत होकर वह सब देखने लगा, नमस्कार करना तक भूल गया। इसके बाद महेश्वरी ने मुझे एकाक्षरी बीज मन्त्र दिया और कहा, इस मन्त्र के जप के द्वारा ही सद्गुरु की प्राप्ति होगी। इसके बाद हर-गौरी तथा वह दृश्य अन्तर्हित हो गया, बस मेरे सम्मुख गंगा की पावन धारा थी। मेरा मन आनन्द से पुलकित हो गया तथा सद्गुरु प्राप्ति की आशा हुई।" यह घटना १८६१ ई. की है, इससे तीन वर्ष बाद ही श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने ब्रजविदेही महन्त श्री १०८ स्वामी रामदास काठिया बाबा से दीक्षा-लाभ किया था।

उन्होंने तीर्थ-दर्शन का संकल्प छोड़ दिया। दिन में तो वे व्यवसाय में रत रहते थे तथा शाम को देव-मन्त्र का साध्यानुसार जप करते थे। इसके कुछ महीने बाद उनके पिता का देहान्त हो गया। एक वर्ष के बाद पिता की बरसी करके वह १८६३ ई. में तीर्थ-भ्रमण को गये थे। वैद्यनाथ, काशी, गया इत्यादि जाकर तीर्थ दर्शन की प्रबल

आकांक्षा तृप्त की। इसके बाद ही कुछ महीने बीतने पर माघ-मास के प्रयाग में कुम्भ-मेला हुआ तथा वहीं उन्होने श्री १०८ स्वामी रामदास काठिया बाबा के दर्शन किये तथा किस प्रकार उनका शिष्यत्व ग्रहण किया, इसका विस्तृत विवरण उनके गुरुदेव के जीवन-चरित्र ग्रन्थ में लिपिबद्ध है। निम्नलिखित वर्णन उसी से उद्धृत किया गया है:-

"सन् १८९३ ई. में माघ मास में प्रयाग धाम मे कुम्भ मेला हुआ। श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामी भी अपने शिष्यों के साथ वहाँ पहुँचे हुए थे। मैं भी अपने एक मित्र के अनुरोध पर उनके ही साथ कुम्भ-मेले में गया। वहाँ जाकर जब मैं गोस्वामीजी के पास गया तो वे बोले-"तुमने यहाँ आकर अच्छा ही किया, बहुत से महात्मागण यहाँ पर समवेत हैं, किसी की भी शुभ दृष्टि पड़ने से उद्धार हो जायेगा।" मेरे मित्र श्रीयुक्त अभयनारायण के छोटे भाई श्रीयुक्त हरिनारायणराय थे। उनके बड़े भाई अभयबाबू भी गोस्वामीजी के स्थान पर ही रह रहे थे। हम दोनों को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुए तथा कहने लगे-"मैं अभी-अभी श्रीयुक्त बाबाजी महाराज (श्री १०८ स्वामी रामदास काठिया बाबाजी महाराज) के पास से आ रहा हूँ, मैंने उन्हें बताया था कि मेरा छोटा भाई यहाँ आने वाला था, कौन जाने वह आवेगा या नहीं।" इस पर बाबाजी महाराज ने बताया कि-"वह अभी आ रहा है, चलो तुम दोनों उनके दर्शन कर आओ।"

"तब हम दोनों श्रीयुक्त अभयबाबू के साथ बाबाजी महाराज के दर्शनों को गये। मुझे यह तो मालूम था कि अभयबाबू दीक्षा ले चुके हैं, लेकिन उनके गुरु किस प्रकार के साधु हैं, इस विषय में अनभिज्ञ था। जब मैं वहाँ पहुँचा तो देखा कि एक बहुत तेजस्वी साधु बैठे हुए हैं। श्रीयुक्त अभयबाबू ने हमें बताया कि यही उनके गुरु हैं। हम दोनों

ने उनको साष्टांग प्रणाम किया। अभयबाबू ने भी हम दोनों का परिचय दिया। तब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने कहा-"आना तो बहुत अच्छा हुआ" फिर मेरी ओर देखकर कहा-"इनका तो हमने वृन्दावन में दर्शन किया।" मैं आश्विन के महीने में वृन्दावन गया था और हरिनारायणबाबू भी गये थे यह सत्य था, लेकिन उनसे तो हमारा साक्षात् नहीं हुआ। फिर उन्होंने मुझसे ऐसा क्यों कहा वह समझ में नही आया। लेकिन हम तीनों वहाँ बैठ गये।"

"कुछ दिन पहले कलकत्ते में एक रात जब मैं बैठा हुआ चिन्तन कर रहा था तब मेरे मन में आध्यात्म तत्त्व सम्बन्धी एक प्रश्न उठा था, चिन्तन करने पर भी सन्तोषजनक उत्तर नही मिला था। जब हम सब उनके पास बैठे थे, तब उन्होंने मुझे लक्ष्य करके उस प्रश्न व उसके उत्तर की मीमांसा की। उनको इस तरह समझाते हुए देखकर मैं विस्मित हो गया तथा सोचने लगा-"यह कैसे सम्भव हुआ कि इतने दिन पहले सोचा प्रश्न इन्हें ज्ञात हो गया। शायद भगवान ने मेरे मन की लगन को समझा है, तभी उनके अपने जन को मेरे मन की बात मालूम हो गई, निश्चय ही यह सर्वज्ञ हैं। इस तरह मुझे कुछ आशा बँधी। मैं सोचने लगा कि ये क्या वही महापुरुष हैं जिनको मैं इतने दिन से खोज रहा हूँ। यही मुझ पर कृपा करेंगे इसीलिये आत्मप्रकाश कर रहे हैं। जो भी हो अभी मैं कुछ कहूँगा नहीं। फिर थोड़ी देर बाद हम लोग गोस्वामी प्रभु के स्थान पर आ गये। वहाँ भोजन करके अन्य महापुरुषों के दर्शन तथा सत्संग में बाकी समय बिताया, दूसरे दिन जब स्नान करके आया तो सुना श्रीयुक्त गोस्वामी प्रभु अपने शिष्यों सहित स्वामी दयालदासजी के दर्शनों को जा रहे हैं, स्वामी दयालदास झूँसी के पास ठहरे हुए थे, दिल्ली का एक सेठ उनकी सेवा में है। वहाँ रोज

ही लगभग दस हजार मनुष्य भोजन करते हैं, जो भी वहाँ जाता है उसे भोजन भी मिलता है। मैंने भी उनके दर्शनों को जाना स्थिर किया। सब लोग तो सुबह चाय पीकर गोस्वामी प्रभु के साथ ही चले गये, मैंने अभयबाबू तथा उनके शिष्य श्रीधर ने अभी चाय नहीं पी थी, अतः हम लोग पीछे रुक गये। जब हम लोगों की चाय आ गई तो श्रीधर चाय पीते-पीते कहने लगे कि गोस्वामीजी ने बहुत से शिष्य कर लिये हैं, सारे दिन मछली बाजार सा लगा रहता है, बहुत ही शोर रहता है, इससे तो मुझे बड़े काठिया बाबा अच्छे लगते हैं, सुना है कि उनके गुरु ने कहा था कि चार चेला करना सो उन्होंने चार प्रान्तों के चार चेले किये हैं अब और नहीं करेंगें मैंने श्रीधर की बात सच मान लिया, मुझे यह नहीं मालूम था कि श्रीधर जो मन में आए वह बोलते रहते हैं। मैं सोचने लगा कि कल तो मैने सोचा था कि शायद यही वह महापुरुष हैं, जो मुझ पर कृपा करेंगे, लेकिन अब तो श्रीधर के कथनानुसार वे अब और शिष्य नहीं करेंगे। चाय पीकर हम लोग साधु-दर्शन करते हुए घूमते-घूमते काठिया बाबा के स्थान पर पहुँचे। जब हम वहाँ प्रणाम करके बैठे तो वह अपने आप कहने लगे-"हमारा पाँच-छः चेला है, सुपात्र होने से अब भी चेला करता हूँ। मेरे मन में श्रीधर की बात से जो शंका हुई थी, उसे ही दूर करने के लिये उन्होंने ऐसा कहा है, यह मुझे लगा। लेकिन इस बारे में मैंने किसी से कुछ कहा नहीं। कुछ देर वहाँ बैठकर अन्य साधुओं का दर्शन करते कराते स्वामी दयालदासजी के स्थान पर भी गया। मैं वहाँ सिर्फ पाँच-छः दिन रहा लेकिन रोज ही जब मैं श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के दर्शनों को जाता था तो वह कोई न कोई ऐसी बात कहते जिससे उनका अन्तर्यामित्व प्रकट होता और मुझे ऐसा भान हुआ कि वही मुझ पर

कृपा करेंगे। जिस दिन मैं वहाँ से चलने वाला था, तो उनसे जब विदा लेने गया तो उन्होंने मुझसे कहा-"तुम चैत्र महीने में फिर से वृन्दावन आकर हमको दर्शन देना।" मैने कहा-"महाराज मैं वकालत करता हूँ, चैत्र महीने में तो कोई लम्बी छुट्टी भी नहीं है सो कैसे आ सकता हूँ, हाँ यदि आप मुझे खींच बुलायेंगे तभी सम्भव हो सकता है।" वह हँसकर कहने लगे-"हाँ ! तुमको महावीरजी बुलायेंगे।" उनसे विदा लेकर गोस्वामी प्रभु की अनुज्ञा ग्रहण कर मैं अपने मित्र के साथ कलकत्ता लौट आया। अपने मन की बात मैंने किसी को नहीं बताई तथा पहले ही की भाँति देव प्राप्त मन्त्र जपता रहा.......।

"मेला समाप्त होने पर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज श्रीवृन्दावन लौट गए। मैं चैत्र मास के अन्तिम सप्ताह में अभयबाबू के साथ श्रीवृन्दावन गया। श्रीयुक्त गरीबदास, श्रीयुक्त मोनीजी, कल्याणदास नामक रामानन्दी साधू तथा पुष्करदास उस समय आश्रम में थे। हम लोग शाम होने के बाद ही आश्रम पहुँचे। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज तथा अन्य सबको अभिवादन किया। श्रीयुक्त गरीबदास को देखकर मन में बहुत श्रद्धा हुई। उन्होंने रात को दाल-रोटी बनाकर भोजन कराया। हम लोग लगभग तीन हफ्ते आश्रम में रहे, रोज ही दाल-रोटी बनती थी। हम लोग बड़ी श्रद्धा से प्रसाद ग्रहण करते। चावलों का अभाव भी नहीं खटकता था। हम लोग भी अन्य जनों की भाँति अपने जूठे बर्तन स्वयं साफ करते थे, तथा इसके लिए कुछ बुरा भी नहीं लगता था। आहारादि का कोई कष्ट नहीं था, किन्तु आश्रम में रहकर जब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की दिनचर्या तथा उनके कार्यकलाप देखे तो मैं हताश हो गया। जाने से पहले जो कुछ मैंने उनके विषय में सोचा थावह वहाँ जाकर कुछ नहीं मिला। वे एक बहुत ही साधारण सांसारिक मनुष्य की

भाँति जीवन-यापन करते थे। रोज सुबह बाजार से खूब मोल-भाव करके सब्जी लाना, यदि कोई चेला कुछ खरीदकर लाये तो उससे हिसाब लेना, यही सब कुछ करते थे। रोज सुबह शाम सेवाकुंज के रास्ते पर जा बैठते तथा यात्रियों से पैसा, धेला व पाई मिलने पर बहुत प्रसन्न होते। कभी-कभी कोई ब्रजवासी भी उनके पास बैठकर गाँजा पीते तथा यात्रियों से कहते-'अरे यह दूधाहारी बाबा है, यह खाली दूध पीकर रहता है इनको कुछ दो।' यह सुनकर वह बहुत प्रसन्न होते। सुबह- शाम जो कुछ पैसे इकट्ठे करते उसे बहुत ही यत्न से रखते। रात को जब हम लोगों के साथ बातचीत करते तो भी भगवत् प्रसंग नहीं होता इधर-उधर की दुनियाँ भर की बातें होतीं। किस धनी ने उन्हें रुपये दिये तथा जयपुर का राजा उन्हें कब क्या देगा इन्हीं विषयों पर बातें करते। कभी अकारण तो कभी छोटी ही सी बात पर अपने शिष्यों को चिमटे से मारते तथा गंदी-गंदी गाली देते। जो उन्हें पैसा देता उसकी प्रशंसा करते जो कुछ नहीं देते उसकी निन्दा करते। साधारणतः अभयबाबू के प्रति स्नेह तथा मेरे प्रति कठोर भाव दिखाते। उनका ऐसा आचरण देखकर मेरे मन में उनके लिये जो ऊँची धारणा थी वह तिरोहित हो गई। उनके नये-नये साधारण स्तर के काम देखकर वह बहुत ही साधारण मनुष्य लगने लगे, किन्तु प्रयागराज में उनके व्यवहार के विषय में सोचकर यह सब सोचने में संकोच भी हुआ। एक बार ऐसा भी मन में आया कि प्रयागराज में जो कुछ हुआ वह शायद आकस्मिक रूप से घट गया था। लेकिन फिर यह भी सोचा कि यदि इनमें साधना ऐश्वर्य नहीं है तो साधु-समाज में इनका इतना मान क्यों हैं? शायद ये वयोवृद्ध हैं तथा ब्रजविदेही महन्त के पद पर हैं, इसी कारण सब कारण सब इनका आदर करते हैं। इस तरह मेरे मन में

तर्क-वितर्क चलने लगा, लेकिन इस विषय में मैंने किसी से कुछ बातचीत नहीं कीं, बस चुपचाप उनका आचरण देखता तथा मन ही मन आलोचना करता। एक दिन मुझे श्रीमद्‌भागवत का श्रीकृष्ण प्रसंग याद आया कि उन्होंने वृन्दावन व गोकुल में अनेक अलौकिक काम इस प्रकार किये कि कोई उन्हें साधारण बालक से अधिक नहीं समझ पाया, यहाँ तक कि ब्रह्मादिक देवता को भी मोह हो गया था, बाद में भगवान श्रीकृष्ण की कृपा ही से उन सबकी भ्रान्ति दूर हुई। यह सब सोचकर मेरे मन में आया कि यदि ये भी ब्रह्मरूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं तो कुछ भी असम्भव नहीं है। यह सब लीलामात्र है, लेकिन मुझे ये आशंका हुई कि यह मैं कैसे मानूँ कि मेरा सोचा हुआ ही यथार्थ है। जब तक मुझे यह निश्चित रूप से नही मालूम होगा तब तक तो उनको गुरु मानकर आत्मसमर्पण नही कर सकता हूँ। यदि वास्तव में ये महापुरुष हैं तो मेरे मन की बात जानकर मेरा सन्देह दूर करेंगे। यह सोचकर मैं निश्चिन्त हो गया।

"दो-एक दिन बाद जब हम दोपहर के भोजन के बाद उनके पास बैठे थे तो अभयबाबू के भाई हरिनारायण बाबू का पत्र मेरे नाम आया। अभयबाबू के पास प्रायः पत्र आते रहते थे, लेकिन उन्होंने कभी इस बारे में उत्सुकता नहीं दिखाई थी, लेकिन इस पोस्टकार्ड के बारे मे पूछा कि-'क्या लिखा है बताओ।' हरिनारायण बाबू ने मुझको दीक्षा लेने के सम्बन्ध में पूछा था। मैंने इस बारे मे उनसे कभी कोई बात भी नहीं की थी, अतः मेरी समझ में नही आया कि उन्होंने पत्र लिखकर यही बात क्यों पूछी? मैं श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को क्या जबाव दूँ यही सोच रहा था कि अभयबाबू बोल पड़े-'मेरे छोटू भाई की चिट्ठी है, उसने पूछा है कि बाबूजी ने आप से दीक्षा ली या नहीं।' तब बाबाजी

महाराज ने कहा-हाँ ! उनको लिख दो कि इनको हमसे दीक्षा मिल गया है।' अभयबाबू से यह कहकर मेरी ओर देखकर यह कहने लगे-'इस वक्त तुमको दीक्षा नहीं देंगे। तुम अपनी पत्नी के साथ श्रावण मास में आना तब तुम दोनों को एक साथ दीक्षा देंगे।' यह सुनकर मेरी चिन्ता दूर हो गई। अभी दीक्षा लेने को मैं प्रस्तुत भी न था, पहले मेरा सन्देह दूर हो फिर देखा जायेगा।"

"इसके दो-तीन दिन बाद ही हम कलकत्ता के लिये रवाना हो गये। यह मैं पहले ही बता चुका हूँ कि बाबाजी महाराज का मेरे प्रति बर्ताव कठोर था किन्तु जब आश्रम से विदा लेकर चला तो उन्होंने ऐसी स्नेहसिक्त दृष्टि से मेरी ओर देखा कि मैं प्रेम-विभोर हो गया। उनकी दृष्टि से मेरे अन्तर में प्रेम का ऐसा संचार हुआ कि कलकत्ता तक हृदय आलोड़ित रहा।"

"श्रीवृन्दावन में एक बार कथा प्रसंग में श्रीबाबाजी महाराज ने बताया था कि साधक के लिये तीन बातें माननी आवश्यक हैं-

(१) चतुर्थ प्रहर में निद्रित न रहना।

(२) भीतर से काम करना, निन्दा व स्तुति को नहीं देखना।

(३) सदा शुक्ल रहना–जिसका अर्थ मैंने निष्पाप व निष्कपट रहना ग्रहण किया।

अन्य उपदेश भी दिये, लेकिन यहाँ ये तीन ही उल्लेखनीय हैं।

"मैंने कलकत्ता पहुँचकर पहलें उपेदश को कार्य रूप में परिणित करने की चेष्टा की, लेकिन असफल रहा और जब कृतकार्य हुआ तो माथे में दर्द रहने लगा तथा व्यवसाय में शारीरिक कष्ट-बोध हुआ। मेरा स्वभाव वायु प्रधान प्रकृति का था। मुझे बहुत समय से गहरी नींद नहीं आती थी। योगी-सम्प्रदाय में जब प्राणायाम साधन

करता था तो शरीर में बायु की गति बहुत बढ़ गई थी। कुछ वर्षों से गहरी नींद नहीं आना प्रायः बन्द ही हो गया था। रात के अन्तिम पहर ही में तनिक ठण्ड होने पर नींद आती थी। लेकिन मैं उनके उपदेशानुसार चेष्टा करता रहा। इसी बीच आषाढ़ के महीने में एक अलौकिक घटना हुई। मैं कमरे में खिड़की के पास मसहरी लगाये सो रहा था और स्वभावानुसार रात के अन्तिम पहर में भी मैं निद्रित था। तभी किसी ने मुझसे 'उठ' कहकर मेरे ऊपर एक छोटा सा ढेला फेंका। मैं तभी उठ गया, और ढेले को हाथ में उठा लिया। खिड़की से पास आकर देखा तो वहाँ कोई नहीं था तथा मसहरी में भी कोई छेद नहीं था। ढेला किस तरह मसहरी के अन्दर आया समझ में नहीं आया लेकिन बहुत आश्चर्य हुआ। इसके बाद एक दिन खुली छत पर लेटा था तो रात्रि के शेष प्रहर में किसी ने बड़े मृदु स्वर में मेरा नाम तीन-चार बार लेकर पुकारा, वह पुकार सुनकर मैं उठ गया, चारों तरफ देखा, लेकिन किसी को नहीं पाया, अवाक्-सा होकर छत पर घूमने लगा।"

"इन सब घटनाओं का मूल कारण तो मैं निश्चित नहीं कर सका, मैं दैव-प्राप्त मन्त्र ही जप करता था, वही करता रहा। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के प्रति मेरा पूर्ण विश्वास नहीं था, यह मैं पहले ही बता चुका हूँ। श्रावण मास में दीक्षा लेने जाने की इच्छा भी नहीं थी। मैं सद्गुरु की आशा में दिन गुजार रहा था। शाम को तो बस यही सोचता रहता था कि मुझे सद्गुरु कब मिलेंगे। मेरी ऐसी अवस्था देखकर शायद भगवान को कुछ दया आई तथा एक अचिन्तनीय घटना घटी। आषाढ़ मास के अन्तिम दिन थे, मैं ऊपर छत पर सो रहा था, शेष रात्रि के समय मेरी नींद खुल गई। मैं उठकर बैठ गया, बैठते ही

मैंने देखा कि आकाश मार्ग से श्रीयुक्त बाबाजी महाराज मेरी ओर आ रहे हैं। क्षण भर ही में वे छत पर मेरे सम्मुख आकर बैठ गये, मुझे आश्वस्त किया तथा मेरे कान में एक मन्त्र दिया, मन्त्रोपदेश देकर वह आकाश पथ ही से ओझल हो गये। मुझे इस प्रकार दीक्षा देकर जैसे ही वह गये तभी उसी स्थान पर मुझे श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामी की मूर्ति भी दिखाई दी। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के अन्तर्धान होने पर मैंने अनुभव किया कि उनका दिया हुआ मन्त्र मेरे अन्तर की गहराइयों में अनुप्रविष्ट हो गया तथा उनके सम्बन्ध में जो कुछ मेरे हृदय में शंका थी वह भी समूल नष्ट हो गई। मुझे उसी क्षण ऐसा लगा कि मेरा जीवन धन्य हो गया और मैंने चिर अभिलषित सद्गुरु लाभ कर लिया। मैंने उन्हें पूर्णज्ञ ब्रह्मर्षि मान लिया।"

"इसके बाद श्रावण मास के शेष भाग में मैं अपनी पत्नी तथा भाई के साथ वृन्दावन गया, अभयबाबू भी मेरे साथ गये। जब मैंने जाकर प्रणाम किया तो उन्होंने कहा कि भाद्र मास की कृष्णाष्टमी को हम दोनों को दीक्षा दी जायेगी। जन्माष्टमी के अभी आठ-दस दिन बाकी थे इन दिनों भी पहले ही की भाँति उनका आचरण रहा, लेकिन अब मेरे मन में संशय उठने का प्रश्न ही नहीं था। मुझे विश्वास हो गया कि यह सब उनकी लीलामात्र है, जो सर्वसाधारण की बुद्धि से परे है। जो यहाँ रहकर भी सैकड़ों मील दूर कलकत्ता में मुझे देख सकते हैं तथा वहाँ पहुँचकर मुझे दीक्षा दे सकते हैं वह निश्चय ही मेरा उद्धार करेंगे। अब मुझे उनके समक्ष आत्म-समर्पण करने में कोई संकोच नहीं रहा और मैं फिर से दीक्षा लेने के लिये प्रस्तुत हो गया, लेकिन मैंने उनसे यह तो कहा कि आप जब कलकत्ता में छत पर मुझे दीक्षा दे चुके हैं, तो अब क्या आवश्यकता है? इस पर उन्होंने कहा, 'हाँ ! फिर भी

दीक्षा दूँगा।' इस कारण मैं फिर से दीक्षा लेने को प्रस्तुत था लेकिन मेरी पत्नी कुलगुरु से दीक्षा ले चुकी थीं तथा वह मंत्र भी उन्हें प्रिय था इस कारण वह प्रस्तुत नहीं थीं। अभयबाबू रोज ही उन्हें सद्गुरु से दीक्षा लेने के माहात्मय के विषय में उपदेश देते थे लेकिन वह फिर भी दीक्षा लेने को तैयार नहीं हो रहा थीं। जन्माष्टमी के एक दिन पहले भी उन्होंने अभयबाबू से यह कहा के वह बहुत दिनों से उस गुरुमंत्र का जप कर रही हैं और उससे उन्हें प्रीति हो गई है सो वह उस मंत्र के सिवाय और कोई मंत्र नहीं जपेंगी। मैने उनसे इस विषय में कुछ नहीं कहा क्योंकि मुझे विश्वास था कि जब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने कहा है तो उनकी भी दीक्षा होगी ही।"

"अगले दिन जन्माष्टमी को जब हम नित्य-कर्म से निवृत्त होकर आए तो बाबाजी महाराज ने मुझसे कहा कि बाजार से नया कपड़ा, तुलसीकाष्ठ की माला, गोपीचन्दन लाना होगा, आज तुम लोगों की दीक्षा होगी। मैं यह सुनकर स्त्री के पास रुपये लेने गया तब वह मुझसे बोली, 'तुम्हारे साथ मैं भी दीक्षा लूंगी। मेरे लिये भी माला, कपड़े वगैरह ले आना' मैंने हँसकर कहा, 'अरे! तुम तो दूसरी बार दीक्षा ग्रहण करने वाली नहीं थीं।' इस पर उन्होंने जबाव दिया, 'हाँ ! फिर से दीक्षा लेने की मेरी इच्छा नहीं थी, किन्तु आज सुबह से दीक्षा के लिये भीतर से प्रेरणा हो रही है इसलिये तुम्हारे साथ मैं भी दीक्षा लूँगी।'

"तब मैं श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की महिमा सोचते-सोचते बाजार गया, एक धोती का जोड़ा, दो तुलसीकाष्ठ की माला तथा थोड़ा गोपीचन्दन लेकर आया। दोपहर को बाबाजी महाराज ने मुझे दीक्षा दी। प्रथम एक मंत्र मेरे कर्णकुहर में तीन बार उच्चारित किया और कहा

कि साधारणतः इसी मंत्र का जप करना, पैर में जूता होने पर इस मंत्र का जप नहीं करना। इसके बाद जो मंत्र मुझे कलकत्ता में छत पर आविर्भूत होकर दे गये थे वह फिर से मेरे कानों में उच्चारित किया। इस मंत्र के सम्बन्ध मे उन्होंने उपदेश दिया कि इसका जप नहीं करना होगा यह समय होने पर अपने आप स्फुटित होगा। इसका जाप स्वतः होता है किया नहीं जाता है। मेरी दीक्षा के बाद मेरी पत्नी की दीक्षा हुई, किन्तु उसका मंत्र मेरे दोनों मंत्रों से पृथक् था। मेरे सामने ही उनकी दीक्षा हुई। इस प्रकार हम दोनों नें श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की कृपा लाभ की।"

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने २४ अगस्त १८६४ ई. में चारों सम्प्रदाय के वैष्णव आचार्य महन्त पूर्णज्ञ ब्रह्मर्षि श्री १०८ स्वामी रामदास काठिया बाबाजी महाराज से दीक्षा लाभ किया। जन्माष्टमी के दोदिन बाद ही ब्रज-परिक्रमा आरम्भ होती है। श्री श्री बाबाजी महाराज और श्री श्री माताजी अपने गुरुदेव के साथ इस बार परिक्रमा में गये। परिक्रमा समाप्त होने पर कुछ दिन आश्रम में रहकर पूजा की छुट्टियों के शेष में गुरुदेव की अनुमति लेकर कलकत्ता लौट आए।

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय

वकील के रूप में

श्रद्धेय नेता विपिनचन्द्रपाल ने अपनी आत्मकथा-(Memories of my Life and Times) में एक स्थान पर लिखा है-"Though his practice was not as large as that of some of his contemporaries in the Calcutta High Court, he was recognised as one of the very best lawyers in the profession, taking his place in the estimates of many of those who worked with him, only next to that of Sir Rash Behari Ghosh. But financially he did not succees as well as some other vakeels in the front rank of the profession. And the reason was that Tara Kishore never allowed his legal work to interfere in any way with the regular pursuit of his religious duties".

यद्यपि उनकी प्रैक्टिस उनके समसामयिक वकीलों से कुछ कम थी, किन्तु उनकी गणना कलकत्ता हाईकोर्ट के सर्वश्रेष्ठ वकीलों में की जाती थी। उनके सहकर्मियों के मत-अनुसार एक वकील के रूप में उनका स्थान सर रासबिहारी घोष के बाद ही था, किन्तु उपार्जन में उन्हें अन्य अग्रगण्य वकीलों की भाँति सफलता नही मिली, क्योंकि उन्होंने अपनी वकालत के लिये नित्य-नियमित धर्मानुष्ठान में व्यवधान नहीं होने दिया।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के वकील-जीवन के विषय में कुछ बातें उल्लेखनीय हैं। वह निम्नलिखित हैं-

प्रथमतः तत्कालीन श्रेष्ठ वकीलों के अनुसार उनका स्थान एक मात्र सर रासबिहारी घोष ही के बाद था, इसमें अत्युक्ति नही है।

उन्होंने सन् १८८८ से सन् १६१५ ई. पर्यन्त तक वकालत की, अतएव उनके साथ के पुराने वकील तो एक-दो छोड़कर जीवित भी नहीं हैं, इस कारण उन लोगों का अभिमत संग्रह नहीं किया जा सकता है। जिन लोगों ने उनके सामने वकालत आरम्भ की तथा जिन्होंने उन्हें दस-पन्द्रह वर्ष वकील के रूप में देखा और उनके सम्पर्क में आए उन्हीं के मत को हम लोग स्वर्गीय विपिनचन्द्रपाल लिखित astimates of many of those who worked with him (सहकर्मी मानकर) ग्रहण कर सकते हैं। इन लोगों में से कुछ का अभिमत इस प्रकार है।

कलकत्ता हाईकोर्ट के महामान्य भूतपूर्व विचारपति तथा भारत सरकार के भूतपूर्व कानून मन्त्री माननीय सर मन्मथनाथ मुखोपाध्याय ने १३४४ बंगाब्द की श्रावण संख्या 'सुदर्शन' पत्रिका में लिखा-'श्रीयुक्त ताराकिशोर से मेरा प्रथम परिचय १८६६ ई. में हुआ। मैं तब तत्कालीन सरकारी वकील श्रीयुक्त रामचन्द्र मित्र के नीचे काम सीख रहा था। ताराकिशोर बाबू तब बारह वर्ष पुराने वकील थे। उन दिनों मेरे एक मुस्लिम बन्धु का विषय-सम्पत्ति सम्बन्धी एक मुकदमा चल रहा था। वह ढाका के अन्य वकीलों का अभिमत लेकर श्रीयुक्त रासबिहारी घोष की राय लेने के लिये कलकत्ता आए और मुझसे इस विषय में सहायता करने का अनुरोध किया। मामला काफी दुरूह था। रासबिहारी बाबू ने अपना अभिमत देने के बाद हम लोगों से पूछा कि हम लोग अन्य किसी का भी अभिमत लेना चाहेंगे? इस पर हमने उनसे कहा कि हम उनके मन्तव्य पर ही निर्भर रहकर काम करेंगे, क्योंकि उनके अभिमत के साथदूसरों के अभिमत का भी साम्य है। इस पर उन्होंने हमको उपदेश दिया कि श्रीयुक्त ताराकिशोर से भी इस विषय में परामर्श लेना ठीक रहेगा, क्योंकि वे मुस्लिम कानून के

विशेषज्ञ हैं। उन्होंने यह भी कहा कि यदि ताराकिशोर बाबू का अभिमत अन्य रूप में हुआ तो वे फिर वे विचार करेंगे। इसी केस के उपलक्ष्य में मैं उनके यहाँ गया और तभी उनसे मेरा परिचय हुआ। मैने तो उन्हें एक बड़े वकील ही के रूप में जाना, उनके अन्तर में कानून के अलावा भी कुछ महत् वस्तु है, उसे जानने का न तो सुयोग ही मिला और न ही क्षमता थी।

"रामचन्द्र मित्र बहुत बार मुझे विशेष-विशेष वकीलों की जिरह सुनने के लिये इगलास में जाने का कहा करते थे, ताराकिशोर बाबू की वक्तृता सुनने को अकसर कहते थे। जब मैं स्वयम् वकील हो गया तो 'बार लाईब्रेरी' में ताराकिशोर बाबू को अच्छी तरह देखने का सुयोग मिला। जहाँ लाईब्रेरी में बैटता था, वह भी नजदीक ही में बैठते थे। अदालत में काम न होने पर वहीं बैठकर लिखा पढ़ा करते थे।"

"ताराकिशोर बाबू की वकालत धीरे-धीरे बढ़ती गई और वह प्रथम श्रेणी के वकील हो गए। जिसने उनको सुना वही उनकी तर्क करने की क्षमता से प्रभावित हुआ। उनकी प्रखर बुद्धि, गम्भीर मनन और चित्त-एकाग्रता से उन्हें कर्म-जगत में खूब सफलता मिली। वकालत में वह असाधारण परिश्रम करते थे। मुकदमे के कागजों का खूब बारीकी से अध्ययन करते थे तथा फिर भली-भाँति चिन्तन करके मुख्य-मुख्य बातें लिख लेते थे। इस कारण मुकदमे के समय उन्हें कुछ बताने व याद दिलाने की आवश्यकता नहीं होती थी। उनको देखकर ही लगता था कि वह उच्चकोटि के वकील हैं, वकालत से भिन्न भी उनमें कुछ और है यह उनके वकालत के काम से नहीं जाना जा सकता था।"

"मुझे याद है एक दीवानी मुकदमे में मैं श्रीयुक्त रासबिहारी घोष क़े साथ था तथा दूसरे पक्ष में ताराकिशोर बाबू अपेलेण्ट के पक्ष में थे। हम लोगों की जीतने की आशा थी, लेकिन हम लागों के परामर्श समाप्त होने पर रासबिहारी बाबू ने कहा था–वैसे तो कुछ बात नहीं है, लेकिन उस पक्ष में ताराकिशोर हैं।"

कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रतिष्ठित वकील श्रीयुक्त ब्रजलाल शास्त्री ने भी उक्त पत्रिका में लिखा-"वह उदासीन प्रकृति के होने पर भी वकालत का काम विशेष मनोयाग ही से करते थे। उनसे आयु में बड़े तथा अधिक प्रतिष्ठित लोग भी उनके गुणों और शक्ति की प्रशंसा करते थे। एक हिन्दू कानून संक्रान्त जटिल मुकदमे में ताराकिशोर बाबू अपेलेण्ट की तरफ से थे। कई दिन तक बहस होने के बाद अपेलेण्ट जीत गया। श्रीयुक्त रासबिहारी घोष प्रतिपक्षी की तरफ से थे। उन्होंने मुकदमे की सुनवाई के समय बहुतों से कहा-'इस जटिल मुकदमे में ताराकिशोर ने अपेलेण्ट के पक्ष में इतने सुन्दर रूप में सवाल-जबाव किये कि शायद मैं भी उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकता था।'

"उन्होंने अध्ययन और अध्यापन के समय तर्कशास्त्र का विशेष अनुशीलन किया था, अतः वह उनके कर्मक्षेत्र में काम आया। तीक्ष्ण बुद्धि, एकाग्रता तथा चिन्तनशीलता ने उनके सब काम सरल कर दिये। मुकदमे के कागज बारीकी से पढ़ते तथा जरूरी बातें नोट करते जाते थे। केस के अनुशीलन के विषय में जितने निपुण थे, कानून के सम्बन्ध में भी उनकी उसी प्रकार प्रगाढ़ व्युत्पत्ति थी। इन गुणों के संयोग ही के कारण वह वकालत के व्यवसाय में विशेष पारदर्शी थे।"

"अपने उन्नत चरित्र और कार्य-कुशलता के कारण वह सब वकीलों के स्नेहपात्र थे। उनकी योग्यता और कर्तव्यनिष्ठा को देखकर

हाईकोर्ट के जज भी उनका आदर करते थे। हाईकोर्ट के एक जज माननीय नरिस साहब की अदालत में उनके कई मुकदमे थे। एक बार वृन्दावन जाते समय उन्होंने उनसे अनुरोध किया कि उनकी अनुपस्थिति में मुकदमे की सुनवाई नहीं की जावे। जज साहब ने बड़े प्रेम से कहा–'ताराकिशोर तुम्हारे चले जाने पर हम कैसे कर सकते हैं।' इस तरह जज साहब ने उनकी प्रार्थना मानी।"

श्रीयुक्त सर मन्मथनाथ मुखोपाध्याय ने जो यह कहा-'वकालत कार्य में वे असाधारण परिश्रम करते थे' अतः उनके काम को देखकर सब बाहरी लोग यही जानते थे कि वह अपने व्यवसाय के लिये थोड़ा ही समय देते थे। व्यवसाय कर्म तो वह सुबह ही कुछ घण्टों के लिये करते थे। इसका रहस्य यही था कि वह मुवक्किलों के काम के लिये अखण्ड मनोयोग से चिन्तन व अध्ययन करते थे और इस तरह समय अधिक नहीं लगता था। वह थोड़े ही समय में अधिक काम कर सकते थे जो कि उनकी साधनादि का फल था। उन्होंने यह भी बहुत बार बताया कि पातंजलिदर्शन अध्ययन के फलस्वरूप ही मेरे कानून ज्ञान में विशेष उत्कर्ष हुआ। मैमनसिंह के श्रीयुक्त काशीनाथ नियोगी से सुना कि–'उनकी बैठक में चारों तरफ मुकदमे के कागजों का ढेर लगा रहता था और वे जल्दी-जल्दी फाइलों को लेकर एक के बाद एक पृष्ठ उलटते जाते थे।' वह इसी प्रकार केस तैयार कर लेते थे। उन्होंने हम लोगों को सुनाया-'श्रीभगवत्कृपा से ऐसा हो जाता था, नहीं तो उनके समय में करना साध्यातीत था।' कलकत्ता हाईकोर्ट के वकील श्रीयुक्त रामतारण चट्टोपाध्याय से यह भी सुना कि बाबाजी महाराज के वकालत छोड़ने से पहले रासबिहारी घोष ने उनसे कहा था-'ताराकिशोर थोड़े दिन और अपेक्षा करो, तीन-चार लाख रुपया लेकर जा सकते हो, मैं

अब और अधिक दिन यह व्यवसाय नहीं करूँगा।' यथार्थ में वकीलों में उनका स्थान सर रासबिहारी ही के बाद था।

अब तक जो लिखा गया है उससे उनकी वकालत की प्रतिभा का परिचय अवश्य हुआ है, लेकिन वकील के रूप में यह परिचय यथेष्ट नहीं है। वकील के रूप में उनकी चारित्रिक विशेषताऐं प्रतिभा की अपेक्षा अनेक श्रेष्ठतर हैं। पहली विशेषता उनकी असाधारण सत्यता है। यह कहना कि बिना झूठ का आश्रय लिये वकालत का व्यवसाय नहीं चल सकता है सर्वथा गलत है जो बाबाजी महाराज ने अपने जीवनकाल में सिद्ध कर दिया।

वकील के रूप में उनका शास्त्रीय चारित्रिक गुण विशेष मधुर और चित्ताकर्षक था। श्रीयुक्त ब्रजलाल शास्त्री ने अपने पूर्वलिखित प्रबन्ध में एक स्थान पर लिखा है "हाईकोर्ट में आकर भी वह अपने शिक्षक जीवन के संस्कारों को त्याग नहीं सके। यहाँ भी नये वकीलों को सिखाया पढ़ाया करते थे। उनके अनुग्रह से बहुतों ने कर्म-क्षेत्र में प्रवेश किया तथा उनके जीवन ही से उदाहरण लिया। यदि कोई नया वकील अपने कर्तव्यपालन में त्रुटि कर बैठता तो वह उसे भलीभाँति समझाते। उनका उपदेश यही था, "किसी कार्य का भार लेने पर यथाशक्ति उसो निर्वाह करना चाहिये रुपये के विषय में नहीं सोचना चाहिये।" बहुत से नये वकीलों की जीविका संस्थान में उन्होंने सहायता दी। वह प्रत्येक मुकदमे में किसी न किसी को सहकारी वकील नियुक्त करते थे। अकसर स्वयं भी आर्थिक सहायता करते थे। वह अश्वत्थ वृक्ष के समान थे उनकी आश्रय छाया अनेकों ने ग्रहण की।"

"वकालत वृत्ति.............उने धर्म भाव को आच्छन्न नहीं कर सकी, वरन् उन्होंने हाईकोर्ट में एक नूतन भाव का संचार किया

जिनके लिए बहुत से उनके निकट ऋणी हैं। हाईकोर्ट की लाईब्रेरी में एक संस्था की रचना की। कोर्ट के काम के बीच अथवा अन्त में जब उन्हें अवकाश मिलता, वह समय सत्संग ही में कटता था। उनके आदर्श व उपदेश द्वारा बहुतों के मन में धर्म-भाव का संचार हुआ जिससे कि उनके शुष्क तर्कमय जीवन में भी प्रीति और शान्ति का समावेश हुआ। श्रीयुक्त कालीकृष्ण सैन, श्रीयुक्त शारदाप्रसन्न राय, श्रीयुक्त श्रीशचन्द्र चौधरी और श्रीयुक्त मोहिनीमोहन चक्रवर्ती आदि श्रीयुक्त ताराकिशोर चौधरी से उम्र में बड़े होने पर भी उनका समुचित आदर व श्रद्धा करते थे तथा उनके साथ सत्संग में समय व्यतीत करते थे। इन सब लोगों को इतना प्रभावान्वित देखकर बहुतों के मन में धर्म-भाव अंकुरित हो गया था और इस तरह उन्हें संसार संघर्ष में शान्ति प्राप्त हुई।"

सर मन्मथनाथ ने भी लिखा, 'एक दिन मैं दो विचारकों के सम्मुख एक दीवानी मुकदमे में जिरह कर रहा था। किसी कानून धारा के विषय में तर्क चल रहा था। मुझे विश्वास था कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह स्वतः सिद्ध है तथा उसके सम्बन्ध में किसी नजीर की आवश्यकता नहीं है। विचारक इसे मानने को तैयार नहीं थे तथा बार-बार जिज्ञासा कर रहे थे कि मैं अपने पक्ष में कोई नजीर उपस्थित कर सकता हूँ अथवा नहीं। मैंने विरक्ति से उत्तर दिया कि दो और दो मिलाकर चार होता है, लेकिन यदि वे लोग पाँच होता है ऐसा निर्धारित कर दें तो आज से उनका निर्धारण ही भविष्य के लिए नजीर बन जायेगा। ताराकिशोरबाबू इस समय अदालत ही में थे, दो बजने में दस-पन्द्रह मिनट रहे होंगे। वह उठकर लाईब्रेरी में चले गये। बाद में दो बजे के करीब मैं भी लाईब्रेरी पहुँचा तब उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या

मुकदमा खतम हो गया। मैंने जबाब दिया कि मेरे सवाल जबाब अभी समाप्त नहीं हुए हैं। उन्होंने मुझे बताया कि मैं जो तर्क कर रहा था वह ठीक था किन्तु मेरी बात थोड़ी रूढ़ हो गई थी, अकारण ही रूढ़ बात कहना ठीक नहीं होता है। मनुष्य कितनी बार अपनी पास रखी चीज भी नहीं देख पाता है और सहज विषय भी उपलब्ध नहीं कर पाता है, पर इसके लिए उसे दोष नहीं दिया जा सकता है।' इन पन्द्रह-बीस मिनटों में उन्होंने आलोच्य विषय के सम्बन्ध में कुछ पुस्तकें देख ली थीं, सो उन्होंने उनको उन दोनों विचारकों को दिखाने का परामर्श दिया।"

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की वकालत के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा सकता है जो कि हम संग्रह नहीं कर सके। उपसंहार में एक बात ही ध्यान में आती है कि जब जगत में धर्म की हानि होती तो कभी तो स्वयं आकर और कभी भक्तज्ञानी महापुरुषों को भेजकर ईश्वर युग के प्रयोजनानुसार धर्म संस्थापन करते हैं। निस्संदेह श्रीयुक्त बाबाजी महाराज इस पृथ्वी के एक ऐसे ही महापुरुष थे। वर्तमान शिक्षित समाज जो अपने विश्वास की आधार शिला वैज्ञानिक तथा युक्तिपूर्ण चाहता है। उन लोगों के लिए उन्होंने अनेक धार्मिक ग्रन्थों की रचना की। जिन विषयों में उनको सन्देह था उसका बाबाजी महाराज ने बड़ी सुन्दरता से युक्तिपूर्वक समाधान किया है। इन सब ग्रन्थों* में

---

* ब्रह्मवादी ऋषि और ब्रह्मविद्या, दार्शनिक ब्रह्मविद्या प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय खण्ड, गुरु-शिष्य संवाद, व्रजविदेही महन्त श्री १०८ स्वामी रामदास काठिया बाबाजी महाराज का जीवन-चरित्र, भेदाभेद सिद्धान्त आदि। इनमें दार्शनिक ब्रह्मविद्या तृतीय खण्ड वेदान्त दर्शन, गुरु-शिष्य सम्वाद तथा जीवन-चरित्र का हिन्दी में अनुवाद हो गया है।

पाठकवृन्दों ने स्वयं लक्ष्य किया होगा कि बाबाजी महाराज की युक्तियाँ कितनी सूक्ष्म, सारपूर्ण तथा हृदयग्राही हैं। इन सब ग्रन्थों को पढ़कर बहुत से ज्ञान-पिपासु पाठकों के सन्देह का बहुत कुछ निवारण हो गया तथा उनके बहुत से प्रश्नों का समाधान हुआ। असंख्य भक्त, जिनमें अनेक उनके शिष्य हैं, कृतज्ञ होकर उनका स्मरण करते हैं। वकालत की सूक्ष्म तर्क तथा युक्ति प्रदर्शन की विशिष्ट प्रणाली इन विषयों में भी सहायक रही।

द्वितीय अध्याय
पारिवारिक और सामाजिक जीवन

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के चरित्र की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि वह जब जो कुछ सत्य व उचित समझते थे उसका मन, वचन, कर्म से अनुसरण करते तथा अपनी शक्ति, सामर्थ्य तथा अर्थ सब उसी ओर लगा देते थे, यह मैं पहले भी उल्लेख कर चुका हूँ। उनके सुदीर्घ २७ वर्ष के गृहस्थ-जीवन के प्रसंग में यह बात स्मरण रखनी होगी।✣ जब वे वकालत की परीक्षा देकर गाँव गये थे, उससे पहले ही उनके धर्म विश्वास में परिवर्तन हो गया था, आर्य ऋषियों के प्रति उनके मन में श्रद्धा और भक्ति का संचार होने लगा था। श्रीहट्ट-आवास में उन्हीं की चेष्टा से हिन्दू-समाज में जीवन-संचार हुआ तथा थोड़े ही दिनों में कीर्तन की वह भाव-गंगा बहाई कि सब उसमें निमग्न हो गये। लोक-रीति के अनुसार प्रायश्चित करके वह फिर से हिन्दू समाज में प्रविष्ट हो गये। इसके बाद उन्होंने शास्त्र-चर्चा आरम्भ की जिससे कि शास्त्रों के प्रति उनकी आस्था दृढ़तर होती गई, जिसे एक दिन काशी में शास्त्र-वचनों के बिना प्रमाण के ग्रहण करने को प्रस्तुत नहीं थे, वही भागवत के कुछ श्लोकों को पढ़कर सर्वत्यागी होकर

✣ Tarakishore is so made that he can never do anything by half. When he felt drawn to the Brahmo Samaj, without a moment's hesitation he threw off his Brahminical thread and started to practice, regardless of all costs or consequences everything that was considered right or good in the ideals and estimates of the Samaj. The same fidelity to what appealed to him as true that had drawn him to the Brahmo Samaj, drove him, a few years later back to the

सद्गुरु की खोज में तीर्थभ्रमण को प्रस्तुत हो गये। उन्होंने श्रुति को किस समय अभ्रान्त सत्य जानकर ग्रहण किया, वह तो आज निर्णय करना असम्भव है, लेकिन इस क्रमोन्नति की पराकाष्ठा तथा इस भाव की सत्य प्रतिष्ठा उसी दिन हुई जिस दिन उन्हें पूर्णज्ञ सद्गुरु लाभ हुआ। उनके कलकत्ता वास का जीवन आर्य-ऋषियों के उपदेशों का अनुसार था। वे बाह्य व्यवहार में आदर्श गृहस्थ तथा अन्तर में आदर्श शिष्य की भाँति-जीवन यापन करते रहे।

इसके अलावा शास्त्रों ने भी उन पर कृपा की, गुरु कृपा से शास्त्रोपदेश का प्रकृत मर्म भी उनके अन्तर में प्रकट हुआ तथा शास्त्रनिहित सत्य भी उनके चित्त पर प्रतिफलित हुआ। कलकत्ता आवासकाल ही में उन्होंने 'षड्दर्शन' (व्याख्या सहित) प्रकाशित किया।

श्रीयुक्त ब्रजलाल शास्त्री ने 'सुदर्शन' पत्रिका में उनके बारे में लिखा–'उनके घर में नारायण की नित्य-सेवा होती थी। बहुत से गरीब विद्यार्थी तथा आत्मीय उनके यहाँ रहते थे, इसके अलावा अतिथि अभ्यागत भी बराबर ही उपस्थित रहते थे। वे सबकी यत्नपूर्वक सेवा करते थे। उनकी पत्नी तपस्विनी, भक्तिमती तथा सच्चे अर्थों में उनकी सहधर्मिणी थी। वह बहुत ही प्रेम तथा दक्षता से सब कुछ करती थीं।

श्री श्रीमाताजी के भाई श्रीयुक्त आशुतोष भट्टाचार्य भी उपनयन के बाद अध्ययन के लिए बाबाजी महाराज के पास आ गये थे। उन्होंने

---

old Hindu orthodoxy. From an aggressive and radical Brahmo, Tarakishore became in later life a sincere Hindu, strictly followng all the disciplines, physical and psycho-physical as well as social and ethical, enjoined upon every devout Brahmin by ancient Hindu law and scripture."

Memories of My Life and Times, by Bepinchandra Pal Page. 320-21.

बताया–"जब मैं उनके पास बाग बाजार वासुपाड़ा लेन में था, तो ठाकुर-सेवा का भार मुझ पर आया। इस समय उनके ठाकुर- मन्दिर में एक वाण-लिंग, श्री श्रीकाठियाबाबाजी महाराज का फोटो, एक शालग्राम और एक गोपाल मूर्ति थी।" यह शालग्रामजी बाबाजी महाराज तथा गोपालजी श्री श्रीमाताजी; दीक्षा के बाद अपने गुरुदेव से माँगकर लाये थे। सब मिलकर निष्ठापूर्वक इन विग्रहों की सेवा-पूजा करते थे, जिसके फलस्वरूप घर का वातावरण तीर्थ-स्थान सरीखा लगता था।

बारिशाल के श्रीयुक्त सुरेशचन्द्र माहिन्ता ने लिखा–"उनके घर जाकर ऐसा लगता था कि मानो किसी आश्रम व मठ में आ गये हों। ठाकुर घर में शालग्रामजी थे तथा श्रीकाठियाबाबाजी महाराज का फोटो था। इन्हीं की नित्य सेवा-पूजा होती थी। X X X उस समय इस ओर मेरा कुछ विशेष आकर्षण नहीं था, केवल प्रसाद का आकर्षण था। ठाकुरजी की अपेक्षा प्रसाद ही मेरा प्रिय था। यद्यपि आरती के समय मैं हमेशा सम्मिलित होता था, सब वाद्य तथा स्तोत्र गान मुझे मधुर लगते थे तथा यह कौतुहल भी रहता था कि सब क्या करते हैं।"

बाबाजी महाराज के गुरुभाई प्रोफेसर शारदाप्रसन्नदास ने लिखा–"श्रीमत् सन्तदास के यहाँ रोज ही ठाकुरजी का भोग लगता है। यह भोग एक विश्वासी, ज्ञानीभक्त का भक्तिभोग था। एक ओर स्थूल

हिन्दी अनुवादः-ताराकिशोर का स्वभाव ऐसा था कि वह कोई भी काम आधा-अधूरा नहीं करते थे। जब वे ब्राह्मसमाज की ओर आकृष्ट हुए तो बिना किसी हिचक के उन्होंने उपवीत का त्याग कर दिया तथा बिना फलाफल सोचे उक्त सभा के आदर्शानुयायी होकर जो कुछ युक्तिपूर्ण था, उसका पालन करने लगे। जो उन्हें सत्य व उचित लगा उसके प्रति निष्ठा रखते हुए जिस प्रकार उन्होंने ब्राह्मसमाज में योगदान दिया उसी प्रकार कुछ वर्षों बाद उसी निष्ठा और आस्था

रूप से तुलसी, गंगाजल और मन्त्र द्वारा भोग्य वस्तु भगवान को अर्पित होती तथा इसके साथ यह दृढ़ विश्वास भी रहता कि भगवान लीलामूर्ति के रूप में अलौकिक रूप से इस भोग्य वस्तु के साथ मिलित होकर सब भोग्य पदार्थ आस्वादन करेंगे। दूसरी ओर यह अन्तः करण का निवेदन–'हे ठाकुर ! तुम्हीं अपनी लीला द्वारा इन विविध भोग्यरस में विद्यमान हो, तुम्हीं यह सब भोग्यरस को भोक्ता रूप में भोग करते हो फिर तुम्हीं भोग्य वस्तु को दान रूप में भगवान को अर्पण कर अपने आपको कृतार्थ समझते हो।✣ इस प्रकार भोग-अर्पण करने में जड़ भोग्यवस्तु की जड़ता तथा मलीनता दूर हो जाती है, अचेतन सचेतन हो जाता है तथा भोग्य-रस की आनन्ददायिनी शक्ति का परिमाण में भी वृद्धि प्राप्त होती है। श्रीमत् सन्तदास के बाग बाजार वाले घर में मैंने व अनेक गुरुभाई-बहनों ने प्रसाद ग्रहण किया और हम सबने उनके घर के भोग-प्रसाद का वैशिष्ट्य अनुभव किया। वह स्वयं जितने ज्ञानी व भक्त थे, उनकी पत्नी भी रुग्णा होकर भी उसी तरह प्रेम और भक्ति से ठाकुर की भोग-व्यवस्था करती थीं, सो ऐसे स्थान का प्रसाद जीवन्त व जागृत ही होगा।"

से हिन्दू-धर्म को फिर से ग्रहण किया। चरमपंथी ब्राह्म से ताराकिशोर एक निष्ठावान ब्राह्मण हो गये तथा हिन्दू-धर्म शास्त्रानुसार धर्म-परायण ब्राह्मण के जो नैतिक कर्त्तव्य हैं, उनका पूर्णरूप से पालन किया--विपिनचन्द्र रचित उनकी पुस्तक से उद्धृत।

✣ श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के द्वारा उपदिष्ट भोग-प्रणाली (सम्प्रदाय प्रचलित प्रणाली) इसी प्रकार की है। इसमें गीता का यह मन्त्र भी हैं :-

"ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव व तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना।।"

-गीता, ४/२४

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने भी इसी समय किसी को बताया—“हमारे गुरु भी जागृत रूप में यहाँ विराजमान हैं।” वैसे अन्य लोगों ने भी उनके दर्शन किये। स्वयं बाबाजी महाराज तथा माताजी ने तो प्रायः उनके दर्शन किये जिसका उल्लेख उनके द्वारा रचित उनके गुरुदेव के जीवन-चरित्र में है। कालिकच्छ निवासी पण्डित द्वारकानाथ तर्कवागीश जब कलकत्ता आते थे तो उनके यहाँ ही ठहरते थे, उन्हें भी बाबाजी महाराज ने यह बताया था। वह ठाकुरद्वारे में जाकर बहुत ही निष्ठा से फोटो को प्रणाम करते थे। एक दिन उन्होंने भाव-विभोर होकर बताया कि उन्हें काठिया बाबा के साक्षात् दर्शन हुए। श्रीयुक्त आशुतोषजी के शब्दो में कि उस दिन की उनकी भाव-विस्वल मूर्ति आज भी स्मरण है।

पहले ठाकुर-सेवा भक्तिपूर्वक होते हुए भी नियमपूर्वक नहीं होती थी, सो उनके गुरुदेव ने कृपापूर्वक स्वयं इसका संशोधन कर दिया। उनके यहाँ तुलाराम नामक एक नौकर था, वह बहुत ही सरल स्वभाव का था। देव-द्विज भक्तिमान था। वह रोज शाम को हर कमरे में दीपक व धूप जलाकर ले जाता था। एक दिन शाम को तुलसीजी को धूपबत्ती देने के समय तुलाराम अत्यन्त भयातुर होकर श्रीमाताजी के पास आया तथा उनसे बोला कि बाबाजी के फोटो सरीखे एक व्यक्ति ने उसके हाथ से धूपदानी लेकर कहा—‘तुम लोग सन्ध्या समय आरती क्यों नहीं करते हो’ और फिर अन्तर्धान हो गये तथा वह धूनी देने का पात्र भी नहीं मिल रहा है। अतः अगले दिन ही से नियमित सन्ध्या-आरती तथा उसके बाद स्तोत्र-पाठ आरम्भ हो गया। वह धूनी-पात्र भी चौबच्चे के पास मिल गया।

प्रत्येक पूजा-पर्व धूम-धाम से मनाया जाता था। घर, बाहर के सभी लोग योग देते थे। घर में रहनेवाले सभी में धर्म-भाव जागृत हो, इसका वह पूर्ण ध्यान रखते थे। श्रीयुक्त आशुतोषजी ने, जो वहाँ रहते थे, इस सम्बन्ध में लिखा–'रात के तीन बजे वह उठते थे, शौचादि क्रिया से निवृत्त हो गंगा-स्नान को जाते थे। हम लोगों को जगा दिया जाता था तथा हम सब भी गंगा-स्नान को जाते तथा फिर अपने-अपने काम में संलग्न हो जाते। जन्माष्टमी व शिवरात्रि को सभी को उपवास करना होता था। अनेकजन प्रसाद पाते थे। प्रत्येक वर्ष सरस्वती पूजा भी होती थी, सरस्वती मूर्ति आती थी, हम सब अञ्जलि देते थे। वे ग्रहण के समय गंगा-स्नान करके जप करते थे, हम लोगों को भी वैसा करने का आदेश देते थे....सब त्यौहसार मनाने में खूब आनन्द होता था। श्रीभगवद्विग्रह की थोड़ी बहुत निष्ठा पूर्वक सेवा-पूजा आज भी अनेक स्थानों पर होती है, लेकिन स्वयम् को प्रभु का दास मात्र जानकर पूजा करने वाले बहुत ही कम लोग होते हैं। प्राचीन ऋषियों के उपदेशानुसार यही गृहस्थ धर्म की मूल नीति है। व्यावहारिक जीवन का प्रत्येक कर्म भगवत्-सेवा का ही रूप मानकर अतिथि, कुटुम्ब परिजन आश्रित-अभ्यागत, यहाँ तक कि पशु-पक्षी तक का सेवक समझना, ऐसे बिरला ही कोई कर सकता है और ऋषिगण शासित गृहस्थ जीवन का यही मूलाधार था। उन्होंने इसी विचारधारा के अनुगामी होकर सब काम किये। श्रीयुक्त शरच्चन्द्रखां ने लिखा, वह ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थ की भाँति भगवान मनु के आदेशानुसार राजा जनक की भाँति जीवन-यापन करते थे.... ! उनके व्यावहारिक जीवन की यही विशेषता थी कि वह प्रत्येक सांसारिक कार्य भगवत् सेवा समझकर करते थे। हम जैसे अधम वकीलों को उपदेश देते थे कि सब प्राणी

भगवान के रूप हैं। मुवक्किल का काम करते हुए यह विचार नहीं लाना चाहिए कि उसने हमें फीस दी है, इस कारण मैं उसका काम कर रहा हूँ, वरन् मुवक्किल के रूप में भगवान की सेवा कर रहा हूँ। सांसारिक कामों में भगवत् सेवा का भाव रखकर काम करना चाहिए, वह यही उपदेश हमेशा देते थे।"

परवर्ती काल में यह उपदेश उन्होंने अपने शिष्यों को भी दिया। एक दिन हमारे एक गुरु-भाई ने उनसे कहा कि सांसारिक कामों में व्यस्त रहने के कारण साधन-भजन करने का उन्हें समय ही नहीं मिल पाता है। इस पर बाबाजी महाराज ने उनसे कहा–बाबा! मुझे तो सब काम करने के बाद भी साधन-भजन करने में कोई असुविधा नहीं होती थी। दोनों समय तो नियमित रूप से भजन करता ही था, इसके अलावा सारे दिन ही मेरा भजन चलता था। मैं सब वस्तुओं को भगवान का रूप मानता था तथा प्रत्येक कार्य को भगवत्-सेवा समझता था।

अन्य सूत्रों द्वारा भी श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के तत्कालीन मनोभावों का सुन्दर निदर्शन मिला है। उनके गुरुभाई श्रीयुक्त गुरुकांत भट्टाचार्य तथा पूर्वलिखित आशु बाबू के विवरणों से यह उद्धृत कर रहा हूँ।

'उनके घर में बाबू से लेकर नौकर तक सबका एक ही आहार था। दो तरह का खाना नहीं बनता था। एक दिन उनकी धर्मपत्नी ने कहा कि रुपये पैसे की कुछ तंगी हो रही है, सबको दूध देना बन्द करना पड़ेगा, तो वह बोले ठीक है, मेरा भी दूध बन्द करना होगा, इससे श्री माता जी को बहुत लज्जा आई और दूध की व्यवस्था एक सरीखी ही रखी गई।

यह केवल नैतिक-चरित्र का उत्कर्ष तथा शिष्ट व्यवहार मात्र नहीं, था वरन् इसके मूल मे जो गम्भीरता थी, उसका परिचय निम्नलिखित घटना से मिल सकता है:-

"घर में प्रायः चौदह पन्द्रह छात्र रहते थे। आत्मीय स्वजन भी अपने-अपने किसी कार्य वश वहीं ठहरते थे। एक बार उनके आत्मीय श्रीयुक्त जगतचन्द्रराय* भी आये हुए थे। उन्होंने देखा कि छात्रों को जब जिसकी इच्छा होती तो वह आकर खा जाते, एक दूसरे को बुलाकर अथवा एक साथ मिलकर नहीं खाते थे। कोई मुवक्किल भी ठहरने की आवश्यकता होने पर बिना बाबा जी महाराज को बताये रुक जाते थे। नौकर-चाकर व छात्रों के आत्मीय भी उनकी अनुमति बिना आ जाते तथा कुछ समय को रह जाते। ये सब उन्हें (जगतचन्द्रराय को) उचित नहीं लगा। खाने के लिए भी इन्हें छात्र लोग नहीं बुलाते थे, बड़ी दीदी ही बुलाकर खिलाती। एक छुट्टी के दिन उन्होंने यह सब कुछ अनुयोग सहित बाबा जी महाराज को बताया। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने उनकी बातें बहुत ध्यान से सुनीं, फिर हँसकर बोले कि आपने जो कहा वह सब तो ठीक है, लेकिन मेरी यह समझ में नहीं आया कि इसमें दोष किसका है, मेरा अथवा उन लोगों का है। मेरी धारणा के अनुसार घर के मालिक तो ठाकुरजी हैं, मैं भी इन लोगों की तरह घर का एक सदस्य हूँ। स्वयम् ठाकुरजी इन्हें खिला पिला रहे हैं, मैं तो कुछ नहीं दे रहा हूँ, इसलिए वह क्योंकर मेरे लिए प्रतीक्षा करेंगे।

'वास्तव में मैं मालिक नहीं हूँ' यह उनका भाव हम लोगों ने सदा लक्ष्य किया।

---

* श्रीबाबाजी की चतुर्थ भग्नि-पति।

'एक दिन नौकरानी ने बताया कि महाराज आज नहीं आयेंगे, यह सुनकर भी सब लोग टाल-मटोल करते रहे। जब बाबूजी रसोई में घुसे तो सब पीछे-पीछे रसोई में दौड़े।

जो भी उनके संसर्ग में आता उनकी अमायिकता देखकर मुग्ध हो जाता ! सभी को यह लगता था कि वह उसको ही सबसे ज्यादा प्यार करते हैं।

हमने उन्हें कभी रुपये की कमी महसूस करते नहीं देखा, जब जो आता वह सब बड़ी दीदी को दे देता। बाजार से सब सामान बड़ी दीदी ही मँगवातीं। सब नौकरों के वेतन तथा छात्रों की फीस भी वही देती थीं। तंगी होने पर यदि उनसे कहा जाता तो वह यह कहते-'सब काम होते रहेंगे, कुछ नहीं अटकेगा।' हम लोगों ने यह देखा भी कि सब कुछ भली-भाँति चलता था। प्रत्येक छात्र को शाम के नाश्ते के लिए पैसे दिये जाते थे, एक दिन बड़ी दीदी के पास पैसे नहीं थे, सो नहीं दिये। जब बाबाजी महाराज हाईकोर्ट से लौटे तो उन्हें भी बताया। वह हँसकर कहने लगे-'अरे इसके लिए क्या सोच करना, आज जल्दी रसोई चढ़ा दो आकर भात खा लेंगे।' ऐसा कहकर स्वयं भी स्नान करके रसोई की तैयारी करवाने लगे। इसी समय कहीं से दस रुपये आ गये और उन्होंने सब को नाश्ते के लिए पैसे दे दिये। हर वर्ष जब वे वृन्दावन जाते थे, तो जाने से पहले कहीं न कहीं से आवश्यक रुपये आ जाते थे, रुपयों के कारण उनका कोई काम नहीं रुका।

आजकल की भाँति बैंक में रुपया जमा करने का उन्हें अभ्यास नहीं था। जो कुछ कमाते सब खर्च हो जाता, कल के विषय में वे नहीं सोचते थे।

एक बार रुपयों की कुछ ज्यादा ही तंगी हुई, कहीं से रुपया मिल भी नहीं रहा था। अतः बाबाजी महाराज सोचने लगे कि क्या कारण है, जो ऐसा हो रहा है। बाद में उन्हें मालूम हुआ कि पत्नी ने १००) रुपये बचा कर रखे हैं, तब उन्होंने कहा–'इसीलिए तो भगवान रुपये दे नहीं रहे हैं, फकीरी ही में भगवान मिलते हैं, फिकर करने से नहीं।' इस कथन का उन्होंने अक्षरशः पालन किया।

भगवान के ऊपर बाबाजी महाराज की पूर्ण निर्भरता थी। श्रीयुक्त ब्रजलाल शास्त्री ने अपने लेख में उनके फकीरी जीवन के विषय में विशेष कर बताया। जितना उपार्जन उतना व्यय और उसी के अनुरूप दान सब कुछ राजसी था, किन्तु वह स्वयं बहुत ही सरल तथा आडम्बरहीन थे। उनका सांसारिक जीवन फकीर सरीखा था।

सन्ध्या के उपरान्त वह अपना समय साधन पूजा ही में लगाते थे। अनेक रात तक भजन किया करते थे, लेकिन आखिरी दिनों में उन्हें भजन करने का समय नहीं मिलता था। शास्त्रवाणी के प्रचार के लिए उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना इसी समय की, वृन्दावन आश्रम सम्बन्धी भी काम रहता था। फिर भी गुरु-उपदेशानुसार शेष रात्रि और प्रातःकाल भजन करने का उनका नियम था। रात का प्रसाद पाकर ग्यारह अथवा साढ़े ग्यारह बजे सोने को जाते थे। सुबह तीन बजे उठकर शौचादि से निवृत्त हो गाड़ी होने पर भी पैदल गंगा-स्नान को जाते थे। वहाँ से लौटकर दो-एक घण्टे जप और भजन करते थे। उनके पास एक पत्थर की कूँड़ी तथा नीम का एक मोटा डंडा था, रोज पूजा के बाद कुछ भाँग की पत्ती, काली मिर्च, गुलाब की पंखुड़ी तथा ककड़ी के बीज उसमें पीसते थे तथा आवश्यकतानुसार पानी मिलाकर शरबत-सा बनाकर ठाकुरजी का भोग लगाते तथा फिर स्वयं पीते थे। पीसते समय

गीता की एक छोटी पुस्तक उनके सामने खुली रहती थी। वह मन ही मन पाठ करते रहते थे। इसके बाद वह बैठक में जाते थे।

श्रीशरत्चन्द्र खां ने लिखा—'मेरा परिचय उनकी दीक्षा लेने के बाद हुआ। शेष रात्रि से उठकर सूर्योदय तक भजन करते थे। अन्य सांसारिक मनुष्यों की भाँति सुबह से शाम तक संसार के समस्त काज-कर्म करते थे। जो लोग उन्हें भली-भाँति नहीं जानते थे, उन्हें यह नहीं मालूम था कि वह प्रतिदिन लम्बे समय तक साधन-भजन करते हैं, क्योंकि सुबह तो वे बैठक में बैठे हुए वकालत के काम में संलग्न ही दीखते थे। उनकी इस चरित्र-विशेषता से हम यह शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि इच्छा होने पर सांसारिक कामों के साथ में साधन-भजन भी किया जा सकता है।

उत्साह तथा क्षिप्रकारिता उनके स्वभावगत गुण थे। अन्तिम दिनों में जब उनका शरीर कमजोर हो गया, तब भी हम लोगों ने इसे लक्ष्य किया। इन्हीं गुणों के कारण वह सब काम शीघ्रता से कर लेते थे। सुबह का अपना व्यावसायिक काम समाप्त करके फिर से घर में स्नान करते थे, नहाने के बाद सिर में शीतल सुगन्धित तेल लगाते थे। बाद में प्रसाद पाकर कोर्ट जाते थे। पहले तो किराये की गाड़ी में जाते थे, बाद में १८६७ ई. में उन्होंने एक अच्छी 'ब्रूहाम' गाड़ी खरीद ली थी। कोर्ट में जाकर किस प्रकार समय-यापन करते थे, वह पूर्व अध्याय में विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है।

यद्यपि हाईकोर्ट तो वकीली पोशाक ही में जाते थे, लेकिन उन्हें पोशाक-परिधान का कुछ शौक नहीं था। यदि कहीं बाहर किसी मुकदमे को जाते थे तो साधारण शर्ट पैन्ट पहनकर चले जाते थे, कोई उन्हें देखकर सोच भी नहीं सकता था कि वे हाईकोर्ट के विशिष्ट

वकील हैं। लेकिन बहस के समय उनकी प्रतिभा का यथार्थ परिचय होता था। कोर्ट अथवा हाईकोर्ट जाने के अलावा वह मोजे व कमीज का प्रयोग नहीं करते थे। बाहर जाने के समय वह एक पतली चादर, चट्टी (कैनवैस अथवा काठ) और अपना बेंत लेकर जाते थे। कभी-कभी निमन्त्रण रक्षा के लिए यदि किसी वकील अथवा जज के यहाँ जाना पड़ता था तो भी इसी वेश में जाते थे, लेकिन बाहर कभी खाते नहीं थे। हुक्का भी वह अपना ही इस्तेमाल करते थे, कहीं जाने पर नौकर उनका हुक्का साथ में ले जाता था। किसी केस के सम्बन्ध में यदि बाहर जाना होता था तो भी जहाँ तक सम्भव होता नियम-रक्षा करते थे।

श्रीयुक्त आशुबाबू ने बताया कि कचहरी से लौटकर पाँच बजे से साढ़े पाँच बजे तक मुझे पढ़ाते थे, विश्राम तो करते ही न थे। एक काम के बाद दूसरे काम करने में जो कुछ वैचित्र्य होता, वही उनके लिये विश्राम था। इसके अलावा वह सेवा-भाव से सब काम करते थे। अतः उन्हें शान्ति व आनन्द मिलता था, इसलिये विश्राम का अभाव भी अनुभव नहीं होता था। रात की थोड़ी नींद ही उनके लिये यथेष्ट थी।

गृहस्थ के लिये साधु-सेवा भी अनिवार्य अंग है। वह यह भी बहुत यत्न से करते थे। पूर्व वर्णित 'सुदर्शन' पत्रिका के लेख में श्रीयुक्त ब्रजलाल शास्त्री ने यह भी लिखा-' श्रीयुक्त ताराकिशोर चौधरी सुयोग मिलते ही साधु-दर्शन को जाते थे, जब कभी कलकत्ता में साधु-समागम होता तो वहाँ वह अवश्य जाते थे। एक बार उनके मित्र के यहाँ करेई महात्मा 'खाकी बाबा' आये। वह वहाँ जाकर रहे और उनकी सेवा की।

उनके अपने यहाँ भी जब साधु-समागम होता था, तब वह बहुत ही प्रसन्न रहते तथा मन, वचन, कर्म से उनकी सेवा करते थे।

एक बार एक महात्मा 'पहाड़ी बाबा' उनके यहाँ एक महीने से भी अधिक ठहरे थे।

देव-सेवा साधु-सेवा की तरह वह अतिथि-सेवा तथा विप्र-सेवा भी बहुत आग्रहपूर्वक करते थे। अतिथि अभ्यागतों की सेवा के विषय में पहले लिखा जा चुका है। यहाँ उनकी ब्राह्मण-सेवा के विषय में लिखूँगा। उनके घर अनेक ब्राह्मण-पण्डित आते थे, तत्कालीन प्रसिद्ध पण्डित श्रुति तर्क चूड़ामणि और श्रीयुक्त पंचानन तर्करत्न उनके यहाँ अनेक बार आए। उन लोगों के आने पर वह बहुत आनन्दित होते थे, उनके साथ शास्त्रालोचना करते तथा समुचित आदर-सत्कार करते थे। १६३५ ई. में पौष मास की 'प्रवर्तक' पत्रिका में श्रीयुक्त पंचानन तर्करत्न ने लिखा-"कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील श्रीताराकिशोर चौधरी से मेरा परिचय था। उन्होंने अपनी यौवनावस्था के कुछ कृत्यों के लिये अनुताप करते हुए बताया कि गुरु-कृपा से वह किस प्रकार कृतार्थ हुए, उनका मोह दूर हो गया तथा शास्त्रों के प्रति जो अवज्ञा-भाव था, वह भी दूर हो गया। यह सब कुछ बताते हुए वह विह्वल हो जाते थे। मेरा जब उनसे परिचय हुआ, तब वह सद्गुरु प्राप्त कर चुके थे, उनकी विचारधारा बदल चुकी थी। तब उन्होंने 'ब्रह्मविद्या ऋषि और ब्रह्मविद्या' की रचना की थी, किन्तु सर्वत्याग की जो उनकी आन्तरिक कामना थी, उसका आभास मुझे मिल गया था। शास्त्रों के प्रति उनके हृदय में गम्भीर श्रद्धा थी। हम लोगों के ब्राह्मण-पण्डित-सम्प्रदाय में शास्त्र विश्वासी और शास्त्र श्रद्धासम्पन्न व्यक्ति तो अनेक होते हैं, किन्तु श्रद्धा-विश्वास की गम्भीरता और दृढ़ता की परीक्षा तो होती नहीं है। X X जिस प्रकार कि बहरामपुर की तलवाहिनी गंगाधारा की गम्भीरता अथवा वेग में ह्रास का बताना कठिन नहीं होने पर भी बताया नहीं जा

सकता है। किन्तु चौधरीजी की श्रद्धा, गम्भीरता तथा दृढ़ता कसौटी पर खरी हुई यह मैं मुक्त कण्ठ कह सकता हूँ……मेरा वह जितना आदर करते थे, मैं उसे भूल नहीं सकता। उनकी शास्त्र-चर्चा, फिर तद्विषयक प्रश्न, मेरा आदर सत्कार मुझे सदा स्मरण रहेगा।"

घर में गायें थीं, तीन गायों का नाम 'गंगा', 'जमुना', 'सरस्वती' था। श्रीयुक्त सुरेशचन्द्र माहिन्ता के अनुसार 'गंगा' नाम्नी गाय की अपनी विशेषता थी। वह अपने बछड़े को भी दूध नहीं पीने देती थी, जब तक कि दूध दुहने वाला पूजा के लिये दूध न ले ले। दूध दुहने की भी विशेषता थी, साधारणतया गाय को अच्छी तरह दुहा जाता था। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज इस बात पर विशेष ध्यान रखते थे। गायें व बछड़े प्रायः खुले रहते थे। कभी-कभी वह ऊपर के कमरे में आने की चेष्टा करती थी जहाँ बाबाजी महाराज बैठकर मुवक्किलों का काम करते थे। गौ-सेवा का कुछ काम वह स्वयं भी करते थे तथा उनके खाने का विशेष ध्यान रखते थे।

अब मैं जिन दिनों का प्रसंग लिख रहा हूँ उस समय तक श्रीबाबाजी महाराज का सम्पूर्ण रूप से आभ्यन्तरिक परिवर्तन हो चुका था। इस समय वह शास्त्र विश्वासी गृहस्थ थे, शास्त्रोपदेशानुसार ही वह पिता की भक्ति व सेवा करते थे।

जब वह कलकत्ता में पत्नी तथा भाइयों के साथ हाईकोर्ट मे वकालत करने को आए तब उनके पिता उनके साथ नहीं आए थे। वह पाँच महीने बाद आए तथा आकर घर भी बदलवाया, फिर इसी ४० नम्बर सीताराम घोष स्ट्रीट के मकान में बाबाजी महाराज काफी दिन रहे थे। इसी समय उन्होंने घर में दो संन्यासियों के दिए हुए दो वाणलिंगों की पूजा होते देख आपत्ति की तथा कहा कि इस तरह करना

गृहस्थ के लिये अमंगलजनक है। उनका विरोध देखकर बाबाजी महाराज ने एक लिंग पास के शिवालय में दे दिया तथा उसकी पूजा के निमित्त कुछ मासिक देने लगे।

इसके बाद श्रीहरकिशोर चौधरी कुछ महीने रहकर फिर वापस अपने गाँव चले गये। जब तक जीवित रहे, वे कुछ समय बेटे के पास तथा कुछ समय अपने घर गाँव में रहते थे, वह रसोइये के हाथ का बना भोजन नहीं करते थे, श्री श्रीमाताजी ही उनके लिये खाना बनाती थीं। फिर उनका एक कठोर नियम यह भी था कि बनाने वाला बिना कुछ खाये पिये उनका भोजन बनाता था। वह अभ्यासानुसार ११ बजे गंगा-स्नान को जाते तथा फिर पूजा-तर्पण आदि करके लौटकर गरम-गरम भात (जो पूरी तरह न गला हो) खाते। यदि वह उनका मन पसन्द नहीं होता, तो छोड़ देते तथा भेजन नहीं करतेथे। श्रीश्रीमाताजी बिल्कुल समय पर खाना बनाकर गरम-गरम खिलाती थीं। उसके बाद ढाई बजे वह स्वयं बनाती थीं। वह श्रीयुक्त् बाबाजी महाराज की थाली का भी बचा हुआ प्रसाद खाती थीं और बाबाजी महाराज तो ग्यारह बजे से पहले ही कोर्ट जाते थे। अतः वह चावल बिल्कुल सूख जाते थे। इस तरह उन्हें बहुत कष्ट होता था, फिर भी वह सब कष्ट सहकर निष्ठा से ससुर की सेवा तथा अपना नियम पालन करती थीं। किन्तु शरीर यह अनियम नहीं सह सका। खाली पेट रहने तथा सूखा भात खाने से उन्हें पित्तशूल की व्याधि हो गई, जो सारे जीवन ही रही।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज सब कुछ देखते-समझते थे, किन्तु इस विषय में उन्होंने अपने पिताजी से कुछ नहीं कहा। पत्नी के कष्ट

देखते हुए भी वह यह सोच व देखकर सन्तुष्ट होते कि उनकी पत्नी इतना कष्ट सहकर भी अपने कर्त्तव्य का सुचारु रूप से पालन कर रही है तथा उन्हें यह विश्वास था कि इससे मंगल ही होगा।

पिता के अनुवर्ती होने पर भी एक विषय में पिता का शासन नहीं मानते थे जो निम्नलिखित घटना से जाना जा सकता है–

'श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी बीच-बीच में कलकत्ता आते थे। कोर्ट से लौटकर वह उनके यहाँ अकसर जाते थे। कभी-कभी लौटने में रात हो जाती थी। श्री श्रीमाताजी उनके आने तक जागती रहती थीं। श्रीजगतबाबू के शिष्यों के साथ भी योगदान करने पर भी प्रायः ऐसा होता था। उनके पिता इस पर उनसे नाराज रहते थे। किन्तु श्रीयुक्त बाबाजी महाराज अपने धर्म-बन्धुओं से इस प्रकार मिलते रहते थे। ये लोग कभी-कभी उनके यहाँ भी आते तथा आपस में धर्मालाप करते थे। कभी ऐसा भी होता था कि वे जब आते तो बाबाजी महाराज के अनुपस्थित होने पर उनके लिये वहीं पर ठहर उनकी प्रतिक्षा करते थे। इस अवसर का उनके पिताजी खूब लाभ उठाते थे, वे उन लोगों से दुर्व्यवहार करते तथा कुछ अपमानजनक शब्द भी कहते थे। इसको लेकर पिता-पुत्र में झगड़ा होता था तथा आपसी बात-चीत भी बन्द हो जाती थी। कुछ दिनों ऐसा चलता था। फिर ठीक हो जाता था। यह श्रीहेमकिशोर ने बताया।'

वामै के पैतृघर में खूब वार-त्यौहार होते थे, सब कुछ बहुत धूम-धाम से मनाया जाता था। बााबाजी महाराज प्रत्येक वर्ष शारदीय पूजा में अपने घर जाते थे। १८६१ ई. में जब वे पूजा की छुट्टियों के बाद कलकत्ता लौट रहे थे तो उनके पिताजी उन सबको छोड़ने के लिये नौका द्वारा स्टीमर-स्टेशन तक आये। फिर वहाँ उतर कर नौका आने

पर वह वापस गाँव गये, लेकिन इस चढ़ने-उतरने में उन्हें सर्दी लग गई तथा खाँसी-जुखाम हो गया। उन्होंने आरम्भ में कुछ ध्यान नहीं दिया और तकलीफ बढ़ती गई। फिर चिकित्सा आरम्भ की, लेकिन बीमारी बढ़ती गई। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज यह जानकर उन्हें कलकत्ता लाने के लिये गाँव गये। उनके पिताजी काफी दुर्बल व रुग्ण थे। उन्होंने एक बड़ी नाव तय की तथा सब कुटुम्बियों को लेकर कलकत्ता के लिये रवाना हुए। जब बूढ़ी गंगा पहुँचे तो काफी देर हो गई थी बादल भी हो गये थे। बारिश के दिन थे, इस कारण माझी लोग ऐसे मौसम में नदी पार करने को प्रस्तुत नहीं थे। लेकिन पिता की ऐसी अवस्था होने के कारण उन्होने माझियों से चलने को कहा तथा स्वयं पतवार ले ली। लेकिन उस समय एक दुर्घटना हो गई। जिस मस्तूल से पाल टँगा हुआ था, वह मस्तूल टूट गया और पाल पानी में गिर गया। इससे नाव थोड़ी नीचे की ओर डूबने लगी तथा उसमें पानी भी आ गया। सब लोग घबड़ा गए, उनके पिताजी जोर से चिल्लाने लगे-"तू क्या हम सबको डुबो देगा।" लेकिन फिर कुछ बलिष्ट नाविकों ने उतर कर पाल उठा लिया तथा पानी उलीच कर मस्तूल बाँध दिया, नाव फिर जल्दी-जल्दी चलने लगी। जब नाव रात को पटला नदी के ऊपर आयी तो श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने वहीं नौका बँधवाकर ठहरना उचित समझा। पास ही वहाँ 'सन' का गोदाम था जहाँ से माल लेने के लिये स्टीमर आते रहते थे। अगले दिन स्टीमर आने पर सब उसमें सवार हुए। पिता के लिये एक कैबिन की व्यवस्था की जिससे कि वे आराम से लेट सकें। नाव के माझियों को यथेष्ट रुपया देकर विदा किया। गोयालन्द तक सब लोग स्टीमर से आये। यहाँ पर भी बाबाजी महाराज

ने अनेक चेष्टा करके गाड़ी में रिजर्वेशन कराया, किन्तु जब तक वे सब व्यवस्था कर सके गाड़ी चलने का समय हो जाने से गाड़ी छूट गई, सो फिर अगली गाड़ी से सबको लेकर कलकत्ता पहुँचे।

अगले दिन कलकत्ता के प्रसिद्ध चिकित्सकों को बुलाकर उन्हें दिखाया गया। वैसे काशी ले जाने को भी सोचा जा रहा था, किन्तु फिर डाक्टरों के कहने पर कलकत्ता में रखकर ही इलाज आरम्भ हुआ। डाक्टरों के इलाज से जब कुछ लाभ नही हुआ तो आयुर्वेदिक चिकित्सा की। फिर 'स्यालजर' नामक एक जर्मन होमिओपैथ को दिखाया। उन्होंने कहा, 'मैं यंत्रणा कम करने के लिये दवा अवश्य दिये देता हूँ लेकिन अब इनकी आयु केवल ढाई मास और है।' श्रीयक्त बाबाजी महाराज ने हम लोगों को बताया था कि जर्मन डाक्टर का कहना बिल्कुल सच हुआ। बाबाजी महाराज ने पिता की सेवा व चिकित्सा में कोई कमी नही की। चौबीस घण्टे उनके पास कोई न कोई रहता था। बारी-बारी से सब रात को जागते थे। विशेषतः बाबाजी महाराज की विमाता इच्छामयी देवी तथा उनके मौसेरे भाई कुमारचन्द्र शास्त्री ही रात को जागते थे। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का तो कोर्ट का काम ही था, इस कारण वह उनकी सेवा में इतना योग नहीं दे पाते थे।

चिकित्सा व सेवा में कोई कमी नही थी, फिर भी रोग बढ़ता गया। उन दिनों काशी-मित्र-घाट पर एक साधु रहते थे जो 'ब्रह्मचारी जी' कहलाते थे। एक दिन वे रात को अनाहूत आ पहुँचे और रोगी को देखकर कहने लगे, 'अवस्था अच्छी नहीं है, एकादशी भी निकाल पावेंगे इसमें भी सन्देह है। शीघ्र ही गंगा-यात्रा करनी चाहिये।' दूसरे दिन आहार के उपरान्त एक पालकी में उन्हें काशी मित्र-घाट स्थित गुहबाबू के (Moribund House) में ले जाया गया। घर के सब लोग

वहीं रहे। केवल श्रीमाता ठकुरानी व श्रीकुमारचन्द्र शास्त्री घर पर रहे। रात को उनका रोग अधिक बढ़ गया। 'ब्रह्मचारीजी' को बुलाया गया तथा उनके परामर्श से 'अन्तरांजली' की व्यवस्था की गई। इस प्रकार १८६२ ई. में भादों के महीने में सब आत्मीय स्वजनों के समक्ष श्रीयुक्त हरकिशोर चौधुरी ने सज्ञान परलोक गमन किया।

पिता की अन्त्येष्टि क्रिया भलीभाँति सम्पन्न कर सब कुटुम्बियों को लेकर अपने गाँव गये। वहाँ उन्होंने श्राद्धादि कर्मो में तीन हजार रु० खर्च किये। एक हजार तो उनके पिता के ही थे जो वह इस काम के लिये रख गये थे। बाकी उन्होंने सब खर्च अपनी तरफ से किया, माँ व भाईयों को प्रत्येक के लिये चौधुरी ५००) छोड़ गये थे। वह उन्होंने नहीं लिया। सब लेनदारों को बुलाकर उनका उधार चुकाया। इस सम्बन्ध की एक घटना वह प्रायः उपदेश स्वरूप सुनाते थे। वह इस प्रकार है 'उनके पिता देहान्त से कुछ घण्टे पहले कहने लगे 'अरे मछलन्द को बिदा करो, उसको जो देना है सो दे दो।' बीमार का प्रलाप समझकर किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया तथा फिर सब भूल-भाल गये। लेकिन जब श्राद्ध से पहले सब लेनदारों का हिसाब किया जा रहा था तो मछलन्द नामक एक मुसलमान जुलाहे ने भी अपना हिसाब दिखाया। चौधरीजी की बही के अनुसार उसका हिसाब बेबाक था। इस कारण बाबाजी महाराज उसे प्रार्थित रुपये देने को तैयार नहीं थे। इस पर उसने कहा,' यदि इन रुपयों के विषय में आपको याद नही है तो जाने दीजिये, आप लोगों का तो हमेशा नमक खाया है। बाबाजी महाराज के एक काका उस समय उपस्थित थे। उन्होंने भी कहा, उसको कुछ देना है, यह मुझे भी मालूम है।' तभी बाबाजी महाराज को पिता का प्रलाप स्मरण हो आया और उन्होंने उसके रुपये दे दिये। इस

घटना को बताते हुए बाबाजी महाराज उपदेश देते थे कि 'सब उधार मिटाते रहना चाहिये, नहीं तो मृत्यु के समय क्लेश होता है।'

एक वर्ष होने पर पिता की बरसी की। १८६३ ई. में पिता का गया में पिण्डदान के उपलक्ष्य में परिवार सहित तीर्थ-भ्रमग को गये। उनके साथ सब मिलाकर १६ जन थे। कहीं भी किसी प्रकार की असुविधा व परेशानी नही हुई। एक मास से कुछ अधिक सम्रय तक वैद्यनाथधाम, गया, काशीधाम, विन्ध्याचल, प्रयागराज, मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार, अयोध्या, आदि सब स्थान भ्रमण किये।

शास्त्रों के प्रति उनकी श्रद्धा काफी समय से थी। संस्कृत-व्याकरण का ज्ञान होने से शास्त्राध्ययन में सुविधा रहेगी, सोचकर उन्होने एक पण्डित को ठीक किया। मुक्तबोध व्याकरण के अध्ययन में प्रवृत्त हो गये। श्रीयुक्त आशुतोष भट्टाचार्य ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "१६६५ ई. में उन्हें 'मुक्तबोध' व्याकरण पढ़ाने के लिये बलदेव सार्वभौम नाम्क एक पण्डित नियुक्त हुए। वह बहुत ही सरल प्रकृति के थे। शनिवार व इतवार को दिन में पढ़ाते थे तथा बाकी दिन-रात को आठ बजे आते थे। सात-आठ दिन बाद एक सूत्र पढ़ाते हुए पण्डित जी ने कहा, 'बाबू अभी इसका अर्थ स्थूल रूप से समझ लीजिये, थोड़ा आगे और पढ़ने पर इसका अर्थ भलीभाँति समझ में आ जायेगा' यह कहकर पण्डितजी तो चले गये, लेकिन वह सोचने लगे कि इन्होंने ऐसा क्यों कहा और फिर वह स्वयं उसे अच्छी तरह पढ़ने लगे, उनको समझने में कुछ कठिनता नही हुई और इस प्रकार पूरा प्रकरण पढ़ गये। दूसरे दिन जब पण्डितजी पढ़ाने आये तो बाबाजी महाराज ने पहले कल वाला तथा उसके अगले कई सूत्रों की विशद व्याख्या करके उनसे पूछा कि यह ठीक है? व्याख्या सुनकर पण्डितजी ने पूछा कि यह

उन्हें किसने बतायी। उन्होंने उत्तर दिया, "मैंने स्वयं ही पढ़ा है, मुझे कौन समझाएगा !" तब पण्डितजी ने कहा, "बहुत आश्चर्य की बात है, आपकी व्याख्या तो अति सुन्दर है" उस दिन फिर और पढ़ाई नही हुई। अगला दिन रविवार था। दोपहर को प्रसाद ग्रहण करने के बाद बाबाजी महाराज बैठक में विश्राम कर रहे थे, थोड़ी झपकी लग गई थी। मैं उनके पैर दाब रहा था, इसी समय पण्डितजी आए और उन्होंने उनके पैरों की ओर सिर झुकाकर प्रणाम किया, यह देखकर मैं भयभीत हो गया तथा उसी समय हठात् वे भी जाग गये। पण्डितजी को उसी अवस्था में देखकर कहने लगे, 'अरे ! पण्डितजी आप क्या कर रहे हैं?' पण्डितजी ने किसी तरह उत्तर दिया, "बाबू! मैं आपको पढ़ा नही सकता, आप तो स्वयं महापण्डित हैं।" बाबाजी महाराज ने कहा, 'नहीं, नहीं आप पढ़ा सकते हैं' लेकिन पण्डितजी किसी तरह नहीं माने और कहा कि मैं दूसरे बड़े पण्डित को लाऊँगा। अंत में यही हुआ और वे उनके लाये हुए दूसरे पण्डित से पढ़ने लगे। छै महीने में 'मुक्तबोध' व्याकरण समाप्त हो गई। फिर उन्होंने तर्क-पंचानन उपाधिधारी एक अध्यापक को नियुक्त किया, उनसे आठ-दस दिन भाषा-परिच्छेद पढ़ा फिर उनसे कहा कि न्यायशास्त्र तोते की भाँति मुखस्थ करने का विषय नही है। उसका तो क्रमशः स्वतः अन्तर में प्रकाश होना चाहिये। ऐसा कहकर उन्होंने फिर उस पण्डित से नही पढ़ा और भविष्य में भी किसी पण्डित से नहीं पढ़ा। पूर्णचन्द्र वेदान्त चंचु रचित पातंजलि-दर्शन और सांख्य-दर्शन भी उन्होंने स्वयं ही अध्ययन किया। उनके पास अनेक ग्रन्थ थे। उपनिषद् पुराण आदि वे सभी ग्रन्थ पढ़ते थे।

"इसी समय मैंने व उनके गाँव के कुलगुरु गोपाल भट्टाचार्य ने उनसे मुक्तबोध व्याकरण पढ़ना आरम्भ किया। वह सूत्रों का बँगला

में अनुवाद करके लिखवाते, हम लोगों को 'मुक्तबोध' व्याकरण पढ़ने में कई वर्ष लगे।"

१८९७ ई. में फिर मकान बदला, यह मकान काफी बड़ा था, दो-मंजिला था। काफी कमरे थे जिनमें आत्मीय, स्वजन, आश्रित, अभ्यागत, विद्यार्थीगण, नौकर-चाकर सब रहते थे। गाय के लिये भी रहने की उचित जगह थी। इस मकान में उनके गुरुदेव श्रीरामदासजी काठियाबाबा भी आकर कुछ दिन रहे थे।

श्रीयुक्ता प्रमदादेवी जो उनकी आत्मीया थीं तथा बागबाजार वाले घर में उनके आश्रय में रही थीं, उन्होने भी बाबाजी महाराज के सांसारिक जीवन के विषय में बताया कि-'कोई भी छात्र यदि उनके यहाँ रहने को आता था तो वह उसे निराश नही करते थे।' उससे कहते कि-'देख लो यदि नीचे सोने की जगह है तो मुझे कोई आपत्ति नही है।' एक बार सुरेन्द्र नामक एक लड़के ने बताया कि अन्य लड़के चारपाई पर सोते हैं, मैं नीचे जमीन पर सो जाऊँगा, मुझे कहीं भी रहने का स्थान नही मिल रहा है, अतः मुझे आपको रखना ही पड़ेगा।' पहले तो श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने आपत्ति की किन्तु फिर बाध्य होकर मान गये। कुछ ही दिन बाद आशु ने आकर कहा कि-'दीदी ! सुरेन्द्र अखबार बिछाकर सोता है, उसके पास बिस्तर नहीं हैं।' तब माता ठाकुरानी ने उसे बिस्तर दिया। इस प्रकार की घटनाएँ अकसर होती थीं। कुछ छात्र वहाँ केवल भोजन ही करने आते थे। श्रीयुक्त योगेन्द्रचन्द्र भट्टाचार्य (जो अब वैद्यगीरी करते हैं) छात्रावस्था में रहते कहीं और थे, लेकिन भोजन उनके यहाँ करते थे। अतिथि, आत्मीय, वहाँ आकर जब तक इच्छा होती ठहरते थे। एक ब्राह्मण अकसर आते थे, आकर फिर काफी दिन तक रहते थे। एक दिन रसोईया ने

खीझकर उनसे कहा-'यहाँ इतने दिनों से क्यों पड़े हो?' जब बाबाजी महाराज को यह मालूम हुआ तो उन्होंने रसोईया को बुलाकर कहा-'तुम उससे कुछ क्यों कहते हो? ठाकुरजी का घर है, ठाकुरजी ही उसे लाये हैं, अतः वह अपने भाग्य का खा रहा है।' बेचारे रसोईया ने सोचा भी न था कि उसकी बात उनके कानों में पहुँच जायेगी।

विमाता को श्रीयुक्त बाबाजी महाराज खूब आदर करते थे। वह अकसर कलकत्ता में आकर उनके पास रहा करती थीं। रोज आरती के पश्चात् श्री श्रीठाकुरजी को प्रणाम करने के बाद गुरुजनों को प्रणाम किया जाता था। हम सब उनको प्रणाम करते थे और वहभी अपनी विमाता को प्रणाम करते थे। उस समय उनके मुख पर जो गम्भीरता होती थी, उसका वर्णन करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। हम लोग प्रणाम करना शायद कभी भूल भी जाते थे, किन्तु वह नियम से प्रणाम करते थे।

एक दिन जब वह कोर्ट जा रहे थे तो उन्हें मालूम हुआ कि माँ का खाना अभी नहीं बना है, तब उन्होंने पहले उनके खाने की व्यवस्था की फिर देरी से कोर्ट गये। शाम को कोर्ट से लौटकर माँ की पसन्द के जलपान की व्यवस्था भी वह स्वयं करते थे।

माँ के साथ कभी-कभी झगड़ा भी होता था। एक दिन पढ़ाई के सम्बन्ध में उन्होंने अपने छोटे भाई तरिणिकिशोर को पीटा, उनकी विमाता इस पर नाराज हो गईं और कहने लगीं-'तुम मेरे लड़के को नहीं मारपीट सकते हो।' बाबाजी महाराज ने सीधे मुँह से जबाव दिया-"वह मेरे पिता ही का तो लड़का है। अतः मैं मारूँगा, तुम्हें इससे क्या?" जहाँ अन्तर में इतना स्नेह और दर्द हो वहाँ झगड़ा कैसे टिक सकता है। माँ को दबना पड़ता था। लेकिन कभी-कभी वह नाराज ही

रहतीं तथा खाना भी नहीं खातीं। तब बाबाजी महाराज झुक जाते तथा उनके पैर पकड़ लेते, तब वह खाना खातीं।

पूर्णशांश नाम्नी एक पुरानी नौकरानी थी। वह जितनी काम में होशियार थी उतनी ही मिजाज की भी तेज थी। बीच-बीच में नौकरी छोड़कर चली जाती तथा फिर दो-चार दिन बाद वापस आ जाती। इस झगड़ालू आदत के कारण श्रीमाता ठाकुरानी उसे रखने को प्रस्तुत नहीं होती थीं, तब बाबाजी महाराज उनसे कहते-'अरे उसे रख लो, शरणागत का परित्याग नहीं करते हैं, दया करते हैं।' जो काम करने में दक्ष होता था, उसके दोष भी वह सह्य कर लेते थे।

घर में अनेक गायें थीं, दूध, दही व मक्खन होता था। मक्खन के घी का श्री श्रीठाकुरजी को भोग लगता था। दोपहर के खाने में सब लोगों को चावलों के साथ मट्ठा मिलता था। रात को सबको दूध मिलता था, केवल बाबाजी महाराज ही दोनों समय दूध पीते थे। वह भात बहुत कम खाते थे। घर में जो कुछ खाने की वस्तु होती वह सबको बाँटकर स्वयं खातें थे। एक दिन श्रीमाता ठाकुरानी की छोटी बहिन श्रीमती मुक्ति (जो कुछ दिनों को उनके यहाँ आयी थीं) ने दही मथकर जो मक्खन निकाला उसमें से थोड़ा सा मक्खन दोपहर के भोजन के समय उनकी थाली में रख दिया। मक्खन देखते ही उन्होंने पूछा कि आज क्या सबको मक्खन दिया गया है। जब उत्तर नकारात्मक मिला तो उन्होंने वह मक्खन नहीं खाया, रात को सबको दिलवा करके ही स्वयं खाया।

एक बार एक साथ ही बहुत सी गायें गाभिन हो गई, अतः दूध कम हो गया। माता ठाकुरानी ने उनसे कहा-'आज-कल दूध कम हो गया है इस कारण यदि सबको दूध देना बंद कर दें तो ठीक रहेगा।' इस पर बाबाजी महाराज ने कहा-"जितना दूध होता है उसमें ही से

सबको थोड़ा-थोड़ा दूध दे दो।" माँ ने कहा-'इस तरह तुम्हारा दूध कम हो जायेगा तुम तो और कुछ विशेष खाते नहीं हो, दूध ही लेते हो, वह भी कम कर दोगे तो इतना दिमागी काम कैसे करोगे।' तब बाबाजी महाराज ने कहा-"अच्छा एक काम करो, जितना दूध होता है उसमें थोड़ा पानी मिला दो फिर उसे अच्छी तरह उबाल लो। इस तरह से दूध थोड़ा बढ़ जायेगा और सबको ही थोड़ा-थोड़ा दे सकोगी।" सबका दूध बन्द करके स्वयं दूध पीना उनके लिये बहुत कठिन था।

यदि कोई गलती करता तो उसे वे डाँटते थे तथा कभी-कभी पिटाई भी कर देते थे, लेकिन थोड़ी देर बाद ही उसे बुलाकर प्यार भी करते थे। इस कारण सब लोग उनसे डरते भी थे तथा भक्ति भी करते थे। मार खाकर जब उनका प्यार मिलता तो वे मार भूल जाते थे। उन्हें क्रोधी समझकर सब उनसे डरते थे, किन्तु उनका स्नेह भी अथाह था। माता ठाकुरानी कहा करती थीं-'तुम्हें मारने में भी आलस नहीं है और प्यार करने में भी आलस नहीं है।'

छुट्टी के दिन उन्हें खाने के लिये देरी होती थी। अतः उनका यह आदेश था कि उनके लिये इन्तजार न करें, नौकर-चाकर सब यथा समय खा लें। वह कहते थे-'ये लोग सारे दिन काम करते हैं, इस कारण दोपहर को थोड़ा विश्राम इन लोगों के लिये जरूरी है।' इस तरह छुट्टी के दिन नौकर-चाकर उनसे पहले ही खा लेते थे। एक दिन रामलगन नामक एक नौकर जब खाने को बैठा तो उसने देखा कि उसे मट्ठा नहीं मिला है। वह माता ठकुरानी से शिकायत करते हुए बोला-'माँ ! ठाकुर ने मुझे मट्ठा नहीं दिया है, मैं भात कैसे खाऊँगा !' ठाकुर ने बताया कि आज अधिक मेहमान आने से मट्ठा सब खत्म हो गया है।' यह सुनकर रामलगन को इतना गुस्सा आया कि सब चावल

आँगन में फेंक दिये। यह देखकर सब लोग भौंचक्के रह गये। उसी समय बाबाजी महाराज गंगा-स्नान करके लौटे, देखा कि आँगन में चारों तरफ चावल फैला पड़ा है, ऊपर जाने का रास्ता भी नहीं है। जब उन्होंने पूछा कि यह सब भात यहाँ कैसे पड़ा है तो पहले कोई जबाव ही नहीं दे पाया सभी सोचने लगे कि आज तो रामलगन के भाग्य में पिटना लिखा है। जब फिर उन्होंने पूछा तो माता ठाकुरानी ऊपर ही से बोलीं-'यह तुम्हारा लाड़ला नौकर ही है जो मट्ठा नहीं होने से भात नहीं खा सकता।' इतने में रामलगन भी रोता हुआ बोला-'बाबू आज मुझे मट्ठा नहीं दिया मैं चावल किसमें मिलाकर खाऊँ।' सब सोचने लगे कि यह सुनकर वह अवश्य नाराज होंगे, लेकिन हुआ इसके एकदम विपरीत। उसकी बात सुनकर वह हँसने लगे और माता ठाकुरानी को बुलाकर कहा-'बच्चों की जिद व अनुरोध को भी कभी-कभी पूरा करना पड़ता है, इसे थोड़ा सा दूध दे दो।'

उनके गुस्से के डर से माता ठाकुरानी दुसरों की गलतियाँ छिपा लिया करतीं थीं। पूछने पर चुप रहती थीं। एक बार बाबाजी महाराज के लिये जो चावल बनता था, वह दो-तीन दिन तक लगातार ज्यादा बनता रहा। एक दिन जब वह खाने को बैठे, तो पूछने लगे-"कौन मेरा चावल नाप कर देता है?" माता ठाकुरानी पास ही थीं पर वह कुछ नहीं बोलीं। अन्त में बाबाजी महारजा भी चुप हो गये। बाद में जब बाबाजी महाराज ने चुप रहने का कारण पूछा तो माता ठाकुरानी ने बताया-'यदि मैं उस समय तुम्हें बता देती तो तुम उसे डाँटते तथा क्लेश होता। इधर पूर्णशशि भी कम नहीं है, हो सकता है कि इतनी-सी बात पर लड़ाई शुरू कर देती अथवा काम छोड़कर चली जाती। इससे चुप रहना ही अच्छा है। इससे तुम मुझ पर गुस्सा कर

सकते हो, लेकिन इसमें कुछ हर्ज नहीं हैं।' बाबाजी महाराज ने कहा-'क्या तुम समझती हो कि मैं इन सबको डाँटता हूँ तो क्रोधवश डाँटता हूँ? पर वास्तव में ऐसा नहीं है, मैं इन लोगों की शिक्षा के लिये ही ऐसा करता हूँ। इन लोगों को जीवन में नौकरी-चाकरी करनी है, अतः यदि आज हम इन लोगों की गलतियाँ सह लेंगे तो इनकी आदतें नहीं सुधरेंगी और इस तरह भविष्य में ये लोग दुःख उठायेंगे।

यह बहुतों ने अनुभव किया कि उनका क्रोध दूसरों की भलाई के लिये होता था। श्रीयुक्त आशुतोष भट्टाचार्य ने भी लिखा है-"पढ़ाते समय कभी-कभी वे प्रहार भी करते थे, लेकिन फिर इतना स्नेह करते कि मैं अभिभूत हो जाता था। प्रहार करने में शक्ति संचार होता है, ऐसा वह कहा करते थे। कभी मैं किन्हीं प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाता था किन्तु पिटने के बाद अपने ही ठीक उत्तर दे देता था। उनके कुलगुरु गोपालचन्द्र भट्टाचार्य को भी वह पढ़ाते समय कभी-कभी डाँट देते थे।"

एक दिन उनकी जेब घड़ी जिसमें चाँदी की चैन थी, वह हमेशा की तरह टेबल पर रखी हुई थी, दूसरे दिन वह वहाँ से गायब मिली। वे उसे रोज हाईकोर्ट में साथ ले जाते थे। हम लोगों ने उसे बहुत ढूँढा, लेकिन वह नहीं मिली। छात्रगण सब कुछ-कुछ अटकल लगाने लगे, लेकिन बाबाजी महाराज ने फिर इस विषय में कुछ नहीं कहा। करीब पन्द्रह दिन बाद एक वैष्णव अतिथि घर में आए, उन्होंने अपनी फतूही धोकर सूखने के लिये बाहर डाली। जब वह भी गायब हो गई तो उन्होंने इसके बारे में बाबाजी महाराज को बताया। उन्होंने उसी समय उड़िया नौकर को बुलाकर कहा-"इनकी फतूही किधर रखी है, ले आओ।" यह सुनकर नौकर गिड़गिड़ाने लगा कि मैंने तो नहीं

ली है। तब वह बड़ी जोर से चिल्लाये-"यदि तुम फतूही नहीं दोगे तो मैं चाबुक से मारूँगा।" इस पर भी जब वह फतूही नहीं लाया तो उसे वह चाबुक से मारने लगे। तब वह घबड़ाकर अपने टूटे बक्स में से फतूही निकाल लाया। उसे देखकर फिर उन्होंने डाँटा-अच्छा, अब घड़ी भी ले आओ नहीं तो फिर और चाबुक पड़ेंगे।' उसने फिर रोना शुरु किया-'बाबू ! मैं नौकर हूँ घड़ी का क्या करूँगा, मैंने घड़ी नहीं ली है।' इस पर वे फिर चाबुक मारने लगे। तब वह बाध्य होकर अपने तकिये के अन्दर से घड़ी निकालकर ले आया। घड़ी लेकर उन्होंने उससे कहा कि यदि फिर कभी ऐसी गलती करोगे तो पुलिस में दे दिये जाओगे।' तब सब लोगों ने उसे निकाल देने के लिये कहा तो उन्होंने उत्तर दिया–'दूसरी जगह जाने पर वह फिर चोरी करेगा, यहाँ अब ऐसा नहीं करेगा।' इस तरह उसे निकाला नहीं गया।

वे दूसरों के दुर्ज्ञेय विषय के बारे में भी सब कुछ जान लेते थे, यह भी बहुतों ने अनुभव किया तथा देखा। श्रीयुक्ता प्रमादादेवी ने बताया कि गंगा-स्नान के उपलक्ष्य में गाँव से व घर से बहुत से लोग आया करते थे, कभी-कभी तो आनेवालों की संख्या सौ से अधिक हो जाती थी। इतने लोगों की व्यवस्था करने में श्रीमाता ठाकुरानी को बहुत ही परेशानी हो जाती थी तथा रुपये-पैसे का भी अभाव सा होने लगता था। तब बाबाजी महाराज कहते थे-'भगवान ही व्यवस्था करेंगे' कभी कहते कि-'अमुक दिन भगवान रुपये देंगे और उसी दिन रुपये आ जाते।' बहुत दिनों तक उन्होंने योगी सम्प्रदाय में रहकर काफी साधना की थी जिसके कि फलस्वरूप उन्हें एक अलौकिक शक्ति की प्राप्ति हुई थी। यह सब कुछ प्रसंगानुसार पहले भी लिखा जा चुका है। यह सब उसी का किंचित् प्रकाशमात्र कहा जा सकता है।

सबकी सेवा करना उनका एकमात्र ध्येय था। आत्मीय-अनात्मीय, धनी-दरिद्र, उच्च-नीच, बालक-वृद्ध सबकी सब अवस्थाओं में अर्थ, उपदेश और शासन द्वारा सेवा करने में सदैव तत्पर रहते थे। उनके परिचितों से जो कुछ उनके विषय में मालूम हुआ, वह यदि आधा भी इस ग्रन्थ में सन्निहित किया जावे तो पुस्तक का आकार बहुत ही बड़ा हो जायेगा। साधन-भजन करना, घर के प्रत्येक प्राणी की सुविधा, असुविधा का ध्यान रखना, रोगी-सेवा करना, पढ़ना और पढ़ाना, ग्रन्थ-रचना करना, उसका प्रूफ स्वयं देखना, मित्रों की सहायता करना आदि सब कुछ करते हुए वे वकालत किस प्रकार कर रहे थे, सोचकर आश्चर्य होता है। श्रीयुक्त आशुबाबू ने सच ही कहा है कि वे विश्राम तो जैसे करते ही न थे।

इसी वर्ष सामुद्रिक विद्या के विद्वान् जो उनके बन्धु थे, उन्होंने उनका हाथ देखा तथा बताया कि शीघ्र ही उनकी स्त्री का मृत्यु-योग है। यदि गुरुकृपा से मृत्यु नहीं होती तो उनके शरीर की अंग-हानि होगी। यहाँ तक कि दुर्घटना की तारीख तक बता दी थी और आश्चर्य यह कि भविष्यंवाणी सच्ची हुई। रात को बाबाजी महाराज ऊपर ही सोते थे। अतः एक दिन रात को सोने के समय उनके हुक्के की नली उनकी बायीं आँख में घुस गई और खूब खून निकला। डाक्टर काली वागची की चिकित्सा काफी दिन चली। चोट तो ठीक हो गई, किन्तु उस आँख की दृष्टि हमेशा के लिए चली गई।

आँख का दर्द भुलाने के लिए वह इन दिनों नियम से महाभारत सुना करते थे। परवर्ती जीवन में उन्होंने हमें बताया कि किस प्रकार वह महाभारत सुनते-सुनते इतने तन्मय हो जाते कि वह घटनाएँ उनके दृष्टि-जगत के सम्मुख आ जातीं तथा वह आँख का दर्द

भूल जाते। यह बताकर वह कहते-'बाबा ! भगवान की माया विचित्र है, वह किसके द्वारा क्या करते हैं, कहा नहीं जा सकता। आँख में चोट देकर असह्य यन्त्रणा मिली, लेकिन अन्तर में जो आध्यात्मिक अनुभूति हुई उससे तो जीवन ही परिवर्तित हो गया। भगवान के प्रत्येक कार्य में मंगल-विधान है, यह निश्चित जानो।

कथा प्रसंगवश उनसे यह भी सुना कि एक बार उनके मन में आया—'इतना काम करता हूँ, तब कहीं खर्च पूरा पड़ता है, यदि कभी बीमार पड़ गया तो क्या होगा, कैसे सब कुछ चलेगा।' किस प्रकार से सब कुछ चलेगा यह दिखाने के लिए भगवान ने जल्दी ही ऐसी व्यवस्था कर दी। बीमार हो गया और दो एक महीने तक बीमार रहा, लेकिन संसार चलता रहा, जरूरत के अनुसार रुपया पैसा भी आता रहा। दौलतपुर हिन्दू एकेडमी के भूतपूर्व अध्यक्ष श्रीयुक्त कामाख्याचरण नाग उन्हें इन दिनों देखने आए। उन्हें बीमार देख तथा इतना विशाल संसार किस प्रकार चल रहा है, सोचकर वह उद्विग्न हो गए। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने उनकी मन की बात जानकर हँसकर कहा-'भाई कोई चिन्ता की बात नहीं है, श्री श्रीठाकुरजी सब ठीक से चला रहे हैं। कानून सम्बन्धी बहुत से प्रश्नों में मेरा मत लेने के लिए जो लोग आते हैं, वह मेहनताना दे जाते हैं। विस्तर पर पड़े-पड़े भी रोजगार चल रहा है। कामाख्याबाबू यह सुनकर निश्चिन्त हुए।

बाबाजी महाराज की विशेष प्रार्थना तथा उन पर अमित स्नेह होने के कारण श्री श्री १०८ रामदास काठिया बाबा महाराज १९०४ ई. में उनके यहाँ कलकत्ता में आये और एक महीने से कुछ दिन ज्यादा वहाँ ठहरे। बाबाजी महाराज ने अपने गुरुदेव के जीवन-चरित्र ग्रन्थ में १८४-८५ पृष्ठ पर इसका विवरण दिया है।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के संसार-आश्रम का प्रधान कार्य शास्त्र-प्रकाश था। इसका आभास इन्हीं दिनों हुआ। पूर्वलिखित श्रीयुक्त आशुतोष भट्टाचार्य ने लिखा है-'१६०६ ई. में ज्येष्ठ की एकादशी को उन्होंने मुझे पातञ्जलि पढ़ाना आरम्भ किया। कोर्ट से लौटकर पाँच बजे के करीब मुझे पढ़ाते थे। मुझे सम्यक् धारणा करने में असमर्थ देखकर मुझे एक कापी रखने को कहा और इस तरह रोज सूत्र और भाष्य का बंगला में अनुवाद लिखाते तथा समझाते। इस तरह पातञ्जलि दर्शन पढ़ने में मुझे कई वर्ष लग गये। जब वह समाप्त हो गया तो दैनिक लिखाई की पुस्तिका को देखकर उन्होंने कहा कि इस पुस्तिका से बहुतों को लाभ हो सकता है।' इसके कई महीने बाद उन्होंने 'ब्रह्मवादी ऋषि और ब्रह्मविद्या' लिखवाना आरम्भ करवा दिया।

'ब्रह्मवादी ऋषि और ब्रह्मविद्या' ग्रन्थ की तीस पृष्ठ की टीका में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने लिखा-"वास्तव में योग सूत्र अध्ययन प्रार्थी एक विद्यार्थी के अध्ययनोपलक्ष ही इस ग्रन्थ रचना का प्रारम्भ हुआ। बाद में विषय के गुरुत्व के कारण ग्रन्थ का कलेवर बढ़ाकर सर्वसाधारण के पढ़ने के लिए उपयोगी बनाने की चेष्टा की गई है तथा अन्य दर्शन का समावेश किया गया।" श्रीयुक्त आशुतोष भट्टाचार्य ने यह भी लिखा-'किस महीने से यह ग्रन्थ लिखना आरम्भ हुआ यह तो मुझे ठीक याद नहीं है। १६०८ ई. में माघ मास में श्रीयुक्त काठियाबाबाजी महाराज का देहान्त हुआ और उसके थोड़े समय बाद ही लिखना आरम्भ हुआ। साधारणतः कोर्ट से लौटने के बाद पाँच अथवा साढ़े पाँच बजे से सूर्यास्त तक लिखवाते। वह बरामदे में घूमते-घूमते बोलते चलते और मैं लिखता जाता। कभी-कभी वह सुबह भी लिखवाते लेकिन ऐसा अधिकतर छुट्टी ही के दिन होता, कोर्ट के दिन तो मुश्किल

ही से हो पाता। छुट्टी के दिन तो गंगा-स्नान और प्रसाद पाने का समय छोड़कर समस्त दिन ही लिखवाते। विश्राम तो वे विशेष रूप से करते ही न थे। हम लोग एक चिठ्ठी लिखने में भी सोचते हैं कि क्या लिखें, किन्तु वह इतना विराट् ग्रन्थ लिखने के समय में भी नहीं सोचते थे। वह मुँह से बराबर बोलते रहते थे और मैं बराबर लिखता जाता, सिर उठाने का भी अवसर नहीं होता। मेरी अनुपस्थिति में श्रीयुक्त गुरुकान्त भट्टाचार्य इस ग्रन्थ को लिखते थे।" श्रीयुक्त गुरुकान्तबाबू से ही सुना कि तीन वर्ष के अन्दर ही यह सम्पूर्ण ग्रन्थ लिख भी गया और मुद्रित भी हो गया। सभी ग्रन्थों (उनके गुरुदेव का जीवन चरित्र छोड़कर) के रचना करके एक साथ १६११ ई. में मुद्रित करवाये।

उनका प्रथम ग्रन्थ 'ब्रह्मवादी ऋषि और ब्रह्मविद्या' भारत के प्राचीन गौरव की अपूर्व वर्णना सहित हिन्दू-धर्म का सारार्थ व्यंजक है। सब प्रकार का नास्तिकवाद खण्डित करते हुए सब दर्शन-शास्त्रों का सार इसमें सन्निवेशित है। ऋषियों के आचार और समाज-व्यवस्था सम्बन्धी उपदेशों के प्रति जो जन-साधारण का संशय है, उसका इसमें बहुत ही युक्तिविचार पूर्ण सुन्दर समाधान किया गया है। इस ग्रन्थ-माला के और तीन खण्ड 'दार्शनिक-ब्रह्मविद्या' के नाम से अभिहित हैं। पहले खण्ड में वैशेषिक दर्शन, न्याय दर्शन, पूर्वमीमांसा दर्शन कुछ अंश तथा सांख्य-दर्शन का बंगानुवाद और कहीं-कहीं प्रयोजन होने पर बंग-भाषा में व्याख्या करके प्रकाशित किया है। इसका दूसरा संस्करण हो चुका है। जब इसका प्रथम प्रकाशन हुआ तो विशेष आन्दोलन की सृष्टि हुई। सांख्य-दर्शन में ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार किया गया है, ऐसी उस समय प्रचलित धारणा थी, परन्तु बाबाजी महाराज ने ईश्वर-अस्तित्व स्वीकार करते हुए व्याख्या की है और इस तरह दुर्बोध्य सांख्य-शास्त्र उनकी व्याख्या द्वारा सहज बोध्य हो गया।

वास्तव में किस मनोभाव से प्रेरित होकर उन्होंने इन ग्रन्थों की रचना की वह उन्होंने 'ब्रह्मवादी ऋषि तथा ब्रह्मविद्या' ग्रन्थ की भूमिका में स्वयं ज्ञापन किया है। उन्होंने लिखा-"पण्डित समाज में मेरी किसी से प्रतिद्वन्द्वता नहीं है। मुझ में पाण्डित्य का अभाव इतना अधिक है कि साधारण व्याकरण शास्त्र का ज्ञान भी मुझ में अति अल्प है, किन्तु मेरा भाग्य अति साधारण है। कारण मैंने महत् कृपा लाभ की है, उसी कृपा के बल पर अति दुर्बोध दर्शन-शास्त्र भी स्नेहमयी जननी की भाँति अपना गोपन ज्ञानामृत मुझे प्रकाशित करते गये, जिससे मैं स्वयं विस्मित हो गया। हिन्दू-पण्डित-समाज में यह अवश्य सर्ववादि सम्मत है कि श्रीभगवान वेदव्यास, महर्षि कपिल, पातञ्जलि एवं गौतम आदि सिद्ध ऋषिगण भ्रम-प्रमाद-शून्य आप्त पुरुष थे, इस कारण उनमें प्रकृत मत-विरोध रहा हो, यह असम्भव है। अंतएव यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि अब जो विरोध उनके उपदिष्ट ग्रन्थों में दीखता है, उसकी कोई न कोई मीमांसा अवश्य होगी। मेरे हृदय में श्रीगुरु-कृपा से सब दर्शन-शास्त्रों में सामंजस्य-स्थापन-समर्थ एक प्रकार की मीमांसा का उदय हुआ है। वह यदि पण्डित समाज में प्रकाशित हो तो उससे मंगल होगा, अतः मैं इसी विश्वास को लेकर इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में प्रवृत्त हुआ हूँ। देखो काल और पात्र के अनुसार धर्म-शिक्षा और प्रचार-प्रणाली में अनेक व्यतिक्रम होता रहता है। अतएव यद्यपि अजिज्ञासित एवं अपात्र को विद्यादान का शास्त्रों में निषेध है; फिर भी पहले से अब सामाजिक प्रणाली में काफी अन्तर आ गया है। आजकल ब्रह्मविद्या सम्पन्न ऋषिगणों के आश्रम भी नहीं दीखते हैं जो कोई जिज्ञासु वहाँ जा सके ऐसी सुविधा भी नहीं है।

विशेषतः कुछ समय से तो भारतवर्ष से हिन्दू-धर्म प्रायः लुप्त होता जा रहा है, देखकर ऐसा लगता है। अतएव इस समय हिन्दू-धर्म और शास्त्रों का आपत्काल उपस्थित हुआ है। ऐसा कहा जा सकता है। इस कारण ब्रह्मविद्या जनसाधारण के समक्ष किंचित् प्रकाशित कर रहा हूँ, इससे पण्डित लोग मुझ पर अकृपा न करें। आपत्काल में महर्षिगणों ने अपात्र से भी दान ग्रहण किया है। अतएव पण्डितसमाज से मेरी विनीत-प्रार्थना है कि मुझ जैसा अपण्डित और विषयीजन होने पर भी जातीय विद्या के इस आपत्काल में इस अयोग्य ग्रन्थकार के ग्रन्थ की आलोचना करने में कुण्ठित न हों। भिन्न-भिन्न दर्शन-शास्त्रों की मीमांसा मैंने इस ग्रन्थ में की है। वे लोग अपनी चिन्ताशक्ति द्वारा तथा भगवत्कृपा से शायद इससे उत्तम मीमांसा कर सकें। इससे मेरे साथ विरोध होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। मैं पण्डित भी नहीं हूँ ज्ञानी भी नहीं हूँ, इसलिए कहीं भ्रम में पड़ गया हूँ तो भी अस्वाभाविक नहीं है। अतएव पण्डितों से मेरी यही प्रार्थना है कि वे मेरे भ्रम-प्रमाद की उपेक्षा करके ही उक्त ग्रन्थ की विषयालोचना में प्रवृत्त हों।

श्रीयुक्त आशुतोष भट्टाचार्य ने लिखा-'सांख्य लेखन समाप्त होने पर बाबाजी महाराज ने भट्टपल्ली निवासी पण्ड्ति श्रेष्ठ श्रीयुक्त पंचानन तर्करत्न को आमन्त्रित करके सांख्य की पाण्डुलिपि उन्हें पढ़ने को दी। तर्करत्न महाशय ने कुछ पृष्ठ पढ़ने के बाद उनके साथ विचार विमर्श किया, काफी समय तक दोनों में विचार-विनिमय चला। फिर तर्करत्नजी ने दोनों हाथों से बाबाजी महाराज को पकड़कर भावविभोर होकर कहा-'बाबू ! यह सब आपने कैसे पाया?' बाबाजी महाराज ने सजल नेत्रों से उत्तर दिया-'यह सब गुरु कृपा है, मुझ में अपनी कोई शक्ति नहीं है। श्रीगुरुदेव मुझसे जो कुछ कहलवा रहे हैं, वही मैं कह रहा हूँ।'

इस ग्रन्थमाला का तीसरा ग्रन्थ (दार्शनिक ब्रह्मविद्या का दूसरा खण्ड, इसका दूसरा संस्करण हो चुका हैं) महर्षि वेदव्यास कृत भाष्य और उसका बंगानुवाद एवं ग्रन्थ की सारार्थ व्यंजक भूमिकायुक्त पातञ्जलि दर्शन था। महर्षि पातञ्जलि द्वारा रचित यह दर्शनशास्त्र परम उपादेय तथा योगविषयक मूल प्रामाणिक ग्रन्थ जानकर सर्वत्र आदृत है। महाभारत और वेदान्त दर्शन-प्रणेता स्वयम् वेदव्यास ऋषि ने जो उसका भाष्य लिखा, वह सर्वोत्कृष्ट है, इसमें सन्देह नहीं है, वास्तव में यह मूल ग्रन्थ के समान ही मूल्यवान है। तथापि यह भाष्य इस देश में आजकल उतना प्रचलित नहीं है। अतः इस ग्रन्थ के प्रकाशन से लोगों को यह सुलभ हो गया।

चतुर्थ ग्रन्थ 'वेदान्त-दर्शन' (दार्शनिक ब्रह्मविद्या का तीसरा खण्ड इसका तीसरा संस्करण हो चुका है) था। श्रीनिम्बार्काचार्य कृत वेदान्त-भाष्य अभी तक बंग-भाषा में मुद्रित व प्रचारित नहीं हुआ था। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने इस वेदान्त-भाष्य का बँगलानुवाद तथा व्याख्या की, जिन स्थलों पर शांकर-भाष्य के साथ व्याख्या विरोध था, उन स्थलों पर शांकर-भाष्य उद्घृत करके उसका बँगला में अनुवाद और विस्तृत विचार व्याख्या करते हुए यह तीसरा खण्ड प्रकाशित किया। श्रीबाबाजी महाराज का बँगला अनुवाद और व्याख्या कहीं भी जटिल नहीं है। प्राचीन ऋषियों की रचना साधारणतः सरल होती है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने भी सरल अर्थ ही ग्रहण किया है।

तृतीय अध्याय
साधना की ओर

हर वर्ष श्रीयुक्त बाबाजी महाराज पूजा की छुट्टियों में वृन्दावन जाकर अपने गुरुदेव के दर्शन करते थे। जिस वर्ष पूजा की छुट्टियों के प्रारम्भ में जाते, उस वर्ष अपने गुरुदेव के साथ व्रज-परिक्रमा को जाते थे एवं जिस वर्ष शेष भाग में जाते, तो उस वर्ष दीपमाला के समय गिरिराज की परिक्रमा में उनके साथ जाते। १८६४ ई. (उनके दीक्षा के समय) से १६०६ ई. के बीच वह दो बार सपत्नीक ब्रज-परिक्रमा और छः बार गिरिराज की दीपमाला का दर्शन करने गये। उनके गुरुदेव ने बहुत वृद्ध होने के कारण १६०७ ई० से ब्रज-परिक्रमा जाना छोड़ दिया और ब्रज-धाम के महन्त पद का भी त्याग कर दिया था। दीपमाला से एक दिन पहले चतुर्दशी को गिरिराज के पास 'निम्बगाँव' में प्रतिवर्ष एक उत्सव होता है। यही गाँव भगवान निम्बार्काचार्य का तपस्या-स्थान है। इसी स्थान पर इसी तिथि पर उन्होंने आश्रम के एक बृहत् नीम के वृक्ष पर चढ़कर आकाश में श्रीभगवान के सुदर्शनचक्र की स्थापना की थी। इसी उपलक्ष्य में यहाँ प्रतिवर्ष उत्सव होता है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज गिरिराज जाकर वहाँ भी दर्शन को जाते थे।

ब्रज की वन-परिक्रमा में साधारणतः गृहस्थीजन साधुओं के साथ नहीं जाते हैं। साधुओं का, गृहस्थियों का तथा गोकुल के गोसाईं का, ये तीनों दल पृथक्-पृथक् दिन परिक्रमा के लिये चलते हैं। गृहस्थ लोगों की परिक्रमा सबसे पहले शेष हो जाती है, कारण वे लोग भगवान के सब लीला-स्थलों का दर्शन न करके प्रधान-प्रधान स्थान दर्शन करते हैं। बाबाजी महाराज पर उन (गुरुदेव) का विशेष अनुग्रह होने

के कारण वह सपत्नीक एवं कभी-कभी अपने बन्धुओं एवं साधुओं के साथ परिक्रमा में गये। साधु-मण्डली ने भी उनके लिये विरोध नहीं किया, वरन् प्रीति से अनुमोदन ही किया। बाबाजी महाराज खूब उत्साहपूर्वक चलते तथा प्रतिदिन ही तीन चार कोस चलकर निर्दिष्ट स्थान पहुँचते। उनके साथ के यात्री कभी-कभी थक जाते थे, लेकिन वह नहीं थकते थे। वह पहुँचते ही पहले अपने गुरुदेव के लिये एक बड़ा छत्र तथा श्रीश्रीठाकुरजी के लिये अपेक्षाकृत छोटा छत्र जमीन में गाढ़ते उसमें पानी न जाय इसलिये परदा लगाते तथा चारों ओर नालियाँ खोदते। फिर अपने रहने के लिये छोटा तम्बू जो उनके गुरुदेव ने उन्हें दिया था, लगाते। सबके विश्राम के लिये जो व्यवस्था आवश्यक है वह स्वयम् ही करते। वह यह सब काम बड़ी शीघ्रता और निपुणता से करते थे। फिर अपने गुरुदेव के लिये दूर से कलश भरकर जल लाते। श्रीयुक्त विष्णुदासजी नामक बाबाजी महाराज के एक कनिष्ठ गुरुभाई जो अपने गुरुदेव के पुराने स्थान पर सेवा-पूजा करते हैं, उनसे ही बाबाजी महाराज की ब्रज-परिक्रमा सम्बन्धी कुछ घटनाएँ सुनीं, जिनके द्वारा उनके चरित्र-माहात्म्य पर विशेष प्रकाश पड़ता है। वह मैं यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ।

एक बार सम्भवतः १६०५-६ ई. में उनकी वकालत कुछ कम चल रही थी। घर में बहुत से छात्र व आत्मीय स्वजन थे ही, अतः खर्चा कम नहीं हो पा रहा था। उनका अपने ऊपर तो कभी विशेष व्यय होता ही नहीं था, इसलिये वहाँ खर्चा कम करने का सवाल ही नहीं था। इस तरह आय से ज्यादा व्यय हो रहा था, अतः कर्जा होने लगा। वह अपने गुरुदेव की सेवा के लिये पिचहत्तर रुपये प्रतिमास भेजते थे वह भी ऋण लेकर भेजते रहे। प्रत्येक वर्ष की भाँति पूजा की

छुट्टियों में वृन्दावन भी आए। खर्च के लिये पैसा रहे, अतः तीन सौ रुपये कर्ज करके ही लाये। वृन्दावन में रहते समय भी श्रीश्रीठाकुरजी को भोग के लिये रोज बाजार से कुछ न कुछ फल वगैरह भी लाते थे। इन्हीं दिनों में एक दिन श्री श्रीकाठियाबाबा ने उन्हें बुलाकर कहा-'बाबूजी!✤ मौनी गौओं के लिये जो भूसा लाया वह अच्छा नहीं है। तुम कुछ भूसा ले आओ।' उनके गुरुदेव वैसे किसी से कुछ नहीं माँगते थे आज उन्होंने स्वयं कुछ लाने को कहा इसलिये वह बहुत प्रसन्न होकर भूसा लेने चले गये। आश्रम से थोड़ी दूर चले, देखा कि भूसे की कुछ गाड़ियाँ जा रही थीं, गुरु का प्रभाव देख बहुत आनन्दित हुए तथा साठ रुपये में तीन गाड़ी भूसा खरीद लिया। इसके कई दिन बाद फिर उनके गुरुदेव ने कहा कि-जो भूसा तुम लाये वह भी अच्छा नहीं है। तुम इन सबके लिये रोज घास ले आना।' जो कभी किसी से कुछ माँगते नहीं, जिन्हें कोई अभाव नहीं, वही बार-बार इस प्रकार कहें तो उनका जो मनोभाव हुआ वह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। अपने को धन्य मानते हुए वह घास लेने चले गए। गुरुदेव की आज्ञानुसार उस दिन से रोज घास लाने लगे। वह रोज जितनी घास लाते वह सब रोज ही खत्म नहीं हो पाती थी क्योंकि गायें सब नहीं खा सकती थीं, अतः उनके गुरुदेव रोज की बची हुई घास छत पर डलवा देते तथा उस पर कम्बल डलवा देते। वारिश होने पर घास सब सड़ जाते तथा कम्बल भी गल जाता तो फिर सब कुछ फिकवा देते। बाबाजी महाराज सब कुछ देखते लेकिन कुछ नहीं कहते। वह प्रसन्न मन से गुरुदेव का आदेश पालन करते जाते।

✤ गुरुदेव उनको प्यार से बाबूजी कहते थे। मौनी आश्रम का साधू था। भूसा-गायों का खाद्य।

फिर एक दिन उन्हें पास में देखकर उनके गुरुदेव अपने आप बोलने लगे-'मौनी साला खुई खुई (बक-बक) करता रहता है, नाज-बाज कुछ नहीं है। सब कमती हो गया कैसे चलेगा।' उनसे न कहकर उन्हें यह बात सुनाई। बाबाजी महाराज तभी जाकर बाजार से गेहूँ, जौ, चना आदि काफी अनाज ले आए। यह देखकर उनके गुरुदेव सबसे कहने लगे-'देखा बाबू नाज ले आकर भर दिया।' इस तरह बाबाजी महाराज के पास जितने रुपये थे सब ही प्रायः खर्च हो गये। इसी हालत में एक दिन उनके गुरुदेव ने फिर उनसे कहा-'बाबू, तुम लोगों को रोटी खाने में तकलीफ होती है बाजार से कुछ चावल ले आओ।' इस समय उनके पास एक भी पैसा नहीं था। व्यास नामक एक दुकानदार के यहाँ से वह सामान लाते थे अतः वह उसकी दुकान से ही एक थैला चावल उधार ले आये और कुछ रुपये भी गिरवी रखकर लाये।

कुछ दिन बाद ब्रज-परिक्रमा जाने का समय आया। बाबाजी महाराज जब अपने गुरुदेव के साथ परिक्रमा पर जाते थे, तो वहीं दो बैलगाड़ी एक सामान के लिये तथा दूसरी माता ठकुरानी के लिये किराये की लेकर जाते थे। इस बार भी यही किया। परिक्रमा के खर्च के लिये व्यास से और कर्जा लिया।

उनके गुरुदेव ने परिक्रमा के समय एक और तरह से उनकी परीक्षा ली। यात्रा की जब तैयारी पूरी हो गई, गाड़ियाँ आश्रम के बाहर खड़ी थीं तथा माता ठकुरानी वहाँ इन्तजार में खड़ी थीं कि उनके गुरुदेव यात्रा के लिए तैयार होकर बाहर आये। माता ठकुरानी को वहाँ देखकर पूछा-"माई ! बाबूजी कहाँ हैं?" उन्होंने उत्तर दिया-"वह भीतर हैं, कुछ कर रहे हैं अभी आयेंगे।" इस पर गुरुमहाराज ने कहा-"तुम अभी जाकर उनको बुला लाओ।" माता ठकुरानी यह

सुनकर तभी आश्रम में चली गई। उनके गुरुदेव जल्दी से गाड़ी में बैठ गये और गाड़ीवान को जल्दी-जल्दी गाड़ी चलाने का आदेश दिया। बाद में बाबाजी महाराज और माता ठकुरानी ने बाहर आकर देखा कि गाड़ी चली गई है। माता ठकुरानी उस दिन सुबह भी बहुत से मन्दिर दर्शन करने गई थीं अतः बहुत पैदल चली थीं, इसलिये थकी हुई थीं। उन्हें पैदल चलने का अभ्यास भी नहीं था। वह बोली–"मैं, मथुरा तक तो पैदल नहीं जा सकती, क्या करें।" बाबाजी महाराज उन्हें प्रबोध करते हुए कहने लगे–"अब तो देरी करना ठीक नहीं है, कुछ दूर चलो, कुछ न कुछ इंतजाम होगा ही। हो सकता है गाड़ी ही कुछ दूर आगे खड़ी मिल जावे।" दोनों पैदल चलने लगे, चलते-चलते मथुरा की सड़क आ गई लेकिन गाड़ी फिर भी दिखाई नहीं पड़ी। माता ठकुरानी ने सामने देखकर कहा–"गाड़ी तो कहीं दिखाई नहीं पड़ रही है।" रास्ते में एक दो तांगे जा रहे थे बाबाजी महाराज बोले–'तुम ताँगे में बैठकर चलो, मैं आगे-आगे चलता हूँ।' वह पैदल चलें तथा स्वयम् ताँगे में चढ़े यह प्रस्ताव माता ठकुरानी को पसन्द नहीं आया वह भी धीरे-धीरे उनका अनुसरण करने लगीं। ब्रज के रास्ते कंकर काँटे खूब हैं। गोखरू के काँटे तथा कंकर से उनके पैर घायल हो गये। आश्रम से लगभग एक मील दूर हनुमानजी का मन्दिर है, वह वहाँ तक किसी तरह आईं और फिर उनसे चला नहीं गया वह वहीं बैठ गईं। उन्होंने देखा कि कुछ दूर आगे उनकी बैलगाड़ी जा रही है और उसमें उनके गुरुदेव बैठे हैं। बाबाजी महाराज उन्हें सान्त्वना देते हुए कहने लगे–'देखो ! गुरुदेव कभी गाड़ी में नहीं चढ़ते हैं आज हमारा महाभाग्य है कि वह स्वेच्छा से गाड़ी में बैठे हैं। तुम किसी भी तरह कष्ट करके मथुरा तक चलो, उनकी कृपा से तुम्हारा यह क्लेश मिट जायेगा।' यह कहकर वह फिर

जल्दी-जल्दी आगे चलने लगे। माता ठकुरानी ने इस प्रकार के कष्ट कभी नहीं उठाये थे, वह असह्य दुःख से रोने लगीं और अन्त में पैरों पर कपड़ा बाँधकर धीरे-धीरे चलने लगीं। उनके गुरुदेव तो अन्तर्यामी थे सभी कुछ जानते थे, उन्होंने तो जानकर ही ऐसी अवस्था की सृष्टि की। गाड़ी रोककर वह खड़े हो गये, बाबाजी महाराज जब वहाँ पहुँचे तो पूछा–'माई कहाँ है?' वह पीछे-पीछे आ रही हैं।' इस पर वह कहने लगे–'बाबू ! माई को बड़ी तकलीफ होती है। अब तुम उनको गाड़ी में चढ़ाकर ले आओ।' तब बाबाजी महाराज ने हाथ जोड़कर कहा–'बाबा! आप तो कभी गाड़ी में चढ़ते नहीं, आज आप कृपा करके चढ़े हैं, यह तो हमारा महाभाग्य है। इन्हें एक दिन कष्ट हो गया तो क्या, आपकी सेवा के लिए कुछ कष्ट हुआ यह भी इनका सौभाग्य है।' गुरुदेव ने कहा–'नहीं बाबा ! उनके कष्ट से हमको भी कष्ट होता है। तुम उनको गाड़ी में चढ़ाकर ले आओ।' बाबाजी महाराज ने बड़े विनीत भाव से कहा–'बाबा ! आज मैं तो बहुत तेजी से चल रहा हूँ। आप गाड़ी चढ़े, इससे मुझे बहुत आनन्द हो रहा है। उन्हें गाड़ी पर बिठाने की आपकी इच्छा हो रही है तो आप उन्हें अपने साथ गाड़ी में ले जाइये और मुझे पैदल चलने की अनुमति दीजिए।' उनका ऐसा भाव देखकर गुरु महाराज इस पर राजी हो गये और उनके आदेशानुसार पैदल चल दिये। थोड़ी देर बाद माता ठकुरानी वहाँ आ पहुँची, गुरुदेव ने प्रसन्न वदन से कहा–'माई तुमको बड़ा कष्ट हुआ, तुम अब गाड़ी में चढ़ो।' उनका स्नेह और प्रसन्न भाव देखकर माता ठकुरानी पैरों की व्यथा, थकान आदि सब कुछ भूल गईं, वह हाथ जोड़कर कहने लगीं–'बाबा! मैं आपके साथ में कैसे बैठ सकती हूँ, इससे तो अपराध होगा।' गुरुदेव

बोले–'नहीं माई ! कुछ अपराध नहीं होगा, तुम तो हमारी लड़की हो।' उन्होंने इतने स्नेह से उनकी ओर देखा तथा प्यार से सब कहा कि माता ठकुरानी की सब द्विधा व संकोच मिट गया, उन्होंने फिर कुछ भी नहीं कहा–गुरुदेव को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उनके साथ गाड़ी में बैठ गईं। गाड़ी चल दी।

यहीं परीक्षा समाप्त नहीं हो गई। परिक्रमा के समय व बाद में भी नाना रूप से परीक्षा ली। केवल एक घटना का यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के गुरुभाई श्रीयुक्त गुरुकान्त भट्टाचार्य ने भी हम लोगों को बताया कि–'उनकी गुरुभक्ति असीम थी। बाबाजी महाराज की जरूरी खबर पाकर वह सीधे वृन्दावन आते थे। उनके दूसरे गुरुभाई श्रीयुक्त शारदा प्रसन्नदास ने भी लिखा–'श्रीमत् सन्तदासजी श्री श्री गुरुदेव के साथ अनेक बार व्रज-परिक्रमा को गये। अन्तिम बार गुरुभाई अभयनारायण बाबू, नगेन्द्रबाबू, मैं तथा अन्य अनेक गुरुभाई उनके साथ गये। श्रीयुक्त गुरुदेव इस बार उम्र अधिक होने के कारण पालकी में बैठकर व्रज-परिक्रमा को गये। हम सबने यह ध्यान दिया कि सन्तदास श्री श्रीगुरुदेव के आराम व सुविधा का विशेष ध्यान रखते थे। परिक्रमा में नन्दघाट से माँट ग्राम नौका द्वारा जाते हैं। हम लोगों ने श्रीगुरुदेव से नौका में चलने के लिए निवेदन किया, किन्तु सन्तदास ने पहले ही हमसे कहा था कि नौका द्वारा बहुत समय लगेगा तथा इससे गुरुदेव को कष्ट होगा। बाबाजी महाराज ने हमारे लिए यह कष्ट सहन किया तथा इस तरह हमने उनका सान्निध्य लाभ किया। हम लोग अपने आनन्द को देखते थे किन्तु सन्तदास जी श्री श्रीगुरुदेव की सेवा में लगे रहते थे।'

अपने गुरुदेव की कोई विशेष माहात्म्य की बात को वह हमेशा 'बाबा की असाध्य कृपा' कहते हुए सुनाया करते थे। उस समय उनके मुख का भाव देखकर ही उनकी गुरुनिष्ठा का परिचय मिलता था।

उन्होंने सद्गुरु के लिए कितनी आकुल प्रतीक्षा की थी अतः जब उन्हें चिरवांछित सद्गुरु मिले तो उनकी अवस्था वैसी हुई, जैसे जन्मान्ध को आँख मिलने पर तथा बन्ध्या को पुत्र मिलने पर होती है। लेकिन यह तो केवल प्रारम्भ मात्र ही है, फिर तो धीरे-धीरे गुरुदेव की महिमा का परिचय पाकर श्रीगुरुदेव को साक्षात् भगवान् जगद्गुरु और अपनी अन्तरात्मा मानकर उस अपूर्व भाव की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई जिसका आभास केवल परम पिता की अनुकम्पा से ही हो सकता है।

श्रीवृन्दावन में जिस बगीचे में उनके गुरुदेव रहते थे वहाँ बहुत साँप थे तथा स्थान भी छोटा था। वहाँ पर एक आश्रम बनवाने की उनकी इच्छा हुई अतः वह कलकत्ता से रुपये भेजते तथा उनके गुरुदेव ने वहाँ मन्दिर बनवाना आरम्भ किया। श्री १०८ विजयकृष्ण गोस्वामी के शिष्य श्रीयुक्त हरिमोहन बाबू को भेजकर जयपुर से श्रीराधाकृष्ण का युगल विग्रह मँगाया तथा १८९७ ई. में उनके श्रीगुरुदेव ही ने मूर्ति-प्रतिष्ठा की। उस दिन ही भारतवर्ष व्यापी भूचाल आया था, लेकिन वृन्दावन में किसी को मालूम ही नहीं चला, जब कि मथुरा में भूमिकम्प हुआ था। प्रतिष्ठा के दो दिन बाद की बात है बाबाजी महाराज एक कमरे में बैठे थे तथा उनके गुरुदेव उनके कमरे के दरवाजे के पास आकर कहने लगे–'बाबूजी ! सुनो मेरी बात, तुम्हारा जो ठाकुर यहाँ बैठा है वह भारी करामाती ठाकुर है। ठाकुरजी तुम्हें वर देंगे, जो कुछ तुम्हारे मन में है इस वक्त जाकर उनसे माँग लो।' उन्होंने इस पर उत्तर दिया–'आपकी सन्तुष्टि ही मेरी चिर-वांछित

इच्छा है, यदि आप सन्तुष्ट रहेंगे तो मुझे कोई अभाव नहीं रहेगा।' यह सुनकर उनके गुरुदेव ने कहा–'हाँ, तुम्हारी बात सच है, बाकी कुछ परीक्षा भी कर लेनी चाहिए, हम कहते हैं जाओ इस समय जो कुछ वर तुम्हारे मन हो ठाकुरजी से माँग लो।' उनका यह आदेश सुनकर फिर वह कुछ नहीं बोले तथा ठाकुर मन्दिर गये, वहाँ ठाकुरजी को दण्डवत् करके यह प्रार्थना करने लगे–'हे प्रभो ! गीता में तुमने कहा है :-

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।
भक्त्या मामाभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।✣

इन श्लोकों में वर्णित अवस्था को मनुष्य देह जहाँ तक लाभ कर सके, वही मैं प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम्हारी बस इतनी ही कृपा चाहिए और कुछ नहीं चाहिए। इस प्रकार प्रार्थना करके भगवान् को दण्डवत् प्रणाम करके वे फिर वहीं आकर बैठ गये, जहाँ पहले बैठे थे। श्रीयुक्त दादा गुरुजी महाराज (काठिया बाबा) तब धूनी के पास ही बैठे थे। वे फिर उठकर आये और दरवाजे के पास खड़े होकर बोले–'तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा, तुम्हारी ऋद्धि-सिद्धि का टोटा नहीं पड़ेगा, महन्ताई भी मिलेगी।'

थोड़ी देर रुककर फिर कहने लगे–'भगवत्-दर्शन भी तुमको मिलेगा। अगर यह मेरी बात सच्ची नहीं हो तो हम भी सच्चा साधू

✣ मैं जिस प्रकार हूँ और जो मेरा यथार्थ स्वरूप है, तत्त्व के साथ मुझे वह पुरुष पराभक्ति के द्वारा जान लेते हैं। इस प्रकार मुझे तत्त्व के साथ जानकर उसके अनन्तर मुझ में ही प्रवेश करते हैं।

नहीं है।' उनकी यह सब बातें सुनकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज स्तम्भित हो गये।✣

भगवान् श्रीकृष्ण की लीला-भूमि व्रजधाम ही है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज कितनी बार व्रज-परिक्रमा को गये, नन्दगाँव, बरसाना आदि विशेष स्थानों पर भगवान कृष्ण ने उनके साथ तरह-तरह के खेल किये। ये सब घटनायें वह बताते नहीं थे। कभी किसी प्रसंगवश भावावेश में आकर उन्होंने एक-दो घटनायें हम लोगों को सुनाईं, जो कि निम्नलिखित हैं-

व्रज-परिक्रमा के पथ में नन्दग्राम एक प्रधान स्थान है। यहाँ पहुँचकर साधुगण सबसे पहले मन्दिर जाकर नन्दबाबा, यशोदामाई एवं कृष्ण-बलराम के दर्शन करते हैं तब फिर कहीं कुण्ड के किनारे जाकर आसन लगाते हैं। कुण्ड का रास्ता गाँव से होकर जाता है। एक बार

✣ इन सब बातों का पूर्वाभास एक घटना द्वारा हुआ जो कि उन्होंने हमें बतलाया है। उनके गुरुभाइयों में गुरु का स्थान ग्रहण करने के उपयुक्त कोई नहीं दीखता था तथा इसके लिए उन्हें बहुत दुःख होता। एक दिन उन्होंने सुयोग पाकर श्रीयुक्त दादा गुरु से निवेदन किया-'महाराज ! सृष्टि के आरम्भ से जो ब्रह्मज्ञ सिद्ध महापुरुषों की परम्परा चल रही है, वह क्या अब लुप्त हो जायेगी? आपके अवर्तमान में इस स्थान के योग्य मुझे तो कोई समर्थ व्यक्ति नहीं दीखता है। श्रीयुक्त दादा गुरुजी यह सुनकर कुछ देर तो चुप रहे, फिर थोड़े दुःखित स्वर से कहने लगे-'बाबा हम क्या करेंगे, सुपात्र ही नहीं मिलता है।' इस पर बाबाजी महाराज ने कहा-'महाराज किसी को सुपात्र बनाने की क्या आपमें सामर्थ्य नहीं है?' तभी उन्होंने तेजी से जवाब दिया-'सामर्थ्य क्यों नहीं है, जरूर है।' बाबाजी महाराज ने तब कहा-'फिर किसी को सुपात्र क्यों नहीं बना लेते हैं?' श्रीयुक्त दादा गुरुजी महाराज कुछ देर तो चुप रहे और उनकी ओर देखते रहे। फिर धीरे से अपने-आप से कहने लगे-'हाँ ! हम किसी को कर लेंगे।'

परिक्रमा में जब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज दर्शन करके कुण्ड की ओर जा रहे थे तो रास्ते में एक हलवाई की दुकान के पास बहुत से व्रजबालक उनके पीछे पड़ गये कि–'बाबू हम सबको कुछ जलेबी खिला दो। तब तक दुकान में जलेवी तैयार नहीं थीं। बाबाजी महाराज ने दुकानदार से कुछ जलेबी तैयार करने को कहा और वे वहाँ रुक गये। थोड़ी ही देर में और दो बालक भी वहाँ आ गये। उन दोनों की मुखश्री तथा नयन इतने मोहक थे कि बाबाजी महाराज जलेबी तैयार होने तक उन्हें ही देखते रहे। जब जलेबी तैयार हो गई तो दोनों बालकों ने मुस्कराते हुए उनसे कहा–'बाबा ये सब तो बड़ा उपद्रव मचायेंगे तुम हम दोनों को जलेबी दे दो, हम सबको बाँट देंगे।' उन दोनों का स्वर भी मधुर था। उन दोनों की बात सुनकर बाबाजी महाराज मुग्ध हो गये, उन्हें ऐसे लगा मानो यह कृष्ण-बलराम हैं। उन सब लड़कों ने भी वह सब जलेवी उन दोनों को दे दीं, उन लोगों ने कुछ तो स्वयं खाईं बाकी सब बाँट दीं तथा फिर दोनों अन्तर्धान हो गये, कोई देख भी नहीं पाया कि वह कहाँ गये। तब बाबाजी महाराज की समझ में आया कि व्रज-बालकों के साथ साक्षात् कृष्ण-बलराम उन्हें दर्शन दे गये। वह यह सोचकर अपूर्व आनन्द में निमग्न हो गये।

इसी प्रकार एक अन्य घटना है। परिक्रमा में नन्दघाट से यमुना पार कर माँठ ग्राम जाते थे। कभी बाढ़ आने पर रात को नन्दघाट ठहरना पड़ता था। उस वर्ष अधिक बारिश होने के कारण रास्ते में बहुत कीचड़ हो गई थी, अतः बैलगाड़ी से जाने पर भी काफी देर हो गई थी। यमुनाजी में काफी पानी था, इसलिए रात को वहीं ठहरना पड़ा। उस दिन एकादशी थी, बाबाजी महाराज का भी उपवास था, वह फलाहार कर लेते थे। जब तक नन्दघाट पहुँचे तब तक तो वह

कुछ खा ही नहीं पाये। अतः वहाँ पहुँचकर गाँव से दूध लाने के लिए एक आदमी को भेजा। गंगा नाम्नी जो गाय उनके साथ थी, उसके दूध से उनके गुरुदेव के आहार की व्यवस्था हो गई थी।' अन्य साधुओं ने गाँव के गृहस्थियों के यहाँ से कुछ फलाहार लेकर खा-पी लिया था, केवल वही एक अभुक्त थे।

परिक्रमा में विश्राम स्थान आने पर तम्बू आदि की व्यवस्था बाबाजी महाराज ही करते थे, यह पहले बता चुका हूँ। उस दिन भी जब सब कुछ सम्पन्न करके वह स्नान करने जा रहे थे, तब उस आदमी ने आकर बतलाया कि दूध कहीं भी नहीं मिल सका। उन्होंने मन में सोचा कि आज तो शायद पेड़ के पत्ते खाकर सोना होगा। बाहर आकर चारों तरफ नजर दौड़ाई, लेकिन ऐसा कोई भी पेड़ नहीं दिखा जिसके कि पत्ते खाये जा सकें। दूर पर एक तालाब में सिंघाड़े की बेल दिखाई दी, यह सोचकर कि शायद दो-चार फल वहाँ मिल जावेंगे वे उधर ही स्नान को गये। स्नान के बाद जब सिंघाड़े तोड़ने के लिए बढ़े तो सूर्यास्त हो रहा था। अतएव वह यह सोचते हुए कि आज मैं कुछ नहीं खाऊँ यही शायद भगवान की इच्छा है लौटकर चले। भगवान की आरती के बाद कुछ देर भजन करके जब वह सोने जा रहे थे कि कहीं से एक लड़का हाथ में दूध का लोटा लेकर आया और पुकारने लगा–'बाबूजी कहाँ हैं? बाबूजी कहाँ हैं?' उनके गुरुदेव उस समय शयन कर रहे थे। लड़की की आवाज सुनकर उन्होंने बालकदास नामक साधु से कहा–'बालकदास ! बाबू को दिखा दो तो।' जब बालकदास बाहर आये तो लड़ने ने उनसे कहा–'बाबू के लिए यह दूध ले आया हूँ उनको दे दो।' यह कहकर वह अन्तर्धान हो गया, बालकदासजी ने दूध लाकर बाबाजी महाराज को दिया, वह बहुत

आश्चर्यचकित हुए तथा जाकर देखने लगे कि कौन दूध लाया, लेकिन उन्हें कोई दिखाई नहीं पड़ा, तब उनके गुरुदेव कहने लगे–अरे ! दूध पीले, तुम्हारे ही लिए यह दूध आया है।' जब उन्होंने वह दूध पिया तो देखा कि उसमें बादाम, पिस्ता, मिश्री सब कुछ है और उसका स्वाद तो बस अतुलनीय ही है, इतना स्वादिष्ट दूध उन्होंने कभी नहीं पिया था। दूध का लोटा भी फिर कोई वापस लेने नहीं आया। साक्षात् भगवान ही उनके लिए यह दूध लाये थे।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज बताते थे–'बाबा ! इसी तरह गुरुदेव के निकट आता जाता तथा कलकत्ता में वकालत भी करता। इसी अवस्था में एक बार मेरे मन में इतना तीव्र वैराग्य हुआ कि मैंने निश्चय कर लिया कि अब मैं संसार में नहीं रहूँगा, साधू हो जाऊँगा तथा उनकी सेवा में अवशिष्ट जीवन बिताऊँगा। ऐसा संकल्प करके मैंने अपने एक घनिष्ठ बन्धु* को अपने मन की इच्छा बतायी, पत्नी के भरण-पोषण की समुचित व्यवस्था करके उनके ऊपर उसका भार दे दिया। ये अत्यन्त धर्मपरायण थे इस कारण मेरी इस सत् इच्छा में बाधा देना ठीक नहीं समझा। जिस दिन सब प्रबन्ध पूरे करके साधु होने का निश्चय किया। उसी दिन रात को जब मैंने अपने सोने के कमरे का दरवाजा खोला तो देखा कि सामने भगवान श्रीकृष्ण चतुर्भुज रूप में सम्मुख खड़े हैं, उनका मुखचन्द्र प्रसन्नतापूर्ण है तथा नेत्रों से करुणाधारा प्रवाहित हो रही है, अपूर्व ज्योति से कमरा प्रकाशित हो

* बन्धु का नाम मोहनी मोहन चक्रवर्ती है, वे बाबाजी महाराज के पड़ौसी थे, एक साथ वकालत भी करते थे। योगी सम्प्रदाय में भी उन्होंने योग दीक्षा ली थी। ये बाबाजी महाराज के साथ दो-एक बार व्रज-परिक्रमा को भी गये। उनकी रचित-'व्रज चौरासी कोस वन परिक्रमा' नामक पुस्तक बहुत ही सुन्दर है।

रहा है। मेरे हृदय में आनन्द का स्रोत बहने लगा, आवश-सा होकर भगवान को साष्टांग प्रणाम किया, उठकर देखा तो भगवान अन्तर्हित हो गये थे। मेरे मन में वह आनन्दानुभूति कई दिनों तक रही। संसार को दुःखमय समझकर जो तीव्र वैराग्य हुआ वह उस आनन्दानुभूति से मिट गया। शयनकक्ष में उन्होंने दर्शन दिये इसका अर्थ है कि अभी संसार में रहना ही ठीक है। संसार त्याग की बलवती इच्छा भी तिरोहित हो गई। परमानन्द में दिन बीतने लगे। कुछ महीने बाद जब पूजा की छुट्टियों में श्री श्री गुरुदेव के पास गया तथा उन्हें यह बताया तो उन्होंने कहा–'यह दर्शन बहुत भाग्य से मिलता है, लेकिन यह दर्शन छाया दर्शन है, इसके परे और भी दर्शन है।'

अतएव नियमित साधन भजन करके समबुद्धि से सबकी सेवा करते हुए अपने गुरुदेव के इस कथन 'नव निर्मित आश्रम सम्पूर्ण होने पर वह स्वयं उनका काम छुड़वा कर उन्हें अपने पास बैठायेंगे' के फलीभूत होने की प्रतीक्षा में अपना समय बिताने लगे।

चतुर्थ अध्याय

वृन्दावन आश्रम-निर्माण

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के गृहस्थ-जीवन का प्रधान कार्य श्रीवृन्दावन में वृहत् मन्दिर और आश्रम का था। उनके गुरुदेव जहाँ रहते थे, वहाँ उन्होंने मन्दिर आश्रम बनवाया था, यह मैं पहले ही लिख चुका हूँ। बाद में उस युगलविग्रह ही की नये आश्रम में प्रतिष्ठा की गई। इस नये आश्रम का नाम निम्बार्क-आश्रम है। ब्रजवासी इसे 'काठिया बाबा का स्थान' तथा पुराने आश्रम को 'काठिया बाबा का आश्रम' कहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि दादा गुरुजी ने बहुत समय पहले हमारे आश्रम की जमीन को दिखाकर भविष्यवाणी की थी कि यहाँ एक वृहत् मन्दिर और आश्रम होगा और खूब साधु-सेवा होगी।

श्री श्री दादा गुरुजी महाराज का सन् १९०६ ई. में माघ मास में देहान्त हुआ, इससे कुछ समय पहले ही उनकी इच्छानुसार श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने यह जमीन खरीद ली थी तथा आश्रम निर्माण का कार्य भी आरम्भ कर दिया था। निर्माण शेष होने में अनेक वर्ष लगे। श्रीयुक्त मातादीन सुकुल नामक बाबाजी महाराज के एक इन्जीनियर बन्धु थे, उन्होंने ही इसका नक्शा बनाया था तथा उसी के अनुरूप काम आरम्भ किया। वह कलकत्ता से रुपये भेजते तथा उनके गुरुदेव 'प्लान' के अनुरूप काम करवाते। थोड़े समय ही बाद उनके गुरुदेव ने मानव-लीला सम्वरण कर ली। फिर उन्होंने एक स्थानीय ठेकेदार को यह काम दे दिया तथा उससे कहा-'देखो यह भगवान का काम है ईमानदारी से काम करना, यदि कुछ गड़बड़ी की तो तुम्हारा भला नहीं होगा।' उन्होंने उससे यह वायदा भी करवा लिया कि जब वे

किसी भी समय आवेंगे और उन्हें कुछ काम मन पसन्द नहीं लगेगा तो फिर से तोड़कर ठीक करना पड़ेगा। इस तरह उसे 'प्लान' दिखाकर और समझाकर वे कलकत्ता आ गये और रुपये भेजते रहे। आश्रम का काम धीरे-धीरे चलता गया।

हर वर्ष वह पूजा की छुट्टियों में आते तथा कहीं-कहीं संशोधन कराते। कॉन्ट्रेक्टर भी कभी-कभी कलकत्ता जाकर उनसे जरूरत की बात पूछता। हर वर्ष ही प्लान में कुछ न कुछ 'एडीशन' होता। उनके मन में जब जो प्रेरणा होती उसी के अनुरूप वह बनवाते चाहे उसके लिये पहला बना हुआ ही क्यों न तुड़वाया जावे। इस प्रकार प्रायः साठ हजार रुपये में विराट् आश्रम का निर्माण हुआ। उन्होने इस सम्बन्ध में हमें बताया—"बाबा ! उस समय सोचकर हतबुद्धि-सा हो जाता था कि यह क्या हो रहा है। भीतर से ऐसी आवेग पूर्ण प्रेरणा होती कि अपने को रोक नहीं पाता था तथा फिर वैसा ही करवाता। अब देखो यह भी छोटा लगता है। ठाकुरजी का काम उन्होंने स्वयं करवा लिया।"

इस तरह लगभग सात वर्ष में यह आश्रम निर्मित हुआ। श्रीवृन्दावन शहर के बाहरी हिस्से के रेलवे स्टेशन ले लेकर जयपुर के राजा के मन्दिर के पिछवाड़ तक आश्रम है। भीतर विशाल प्रांगण है, जिसके चारों ओर आश्रम के कमरे, बीच में जगमोहन और नाट्य मन्दिर युक्त उच्च मन्दिर है। मन्दिर और जगमोहन का फर्श मार्वल का है। ऊपर की मंजिल पर भी एक बड़ा कमरा व दो छोटे कमरे हैं।

१६ मई सन् १६१५ ई. को अक्षय तृतीयां की शुभ तिथि को इस मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई। इस उपलक्ष्य में विराट् आयोजन व महोत्सव हुआ, जिन लोगों ने उसे देखा उन्हें यह सदा याद रहेगा।

डाक्टर श्रीयुक्त विपिनचन्द्र चक्रवर्ती ने इस विषय में लिखा- "कुछ दिन पहले ही मन्दिर सम्पूर्ण हुआ था, मन्दिर प्रतिष्ठा के लिये ताराकिशोर बाबू ने सबको निमन्त्रित किया। उन्होंने अपने घर (गाँव) के लोगों को बुलाया, गोस्वामी प्रभु व काठिया बाबा के समस्त शिष्यों को निमन्त्रित किया। इसके अलावा उन्होंने एक आश्चर्यजनक निमन्त्रण भी दिया जो कि शायद ही कोई करता हो। कालीघाट जाकर माँ काली को निमन्त्रित किया, पुरी जाकर जगन्नाथदेव को निमन्त्रण दिया। वृन्दावन के रास्ते में गया जाकर गदाधर को तथा काशी जाकर विश्वेश्वर को निमन्त्रित किया।"

एक बात श्रीयुक्त आशुतोष भट्टाचार्य ने भी बताई '१९१५ ई. में वैशाख की अक्षय तृतीया को वृन्दावन में मन्दिर की प्रतिष्ठा होगी यह उन्होंने पहले ही निश्चय कर लिया था, जब कि उनके पास यथेष्ट रुपये भी न थे। प्रतिष्ठा के खर्चे के साथ ही साथ ठेकेदार का भी काफी देना था। जैसे-जैसे आश्रम प्रतिष्ठा का समय निकट आता गया वैसे ही भक्तवत्सल भगवान रुपयों का प्रबन्ध करते गये। कालीकृष्ण बाबू के मामले में तो उनको चार सौ रुपये रोज मिलते थे।'

इस उत्सव के लिये बहुतों को निमन्त्रण-पत्र भेजे गये जो कि मैंने व कुछ दूसरों ने लिखे थे। उन पत्रों में यह भी लिखा था कि सबको अलग-अलग पत्र लिखने मुश्किल हैं, इस कारण तुम वहाँ अन्य लोगों को भी बता देना, यदि वे लोग भी आ सकें तो बहुत आनन्द होगा।

उत्सव में जाने के लिये जो आत्मीय स्वजन आये, वह सब लोग कलकत्ते में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के यहाँ इकट्ठे हो गए। सबके जाने का खर्च उन्होंने ही वहन किया। यात्रा का सब प्रबन्ध भी

बहुत ही सुन्दर रूप से किया गया। खाने-पीने की भी पूर्ण सुविधा का ध्यान रखा गया। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज स्वयं वृन्दावन पहले पहुँचे तथा यात्रा का भार जिम्मेदार आदमी पर सौंप गये। किसी ने बताया कि जिन लोगों को पका काशीफल लाने को लिखा था, वह लोग उसे लाए तथा थैले में भरकर वृन्दावन ले गये। बाबाजी महाराज के एक गुरुभाई श्रीयुक्त जानकी सामन्त धनी व्यक्ति थे, उन्होंने चार-पाँच सौ रुपये के नये छोटे सिक्के दान करने को दिये थे।

आशुबाबू ने बताया–"मन्दिर के सामने के रास्ते पर जयपुर के राजा का जो मन्दिर है, उसमें सबके ठहरने का प्रबन्ध किया गया। इस मन्दिर के दालान खूब बड़े-बड़े हैं और उनमें बहुत से कमरे हैं तथा तब तक मन्दिर की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी। यहीं पर बहुत लोग ठहरे। इन सबके लिये पानी वगैरह लाने के लिए बहुत से मजदूर थे। सारी व्यवस्था बहुत ही सुन्दर तथा सुविधाजनक थी। जेठ के महीने में वृन्दावन में खूब गरमी पड़ती है। वहाँ 'लू' (गरम हवा) जो कभी कभी बहुत अनिष्टकारी होती है भी चलती है। दस बजे के बाद बाहर जाना बहुत मुश्किल होता है। अतः जयपुर के मन्दिर से अपने आश्रम तक जाने के लिये पैरों में पहनने के लिये कपड़े के जूतों की भी व्यवस्था थी। रोज बैलगाड़ी में तरकारी, बरफ, चीनी, मैदा तथा आटा वगैरह आता था।"

सोमवार को सुबह पुराने स्थान में कीर्तन✤ आरम्भ हुआ। फिर श्री श्री राधाबिहारीजी और श्री श्री राधारानीजी का युगल विग्रह

✤ श्रीमत् विजयकृष्ण गोस्वामी के भक्त शिष्य गायक श्रीयुक्त रेवती सैन ने व्रजविदेही महन्त श्री १०८ स्वामी रामदास काठिया बाबा की इह लीला वर्णन करते हुए एक सुन्दर गान की रचना की थी जो इस दिन उन्होंने गाया।

एवं श्री श्रीकाठिया बाबजी महाराज का तैलचित्र लेकर महासमारोह के साथ नगर भ्रमण को गये।* इधर पत्र-पुष्पों से नये आश्रम को सजाया, वेदी बनाकर उसको भी सुसज्जित किया। चार प्रसिद्ध विद्वान पण्डितों ने यज्ञारम्भ किया। चारों ओर आनन्द का साम्राज्य था। 'विपिन बाबू ने बताया कि इस पवित्र महत् कार्य में थोड़ा भी योगदान देकर हम सब लोग धन्य हो गये।' ब्रजवासी, साधु-सन्त और गृहस्थ सभी इस भावना से प्रेरित होकर काम कर रहे थे।

साधुओं का काम करने का ढंग आश्चर्यजनक था। हजारों के लिये रसोई बनाना उनका ही काम था, सब काम बहुत ही शान्ति तथा विधिवत् कर रहे थे। प्रचुर खाद्य सामग्री तैयार की जा रही थी। यह सब देखकर मन में श्रद्धा और विस्मय होता था। नगर यात्रा से लौटने के बाद अभिषेक का काम आरम्भ हुआ। युगल-विग्रह के अभिषेक के लिये बहुत से तीर्थो का जल पहले ही से संग्रह कर लिया गया था। श्री श्री दादागुरुजी की मूर्ति प्रतिष्ठित करके उनके सम्मुख युगल-विग्रह का नाना तीर्थोदक से अभिषेक किया गया, फिर श्री श्री गरुड़देव तथा श्री श्री महावीरजी का भी अभिषेक कर उन्हें यथा स्थान स्थापित किया गया। तीन दिन में यह विराट् अनुष्ठान समाप्त हुआ।

असंख्य लोग प्रसाद पाकर परितृप्त हुए। साधु-सेवा, दरिद्र-सेवा, कंगालों को दान आदि सब कुछ किया गया। कलकत्ता से जो पैसे आये थे, वह सब कंगालों में बाँटे गये। ब्रजवासी धन्य-धन्य करने लगे। नये आश्रम ही में सबने प्रसाद ग्रहण किया। उत्सव के बाद भी लड्डू,

* श्री श्री काठियाबाबाजी महाराज की इच्छानुसार ये मूर्तियाँ ही नये आश्रम में प्रतिष्ठित हुईं।

कचौड़ी, पूरी, मिठाई वगैरह काफी सामान बचा। अतः वह भी बहुतों को चलते समय साथ में दे दिया गया। बंग देश से जो लोग आये थे, वह लोग भी लौटते समय यथेष्ट परिमाण में प्रसाद अपने साथ ले गये।

आश्रम-प्रतिष्ठा के बाद मन प्राण वहीं छोड़कर बाबाजी महाराज जल्दी ही वहाँ स्थायी-भाव से रहने की आकांक्षा लेकर कलकत्ते लौटे। उस समय ठेकेदार को तीस हजार रुपया देना बाकी था।✤

✤ प्रतिष्ठा का खर्च तो अच्छी तरह हो गया केवल ठेकेदार का ही इतना देना शेष रह गया था।

पंचम अध्याय

वानप्रस्थ

संसार त्यागकर श्रीवृन्दावन में जाकर भजन-साधन करने का संकल्प तो उनके मन में बहुत दिनों से था। उनके गुरुदेव के जीवन-काल में उन्होंने एक दो बार उनको भी अपनी अभिलाषा बताई थी, लेकिन उन्होंने यह कहकर कि अभी समय नहीं हुआ है, अथवा अभी संसार में उन्हें बहुत कुछ करना है उन्हें इस विचार से निवृत्त कर दिया था। इसके बहुत पहले भी जब पण्डितप्रवर श्रीयुक्त पंचानन तर्करत्न से उनकी भेंट हुई थी, उस समय ही तर्करत्नजी ने उन्हें देखकर तथा बातें करके अनुभव किया था कि उनके हृदय में संसार त्याग की भावना उस समय भी प्रबल थी। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं दर्शन देकर संसार-त्याग की प्रबल इच्छा को दबाया, यह तो उन्होंने स्वयं बताया जो कि पूर्व अध्याय में वर्णन किया है।

श्रीयुक्त शरच्चन्द्र खां ने १७४२ बंगाब्द के फाल्गुन मास के 'प्रवर्त्तक' में लिखा–"तीस हजार का कर्जा सिर पर लेकर वह मन्दिर की प्रतिष्ठा कर कलकत्ते लौटे। वे सदैव भगवान से प्रार्थना करते रहते–'हे प्रभु ! जब तक मैं ऋण-शोध नहीं कर पाऊँगा, तब तक तुम्हारी सेवा में भी सम्पूर्ण भाव से आत्मनियोग नहीं कर सकता, मुझे और कितने दिन वकालत के बन्धन में रखोगे?' हम लोगों से मिलते तो भी यही कहते–'भगवान कब मुझे इस संसार से छुट्टी देंगे। यह तीस हजार रुपया जब तक शोध नहीं कर पाऊँगा तब तक मैं वृन्दावनवासी नहीं हो सकता।' x x x"

इन सब बातों द्वारा उस समय उनके मन की अवस्था का परिचय प्राप्त हो सकता है। उनके गुरुदेव ने एक बार उनसे कहा था–'नया आश्रम बनने पर वह वहाँ रहेंगे तथा उन्हें भी संसार से छुड़ाकर अपने पास रखेंगे। उन्होंने इस कथन पर दृढ़ विश्वास किया तथा उस दिन की आतुरता से प्रतीक्षा करने लगे। वह दिन भी आया लेकिन ऋण रहने से उन्हें लौटकर आना पड़ा। 'ऋण सब चुका देना चाहिये' इसके वह हमेशा ही समर्थक थे। गुरु कृपा से शीघ्र ही सब ऋण शोध हो गया। वृन्दावन के ठेकेदार का ही ऋण नहीं बल्कि सब तरह का ऋण शोध करके, सब प्रकार से बन्धन उन्हें नहीं छोड़ना पड़ा बल्कि बन्धन स्वयं टूट गये, संसार ने ही उन्हें छोड़ दिया। एकदम मुक्त करके ही भगवान ने उन्हें ग्रहण किया, वह सब मैं धीरे-धीरे वर्णन करूँगा।

वास्तव में किसी के संसार त्याग करने से संसार उसका त्याग नहीं करता है। संसार-आसक्ति पूर्णरूप से नष्ट होने से पहले संसार-कर्म त्याग करके वन में अथवा किसी और स्थान पर जाकर समाधियोग का प्रयास करने ही से सफलता नहीं मिलती, चित्त में सांसारिकता रहने से साधक भ्रष्ट हो जाता है, किसी-किसी को तो फिर से संसार में लौटना पड़ता है। सांसारिक आसक्ति शून्य होने पर ऐसा नहीं होता, साधक सहज ही समाधि-योग लाभ करता है। भोग्य विषय और उसके कर्मों में सम्पूर्ण आसक्ति शून्यता से ही यह योगारूढ़ अवस्था लाभ होती है। गीता के षष्ठ अध्याय के तीसरे श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट भाषा में इसका आदेश दिया है।

संसार का कर्म त्यागकर एकान्त में ध्यानाभ्यास रत होने के उपयुक्त समय के सम्बन्ध में यह मुख्य बात अवश्य है, किन्तु साथ में

एक बात और है। किसी भी मनुष्य के चित्त को हम साधारणतः बहुत ही छोटी वस्तु समझते हैं, किन्तु वास्तव में वह उतनी क्षुद्र वस्तु नहीं है। विश्व मानव के चित्त के सहित या यों कहें कि विश्व के साथ 'माला के सूत्र' की भाँति उसका योग है जो नित्य और अविनाशी है। अतएव यदि साधक का चित्त आसक्ति शून्य हो गया है, लेकिन उसके प्रति किसी की आसक्ति है, उससे कुछ मिलेगा ऐसी आशा है तो इन सब कारणोंवश वह उनको खींचता रहेगा, जिसका कि फल साधक के चित्त पर अवश्य पड़ेगा। इस कारण किसी साधक को सम्पूर्ण आसक्ति शून्य होने के लिये यह भी आवश्यक है कि बाहरवालों की आसक्ति के कारणों का भी अवसान हो तभी सच्चे अर्थों में संसार त्याग का अनुकूल समय और अवस्था समझी जायेगी। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के लिये यही हुआ।

इसके बाद सात वर्ष पहले सन् १९०८ में गाँव की पैतृक सम्पत्ति में जो उनका अंश था, वह उन्होंने अपने वैमात्रेय भाइयों में बराबर बाँट दिया था। उनके इस काम से यह कहा जा सकता है कि उन्हें विषय-वासना के प्रति कोई आसक्ति नहीं थीं। यही क्यों, अनेक सांसारिक जीवन के विषय में जो कुछ हम जानते हैं, उससे भी अच्छी तरह सारार्थ निकलता है। ऋण परिशोध के लिये वह संसार के काम कर रहे थे।

इन दिनों पावना, वारिशाल आदि अनेक जगह उन्हें बड़े-बड़े मुकदमों के लिये जाना पड़ा। इन सब मुकदमों में उन्हें हजारों रुपये मिले। दस हजार रुपये महीना से ज्यादा ही उन दिनों वह उपार्जन कर रहे थे। इसी वर्ष उनके गाँव में अकाल पड़ा। अतः बहुत से लोगों ने उनसे

सहायता के लिये प्रार्थना की। उन्होंने भी जितना माँगा उतना ही दिया। उनके दान की यह विशेषता हमने बहुत बार लक्ष्य की। किसी भी अभावग्रस्त को वह इतना दान देते थे कि उसका अभाव-मोचन हो जाय।

जेठ से भादों (चार महीने) तक उनका इतना उपार्जन हुआ कि–गाँव के दुर्भिक्ष-पीड़ितों को देने के बाद भी श्रीवृन्दावन आश्रम-निर्माण के लिये जो ठेकेदार का सब देना बाकी था, वह सब चुक गया। किसी विशेष प्रसंग में हमने उनसे यही बात सुनी थी। ईश्वर के लिये खर्च करने पर कोई विपदग्रस्त नहीं होता है, उनकी सेवा के लिये कुछ देने पर श्रीभगवान उसको खूब देते हैं, वह यह उपदेश भी बहुतों को देते थे। वह कहते–"बाबा, ठाकुर किसी के ऋणी नहीं रहते।" उदाहरणार्थ अपने जीवन की यह घटना बताते थे कि वकालत के साधारण उपार्जन से घर का सब खर्चा चलाकर ऋण-परिशोध करना कितना मुश्किल था, लेकिन वह किस प्रकार चार महीने ही में सम्भव हो गया।

अन्त में पूजा की छुट्टियों से पहले (सन् १९१५) अगस्त महीने में जिस दिन वह हाईकोर्ट छोड़कर आये, उस दिन का वह दृश्य भुलाया नहीं जा सकता। बार लाइब्रेरी में उनके समव्यावसायिकों पर उनका जो प्रभाव था तथा उनके आदर्श चरित्र के कारण सब उन पर जो श्रद्धा करते व स्नेह देते थे वह पहले बता चुका हूँ। कितने ही नये वकीलों को तो उन्होंने काम सिखाया, उनका सम्बन्ध शिक्षक व छात्र का था तथा वह उन्हें समय-समय पर सब प्रकार की सहायता देते थे यह भी पहले लिखा जा चुका है। यह समस्त स्नेह, श्रद्धा और प्रीति का बन्धन तोड़कर जिस दिन वह उन लोगों से चिरविदा लेने गये तब

वहाँ जो श्रद्धापूर्ण, अश्रुपूर्ण वातावरण हुआ उसका वर्णन करना दुष्कर है। एक जन जो वहाँ पर उपस्थित थे।✤ उन्होंने लिखा–"अगस्त मास १६१५ ई. में जिस दिन उन्होंने हाईकोर्ट का परित्याग किया, उस दिन की घटना मैं कभी नहीं भूल सकता। वह एक मुकदमा समाप्त करके लाइब्रेरी में आकर बैठे, हमने सुना कि वह अब और यहाँ नहीं आवेंगे, संसार त्यागकर श्रीवृन्दावन जायेंगे। हम लोग सब आकर उनको अभिवादन करके और विदा ग्रहण करने लगे। इसी समय सर रासबिहारी घोष धीरे-धीरे उनके पास आकर उनकी चरण-धूलि लेने को झुके, इस पर उन्होंने आपत्ति की तथा कहा–"अरे आप क्या कर रहे हैं, आप तो मुझसे बड़े हैं।" सर रासबिहारी ने उत्तर दिया–"उमर में बड़े होने से क्या होता है। आप मुझसे कितने बड़े हैं वह मैं बता नही सकता, आप मुझे चरण-धूलि दें।"

उन्होंने कार्तिक मास के शेष भाग में गृहस्थाश्रम से चिरविदा लेकर वृन्दावन की यात्रा की। धन-सम्पत्ति सब कुछ बाँट दीं। यहाँ तक कि वृन्दावन जाने का तीसरे दरजे का रेल का किराया भी नहीं बचा। घर का सामान, पुस्तक, आलमारी वगैरह मूल्यवान चीजें तो पहले ही बेच दी थीं।✤ बाकी जो बचा था वह बन्धु-बान्धवों तथा आश्रितों में वितरित कर दिया। सरस्वती स्कूल के भूतपूर्व मुख्य पण्डित पूजनीय

✤ हाईकोर्ट के भूतपूर्व प्रधान विचारपति श्रीयुक्त सर मन्मथनाथ मुखोपाध्याय जी उन दिनों वहाँ वकील थे।

✤ "संसार की समस्त सामग्री, पुस्तक, असबाब वगैरह बेचकर जो रुपया मिला वह सब आश्रितों को दान करके एकदम निःसम्बल होकर सस्त्रीक वृन्दावन गये" ('सुदर्शन' पत्रिका से उद्धृत सर मन्मथनाथ मुखोपाध्याय द्वारा लिखित)

श्रीयुक्त जानकीनाथजी उस स्मरणीय दिन वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने बताया उस दिन मैंने फिर से भगवान बुद्धदेव की प्रव्रज्या देखी। घर, गाड़ी वगैरह सब कुछ था। बन्धु-बान्धवों की जो जिनकी इच्छा थी वही उन्हें दिया और फिर सबसे कहा–"जो जिसको चाहिये वह ले जाओ।" उनके वस्त्रांचल में किसी ने कुछ नोट बाँध दिये थे जो कि उन्होंने देखे भी नहीं।

निष्किचन अवस्था में श्रीवृन्दावन में वास करेंगे तथा भिक्षालब्ध अन्न से श्री श्रीठाकुरजी की सेवा करके तथा गुरु-स्थान में रहकर भजन करके अपना जीवन बितायेंगे यह सोचकर वृन्दावन की यात्रा की। उनकी आदर्श सहधर्मिणी श्री श्रीमाता ठकुरानी भी उनके साथ चलीं। प्रस्थान के समय उनके ज्येष्ठ गुरुभाई श्रीयुक्त अभयनारायण बाबू ने उनसे पूछा कि श्रीठाकुरजी की सेवा-पूजा ठीक से चले, ऐसी व्यवस्था कर ली है? श्रीयुक्त बाबाजी महाराज नें उत्तर दिया–"दादा ! ऐसा आशीर्वाद दीजिये जो भगवान को सन्दूकके अन्दर बन्द न करना पड़े।"

षष्ठ अध्याय

श्रीवृन्दावनवास, निरवच्छिन्न तीव्र साधना और सिद्धि

१६ नवम्बर १६१५ ई. को श्रीयुक्त बाबाजी महाराज गृह त्यागकर श्रीवृन्दावन आश्रम में पहुँचे तथा सपत्नीक वहीं रहने लगे। अपने हाथों ठाकुरजी की सेवा-पूजा करते तथा अन्य सेवा कार्य भी करते। श्रीयुक्ता माता ठकुरानी सच्ची सहधमिर्णी के रूप में उनके सब सेवा-कार्यों मे हाथ बटातीं, आश्रम साफ करतीं, रसोई करतीं, यथासाध्य भजन करतीं। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के पूर्ण संन्यास लाभ करने पर जब श्रीमाता ठकुरानी काशी चली गईं तो आश्रम में झाडू लगाना, खाना बनाना, श्री श्री ठाकुरजी की पूजा करना, कभी कोई रोगी हुआ तो उसकी सेवा करना आदि सब काम उन्होंने काफी समय तक अकेले ही किये और फिर रात को भजन करते थे। निद्रा करते ही न थे।

हम लोगों ने जब उनका चरणाश्रय लाभ किया, तब उन्हें किसी प्रकार का साधन करते हुए नहीं देखा, उनका साधन-भजन बहुत पहले ही समाप्त हो गया था। १६१६ ई. में तथा उसके बाद में उनकी साधना व तपस्या को जिसने प्रत्यक्ष देखा हो ऐसा मनुष्य कोई अब जीवित नहीं है। इस कारण उनके जीवन के इस अंश का विशेष विवरण नहीं मिल सका है, यह अंश गुप्त ही रह गया है। श्रीयुक्त राघवदास नामक उनके एक ब्रजवासी गुरुभाई हैं, जो अभी जीवित हैं। वास्तव में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के साधन-सम्बन्धी कुछ बातें हमें इनसे मिलीं अथवा कथा-प्रसंग में कभी उनके निज मुख से कुछ सुना, वही हमारा सम्बल है। वह अपने साधन के सम्बन्ध में कुछ विशेष नहीं बताते थे, अधिकांश समय नीरव हो जाते थे। अभ्यासानुसार कुछ

समय नीरव रहकर कहते–"बाबा, हमारा कुछ साधन भजन नहीं था, गुरु कृपा से ही सबकुछ हो गया।" वह जब ऐसा कहते उस समय उनका स्वर व भावभंगिमा ऐसी होती कि हम लोगों का हृदय भी द्रवीभूत हो जाता। आज भी उनकी वह मूर्ति याद करके नेत्रों मे जल भर आता है।

वह हमेशा अपना लक्ष्य अपने गुरुदेव व प्राचीन ऋषियों को रख़ते थे। हमसे कहते–'तपस्या करके किस प्रकार भगवान को प्राप्त करते हैं, इसके लिए हमारे बाबा को देखो।' पुराणों में भी लिखा है कि कितने वर्षों की कठोर तपस्या करने के बाद ऋषियों को भगवद्दर्शन होते थे। उनके गुरुदेव का जीवन-चरित्र जो उन्होंने लिखा है, उसमें भी उन्होंने बताया है कि बचपन से संसार से आसक्ति शून्य होकर एक क्षण भी वृथा न गँवाते हुए कितने वर्षों के एकनिष्ठ साधन के बाद भगवान की प्राप्ति हुई। साधन की कथा होने पर यही उनका लक्ष्य रहता था। उनका विराट् त्याग, कठोर साधन हम लोगों के सम्मुख आदर्श था, किन्तु उनकी धारणा यही थी।

श्रीयुक्त राघवदासजी ने बताया–'महाराज के वृन्दावन आने पर मैंने उन्हें लेटते नहीं देखा। प्रायः समस्त समय ही ध्यान लगाते थे। एक वर्ष तक उन्होंने केवल तीन छटाँक जौ के आटे की रोटी, वह भी केवल एक बार ली। दाल, तरकारी यहाँ तक कि नमक भी नहीं लिया। इन दिनों वह मौनी भी रहे। आहार का यह नियम छोड़ने पर भी वह बहुत ही सामान्य आहार करते थे।'

इस समय वह इतनी थोड़ी देर को और वह भी मध्य रात्रि को सोते थे कि किसी के देखने की सम्भावना ही नहीं होती थी। इस सम्बन्ध में असली बात हमने उनसे ही सुनी। अतिरिक्त वायु-प्रधान होने से गृहस्थाश्रम ही में उन्हें नींद नहीं आती थी। यह बात उन्होंने

अपने गुरुदेव की जीवनी ग्रन्थ में भी लिखी है। यहाँ आकर भी वही अवस्था रही। काफी रात तक भजन करते थे। फिर कुछ देर शयन करते और शेष रात्रि ही में फिर उठ जाते थे। एक दिन प्रातःकाल में जब वे मन्दिर गये तो देखा कि श्री श्री ठाकुरजी के अलंकार चोरी हो गये हैं। इस घटना से उन्होंने सोचा–'मैं भजन छोड़कर नियमित रूप से जो शयन करता हूँ, वह शायद श्री श्री गुरुदेव नहीं चाहते हैं। निद्रा तो होती ही नहीं है, व्यर्थ लेटकर क्यों समय नष्ट किया जाये।' इस दिन से वह सारी रात जागकर भजन करते थे। शेष रात्रि पर मंगला आरती के लिए पुजारी को जगाकर वह थोड़ी देर विश्राम कर लेते थे।

इस समय के आहार सम्बन्धी नियम के विषय में हमने उनसे ही सुना। श्रीभगवत् प्रसाद के माहात्म्य के सम्बन्ध में बोलते हुए उन्होंने एक दिन कहा–"बाबा, भगवान अपनी कृपा से भक्तजन द्वारा निवेदित भोग को अमृतमय बना देते हैं। एक बार मैंने संकल्प किया कि मैं केवल 'महाप्रसाद'✤ ही लूँगा। अतः जिस दिन से मैंने अन्न प्रसाद ग्रहण करना शुरु किया उस दिन से निवेदित अन्न का अमृतमय स्वाद हो गया।' थोड़ी देर चुप रहकर वे गद्‌गद स्वर में बोले–'बाबा ! उन्होंने कभी भी विस्वाद्ु वस्तु मुझे नहीं खाने दी।'

इसके अलावा इन दिनों की दो एक बातें और भी हमें मालूम हैं। वे दिन में अधिकांश समय भजन करते थे, ध्यान, जप करके जब शरीर क्लान्त लगता तो उपनिषद्, श्रीमद्‌भागवत आदि ग्रन्थ पढ़ते थे। श्री श्री राधाबिहारीजी की नियमित सेवा-पूजा करते थे। बहुत दिनों तो सेवा-पूजा से लेकर रसोई करना, बर्तन माँजना आदि सब काम ही उन्होंने किये। आश्रम के सब कामों में लगे रहने पर कभी शायद क्रोध

✤ अर्थात् अन्न प्रसाद।

आ जाये, इस कारण मौन अवलम्बन किया। उनके साधन जीवन के विवरण के साथ गीता के इन निम्नलिखित श्लोकों का सुन्दर साम्य है-

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।।
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्काय - मानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थात् विशुद्ध बुद्धियुक्त पुरुष धारणा के द्वारा चित्त को निर्मल कर शब्दादि विषयों का ध्यान परित्याग करके, किसी के ऊपर अनुराग और द्वेष परिहार पूर्वक, निर्जन स्थानवासी और अल्पाहारी होकर वाक्य, शरीर और मन को संयत करते हुए सदा ध्यान में स्थित होकर और वैराग्य को आश्रय कर, अहंकार, बल, अभिमान, काम, क्रोध और परिग्रह परित्याग-पूर्वक 'मेरा' तुम्हारा आदि भेद-भाव वर्जन करके शान्त चित्त होकर ब्रह्मभाव में स्थित होने की योग्यता लाभ करते हैं।

(अष्टादश अध्याय ५१, ५२, ५३)

इस सम्बन्ध में एक और भेद है। साधना और तपस्या का बाहरी रूप होने पर भी यह अन्तर की वस्तु है। साधारण जनों के मन की थाह लेना ही कठिन होता है, चेष्टा करने पर थोड़ा आभास मात्र मिल जाता है। अतः महापुरुषों के अर्न्तर के विषय में जानना तो बहुत ही कठिन है। हमारी अपेक्षा उनकी तो बहुत ही उच्चतम अवस्था होती है तथा साधना के फलस्वरूप उत्तरोत्तर उच्च होती जाती है लेकिन फिर भी इसी भूमि पर निवास करते हैं, यह सब साधारण बुद्धि की समझ

के परे है। इन सब अवस्थाओं का शास्त्रों में उल्लेख अवश्य है, लेकिन इन वाह्य लक्षणों से इन महापुरुष साधकों की आभ्यन्तरिक स्थिति जानना हम लोगों के लिए सम्भव नहीं है।

श्रीयुक्त दादा गुरुजी महाराज (परमाराध्य श्री १०८ स्वामी रामदास काठियाबाबाज़ी महाराज) कहते थे–'हाथी का दो दाँत रहता है, एक बाहर दिखाने का दूसरा भीतर अपने खाने का, भीतर का दाँत दूसरों को मालूम नहीं पड़ता है। सन्तन की भी ऐसी दो वृत्तियाँ रहती हैं, एक बाहर दिखाने की दूसरी अपने भीतर की, उसकी खबर किसी को नहीं मिलती है।' उन्होंने यह बात सिद्ध महापुरुषों को लक्ष्य करके कहीं थी, लेकिन यह श्रेष्ठ साधकों पर भी समान भाव से लागू होती है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का भी साधक जीवन भी इसी तरह अज्ञात रह गया।

फिर भी इस सम्बन्ध में हम सम्पूर्ण रूप से निराश नहीं हुए। इस समय का पूर्ण इतिहास न मिलने पर भी कुछ सूत्र हमारे हाथ लगे, वह उनकी लिखी हुई एक जीर्ण पुस्तिका है। यह पुस्तिका हमने उनके जीवनकाल में भी देखी थी। वह सबको इसे देखने के लिए नहीं देते थे, किसी-किसी को ही उन्होंने प्रसन्न मन देखने को दी। सन् १९२२ ई. में जब बाबाजी महाराज श्रीयुक्त शारदा बाबू के यहाँ अवस्थान कर रहे थे, तो एक दिन हमारे एक गुरुभाई इसके पृष्ठ उलट-पुलट कर रहे थे, यह देखकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने उनसे कहा–'अरे ! यह क्या कर रहा है?' उन्होंने कहा–'बाबा ! मेरे काम के इसमें कुछ उपदेश हैं, उन्हें लिख रहा हूँ।' इस पर बाबाजी महाराज विशेष प्रसन्न होकर बोले–'अच्छा ! अच्छा !!'

यह पुस्तिका उनकी डायरी नहीं है, क्योंकि इसमें धारावाहिक रूप से विवरण नहीं है। सन् १९१६ के आषाढ़ मास से आरम्भ करके लगभग दो वर्ष तक का उन्होंने बीच-बीच में कुछ-कुछ लिखा है। ध्यान से देखने पर प्रधानतः इसमें दो प्रकार की बातें दिखाई देती हैं। कहीं तो शास्त्र व गुरु वाक्य के वे अमूल्य उपदेश लिखे हुए हैं, जो कि उन्होंने अनन्यचित्त होकर उन्हें अपने जीवन में पूरी तरह उतारने की कोशिश की तथा उसके लिए अपने गुरुदेव के चरणों में भिक्षा माँगी और उनकी प्रार्थना की। कहीं पर विशेष वांछित अवस्था प्राप्त होने पर विह्वल भाव से श्रीगुरु-कृपा के लिए कृतज्ञता ज्ञापन की।

मैं इस पुस्तक का सारांश जनसाधारण के सम्मुख प्रकाशित कर रहा हूँ। फाल्गुन की नवमी की तिथि में दो श्लोक हमेशा याद रखने के लिए लिखे हैं, यह उपनिषद के श्लोक साधन-पथ में प्रकाश स्तम्भ की भाँति हैं। वह मैं यथा स्थान उद्धृत करूँगा। इसके बाद लिखा है–"X X X तमेवैकं जानथ आत्मानमन्शा वाचो विमुचथामृतस्यैष सेतुः।। X X X अन्य कोई बात नहीं, अन्य कोई लक्ष्य नहीं, केवल एक लक्ष्य, केवल एक कार्य, यही एकमात्र सेतु है।" इसकें नीचे लाइन उनकी स्वयं की करी हुई है।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि साधारण साधक थोड़ा कुछ लाभ करने पर सन्तुष्ट हो जाता है तथा साधन का वेग शिथिल हो जाता है, लेकिन जिसका लक्ष्य चरम की ओर ही उसके लिए तो यह असम्भव है। फाल्गुन की नवमी को अपने को सतर्क करते हुए लिखा–'सावधान! सावधान !! सावधान !!! X X X साधन में तुष्टि नहीं आये यह योग प्रतिबन्धक है। सांख्य प्रवचन सूत्र के तृतीय अध्याय के ३८वें से ४५

वें सूत्र में विशेष रूप से वर्णित है। आलस्य ही सब प्रकार की तुष्टि का मूल कारण है।'

इस व्याकुल अतिधारा के साथ ही साथ एक विपरीत मुखी धारा भी बहती दीखती है। जो उन्हें व्याकुलता में आश्वस्त करके साधन में सुप्रतिष्ठित रखती है। अपने गुरुदेव के ये वरदान 'तुम्हें परमात्मा-दर्शन अवश्य होगा', 'भगवान सर्वदा ही तुम्हारे साथ हैं' हमेशा स्मरण रखते तथा उसके लिए दृढ़ प्रयत्न करते थे।

माघ की २६ वीं तिथि को उन्होंने लिखा—'कल माघी पूर्णिमा थी। मुझे अनुभव हो रहा है कि इस बीच अवस्था सकल आती है और जाती है, स्थायी नहीं हो रही है। सब कुछ तुम्हारे हाथ में है, जैसा रख रहे हो, वैसा ही रह रहा हूँ। असन्तोष पोषण करने की इच्छा नहीं हो रही है। (असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः) यथा—योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।" यह सदा स्मरण रहता है।' - (गीता २/४८)

एक ओर तो उनकी व्याकुलता उनकी साधना की गति को तीव्र से तीव्रतम करती जाती दूसरी ओर उनके हृदय में गुरुवाक्य के प्रति असीम आस्था होने के कारण उन्हें असन्तोष और नैराश्य जनित अवसाद नहीं होता था। इन दो मनोवृत्तियों से जड़ित उनका यह दृढ़ विश्वास कि मेरा कुछ नहीं है, मैं जो साधन कर रहा हूँ, वह भी कुछ नहीं है बस केवल गुरुकृपा ही एकमात्र सम्बल है, वही उनके साधन पथ का पाथेय था। यही कारण है कि जब-जब कुछ नूतन अवस्था का प्रकाश हुआ, तभी उनका चित्त श्रीगुरुदेव के प्रति असीम कृतज्ञता से अभिभूत हो गया। एक जगह लिखा—

"X X X धन्य गुरुदेव ! तुम्हारी कृपा से ही नित्य नूतन पथ प्रकाशित हो रहे हैं। अहा ! आज श्रीभगवत् मूर्ति में भी देखा कि यही समस्त अवस्थायें मूर्तिमान होकर प्रकाशित हो रही हैं। धन्य प्रियाजी ! तुमने भी यह तथ्य आज प्रकाशित किया। धन्य ! धन्य !! धन्य !!!

(१) ऐसा लगता है कि १९१६ ई. (१३२३ बंगाब्द) माघ में कोई विशेष अवस्थाा प्रकाशित हुई थी एवं उसके लिए उन्होंने श्रीगुरुदेव को अशेष कृतज्ञता ज्ञापन की। यह अंश यथा-स्थान उद्धृत किया जायगा। २६ माघ की तिथि (बंगाब्द) को श्रीगुरुदेव के चरणों में प्रार्थना की-

"हे महाराज ! तुम्हीं मेरे सहायक हो, मुझ में तो कोई सामर्थ्य नहीं है। समय आने पर हृदय-ग्रन्थि छिन्न होगी यह कहा था, अतः क्या अभी भी उसका समय नहीं हुआ? इतने दिनों से तो मैं इसी आशा में रहा हूँ।"

इस पुस्तिका के सम्बन्ध में पाठकों की विवेचना के लिए जो कुछ मैंने अभी बताया है, वह सब उनके निम्नांकित स्वलिखित विषय का पाठ करने पर सहज ही में बोधगम्य होगा।

२६ ज्येष्ठ (बंगाब्द)

पथ

(१) **श्रद्धा** - गुरु वाक्य में विश्वास, फिर उससे सन्तोष जैसे-'तुम्हें निश्चय ही परमात्मा दर्शन होगा, भगवान सदा छाया की भाँति तुम्हारे साथ हैं।' इत्यादि

(२) **वीर्य** - इसी श्रद्धा (विश्वास और सन्तोष) से निश्चय ही वीर्य (अनलस भाव और अभीष्ट सिद्धि के लिए अनवरत यत्न) उपस्थित होगा।

(३) **स्मृति** - श्रद्धा और अनवरत यत्न से स्मृति (अभीष्ट स्वरूप की स्मृति) उत्पन्न होती है। यदि ऐसा नहीं हो (भजन छोड़कर और विषयों में मन देने से ऐसा होता है) तो यह समझना चाहिए कि श्रद्धा और वीर्य में त्रुटि है।

(४) **समाधि** - इस स्मृति के द्वारा चित्त की एक विषयिनी वृत्ति प्रतिष्ठित होने पर समाधि होती है, यदि ऐसा नहीं हो तो इसका अर्थ है कि पूर्वोक्त तीनों में कहीं न कहीं त्रुटि है।

(५) **प्रज्ञा** - समाधि से प्रज्ञा के चारों ओर ज्ञानालोक प्रकाशित होगा, यदि नहीं होता है तो समाधि समाधि नहीं, केवल मूर्च्छा मात्र है।

(६) **असम्प्रज्ञात** - समाधिजात-प्रज्ञा प्रतिष्ठित होने पर एकदम शून्यस्थिति-चित्त का लय निरवलम्ब शून्य-भाव प्राप्त होगा। यही गीता की 'न किंचिदपि चिन्तयेत्' अवस्था है। भागवत के ग्यारहवें स्कन्धोक्त का ध्यान भी यही है।

(७) **भगवद्दर्शन (परमात्म-साक्षात्कार)** - इस निरवलम्ब अवस्था में परमात्मा स्वतः प्रकाशित होते हैं। यह निरवलम्ब अवस्था ही स्वरूप-दर्शन के विषय में सर्वविध अवस्था है।

४ आषाढ़

सर्वदा स्मरणीय

(१) **आदौ श्रद्धा** - गुरु वाक्य में ध्रुव-विश्वास, इस विश्वास के होने से ही सन्तोष आता है। इसी कारण श्रीव्यासदेव ने भाष्य में श्रद्धा को सन्तोष के अर्थ में मानकर वर्णना किया है और यही सत्य है। यह श्रद्धा समस्त साधनों का मूल है। सनत्कुमार ने नारदजी को भी यही उपदेश दिया था।

(२) **दोष-परित्याज्य** - पर चरित्र अनुशीलन और निन्दा, इसका वर्तमान रहना ही सन्तोष के लिए प्रधान विघ्न स्वरूप है। परदोष-दर्शन करने से उसी समय चित्त मलिन हो जाता है, अतएव दोष-दर्शन ही महत् दोष है। एक ईश्वर ही सब प्राणियों की बुद्धि का प्रेरणा-स्वरूप है। इस कारण दोष-गुण कुछ भी अर्थ नहीं रखता, प्रत्येक अपने-अपने कार्य में रत हैं अच्छे-बुरे सब तरह के। भगवान की लीला समझकर सन्तोष और आनन्द अनुभव करने की चेष्टा करनी चाहिए।

अतएव नित्य सन्तोष नित्य ग्राह्य है। यह याद रखो।

"सिद्ध्या सिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वम् योग उच्यते।"

नित्य परित्यज्य चर्चा और पर-दोष दर्शन एवं आत्म प्रशंसा।

(३) **ज्ञान** - जगन्नियन्ता एकमात्र परमेश्वर "यस्यान्तः स्थानि भूतानियेन सर्वमिदं ततम्"-गीता अष्टम अध्याय २२वां श्लोक।

(४) **मूर्खता** - अपने मन से दूसरों को उपदेश दान।

स्वयम् को तो उपदेश द्वारा संशोधित नहीं कर पाये, दूसरों को उपदेश देकर संशोधित करने चले। उन उपदेशों को अपने जीवन में तो उतार नहीं सके दूसरों को उपदेश देने का आकर्षण नहीं छोड़ सके। इससे अधिक मूर्खता क्या होगी। भगवान क्या नियन्ता नहीं है। स्वतः प्रवृत्त उपदेश दान केवल अहंकार मूलक है।

(५) **सर्वदा सावधान** -

(१) आलस्य किसी भी रूप में प्रश्रय न पाये।

(२) कोई काम दोषपूर्ण नहीं है, सेवा समझकर सब काम करना, मानअपमान का विचार करना ही मूर्खता है।

(६) ध्यान -

(१) गुरु ही परब्रह्म रूप में एकमात्र बन्धु है।

(२) वही व्रजनाथ (विष्णु और उनकी शक्ति) भीतर से पथ दिखाते जाते हैं।

(३) अनन्त रूप-जीवों के प्रति कृपा करने के निमित्त यह रूप धारण किया।

(४) तदाश्रय परमात्मा परब्रह्म-जो इस अनन्त के अन्त हैं वही आनन्दमय और चिद्‌धन है।

वाह्य व्यवहार के समय में

(क) वर्जनीय

(१) परचरित्रानुशीलन, परनिन्दा, परदोष दर्शन।

(२) आत्म प्रशंसा।

(३) आलस्य।

(४) प्रयोजनीय उपस्थित काम में मान अपमान बोध।

(५) कपटाचरण।

(६) वैध-स्थल के सिवाय स्वतः प्रवृत्त होकर दूसरों को उपदेश दान।

(ख) ग्रहणीय

(१) वाक्-संयम्।

(२) सरल सत्य वाक्य।

(३) सेवा के निमित्त सब कर्म और भोग, अपने लिए कुछ नहीं।

आभ्यन्तरिक साधन के विषय में

(१) सद्‌गुरु वाक्य, श्रद्धा, जप।

(२) (क) सन्तोष (लाभालाभे, जयाजये, सुखे-दुःखे, स्तुति-निन्दा)।

(ख) न द्वेष्टेयकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।।

(ग) सत्य विद्या की नित्य धारणा-(स-त्-य=सत्य) परब्रह्म विश्व म यमयति।

(३) ध्यान - (क) गुरु
(ख) ब्रजनाथ
(ग) अनन्त रूप
(घ) परब्रह्मः - सदा एक निरवच्छिन्न ज्ञानानन्दमय।

पाँचवा-आषाढ़

विक्षिप्त चित्त किस प्रकार एकाग्र हो

योग सूत्र-(१) तपः। (२) स्वाध्यायेश्वर। (३) प्रणिधानानि क्रिया-योग-

(१) तपः (क) शारीरिक शुद्धि की चेष्टा : आहार निद्रा आदि नियमाधीन-

(ख) काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, मात्सर्य आदि इन्द्रिय विकारों का वर्जन।

(२) स्वाध्याय-सत्शास्त्र-उपनिषद् आदि का नित्य पाठ एवं नाम-जप।

(३) ईश्वर प्रणिधान : उनको सर्वनियन्ता मानकर उनको सब कर्मार्पण कर किसी विषय में अपने मन में मान-अपमान न लाना।

छठा-आषाढ़

निज ध्यान निरूपण

(१) X X X मन्त्र तुम्हारे गुरु का दिया हुआ प्रथम मन्त्र है। इसके द्वारा तुम्हें ब्रह्म का अभिन्न ध्यान करना उचित है।

X X X दूसरा मन्त्र 'वासुदेवः सर्वमिति' इत्यादि वाक्य में जगत और तुम ब्रह्म-स्वरूप कहे गये हो, अतः उसके विषय में भी वैसा ही है।

(२) तत्त्व पर्यालोचना में जीव भी ब्रह्मांश है तथा जगत भी ब्रह्मांश है यही श्रुति व अन्य शास्त्रों का भी उपदेश है, अतः इसे निश्चित करके जानो (साधकों के लिए)।

(३) "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेहअर्जुन तिष्ठति" आदि वाक्यों से तथा श्रुति-वाक्यों से ईश्वर का जगत-नियन्तृत्व सिद्ध है ही।

(४) ब्रह्म का जगतकारणत्व भी सिद्ध ही है, इसके निमित्त व उपादान दोनों के कारण वे ही हैं।

मीमांसा

अतएव जब सब ब्रह्म है एवं तुम्हारे मन्त्रोपदेश का सार भी यही है, तो तुम्हारा ध्यान भी इसी रूप में होना उचित है। यथा-

(१) स्वयं ब्रह्म-

(२) अन्य सब जीव भी ब्रह्म हैं, अतएव योगीश्वर और शृगाल दोनों ही समान रूप से ब्रह्म हैं। सर्वत्र समदर्शन ही प्रधान ध्यान अंग है।

(३) समस्त कर्म ही ब्रह्म के कर्म हैं, इसलिए अपने काम के लिए आत्मग्लानि अथवा हर्ष एवं दूसरों के काम की निन्दा व प्रशंसा करना मूर्खता व अज्ञानता मात्र है। यह सर्वथा वर्जनीय है।

श्रीमद्भागवत के ११ वें स्कन्ध २८वें अध्याय के पहले-दूसरे श्लोक में भी मैंने देखा कि यही लिखा है। इस कारण परनिन्दा और दोष-दर्शन वर्जनीय है। यह विशेष रूप से ध्यान में रखना है।

श्रीमद्भागवत के ११वें स्कन्ध के १९वें अध्याय का ४५वाँ श्लोक-

"गुणदोषदृशिर्दोषोगुणसतूभयवर्जितः"

१४ आषाढ़

विशेष साधन-साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यतेत्।

१७ आषाढ़

यह ध्यान रहे कि अहंकार भी नहीं आए तथा दूसरी ओर हताश भी न हो-"सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।"

८ श्रावण

ईश्वर की आनन्दमयता, सर्वात्मकता, सर्वज्ञता प्रभृति धर्म उपासना के समय सदैव ध्येय रूप रहें एवं स्वयं का भी शुद्ध, निर्मल, ब्रह्मरूप में उस समय चिन्तन करें, यही वेदान्त दर्शन की मीमांसा है-"आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायते" इत्यादि श्रुति स्मरणीय है।

१६ श्रावण

प्रकाशं च प्रवृतिं च मोहमेव च पांडव।
ने द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति।।
"त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्न संशय।"

छिन्नसंशयः-निश्चय ही ब्रह्म एकमात्र. कर्ता है। संशय का कारण ही नहीं।

२७ पौष

प्रथम ब्रह्मसाधन (वर्तमान में)

वे हृदयाकाश के ऊपर निर्मल दृष्टा रूप में अवस्थित हैं। जगत को अपने में प्रकाशित कर रहे हैं तथा लय भी कर रहे हैं, वर्तमान जगत उन्हीं का प्रकाश है।

संक्रान्ति

द्वितीय साधन

वे अन्तर में भी वे बाहर भी, वही अन्तर वही बाह्य वे ही सर्व हैं। जब वही सर्वकर्त्ता हैं, तब यह सोचना व्यर्थ है कि कौन-सा काम कैसे होगा तथा कौन-सी वस्तु कैसे रहेगी।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

(गीता ९ अध्याय २२)

गीता का उक्त ध्यान

शनैः - शनैरूपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।

श्रीमद्भागवत

हंसोक्त उपदेश (सनकादिक को-श्रीमद्भागवत ११ स्कन्ध १७ अध्याय) में द्रष्टा परमात्मा, ब्रह्म होकर भी दृश्यरूप में मैं आत्मा से पृथक हूँ, इसमें अहम् बुद्धि ही भ्रम है, गुरुसेवा और तत्त्वचिन्ता द्वारा इस भ्रम का निवारण करो।

वर्तमान त्रिविध साधन

(१) वाक्य संयम-मौन (वाग्दण्ड)-

(२) कर्म-सेवा पूजा, आश्रम सेवा–यही इस समय की गुरुसेवा है (कर्मदण्ड)-

(३) मन-मनोदण्ड-सम्पूर्ण आत्मस्वरूप में अवस्थित होने का यत्न, हत्पुण्डरीक केन्द्र, ब्रह्माण्ड के ऊर्द्ध्वतम ब्रह्मरन्ध्र से अधस्तन पर्यन्त व्याप्ति का अनुभव आवश्यक है। स्वम ब्रह्म, अपनी व अन्य की देहादि (देह, इन्द्रिय और चित्त) दृश्य रूप ब्रह्म, इसका परिचालक ब्रह्म, इस सम्बन्ध में अपने व दूसरे के कोई भी काम दोषजनक नहीं, ब्रह्मप्रेरित एवं ब्रह्म ही का विकास है। अतएव 'न शोचति न कांक्षति' वाक्य सत्य है। इसके प्रतिपालन की चेष्टा-इस प्रकार नित्य सन्तोष साधन ही मनोदण्ड है। इससे मन स्थिर होगा ("एषा ब्रह्मी स्थितिः" इत्यादि) एवं अमननीय विषय मनन नहीं करना।

(छान्दोग्य उपनिषद् के सप्तम अध्याय के पहले से २७ खण्ड तक की आलोचना करके उसमें से यह साधनोपयोगी सार धर्म अवधारित किया।)

(१) गुरु-सेवा और उनके वाक्य का पालन प्रथम प्रयोजन, उससे सुख की आशा की निवृत्ति होती है।

(२) उनके वाक्य में श्रद्धा-सम्पूर्ण सत्य मानकर ग्रहण करना, आदेश पालन करते-करते श्रद्धा उत्पन्न होती है।

(३) भूमा हो सुख स्वरूप, आनन्द स्वरूप, वे ही सर्वमय, महत्वमय उनके सिवाय और कुछ नहीं। ये ही जीव की (साधक) आत्मा, वे ही उपास्य, ज्ञातव्य, यही परम सत्य। इसी विषय में दृढ़ धारणा होनी चाहिए।

(४) उनके ज्ञान में ही सब ज्ञात हो जाता है, साधक आनन्दमय हो जाते हैं एवं सम्पूर्ण कामचारी हो जाते हैं।

वराह द्वादशी

२१ माघ १३ फरवरी शनिवार

मैं इस देह को जिस प्रकार सीमाबद्ध समझता था, वास्तव में ऐसा नहीं है, इसके असंख्य स्तर हैं। प्रत्येक स्तर एक अनन्त लोक का अंगीभूत अंश है, उस स्तर में ध्यान पहुँचने पर यह जीव अनन्त ब्रह्माण्ड रूप देह हो जाती है। अति सूक्ष्म अनन्त आकाशमय समग्र ब्रह्माण्डव्यापी देह हो जाती है। उसमें जीवात्मा द्रष्टा के रूप में अन्तर्निहित है, यह हृत्पुण्डरीक अनन्त ब्रह्माण्डरूप देह ही हृत्पुण्डरीक है, इसी में जीवात्मा प्रतिष्ठित है, विद्युत प्रभायुक्त अति सूक्ष्म ज्योति के रूप में यह प्रथम प्रकाशित होती है, इसके बाद यह ज्योति भी उन्हीं में लीन हो जाती है। शास्त्रोपदेश के अनुसार मैं अनुमान करता हूँ कि इस ज्योतिलीन अवस्था में जीवात्मस्वरूप को नित्य अवस्थित कर सके तो परमात्मस्वरूप प्रकाशित होगा, आपाततः अभी यह जीवात्म ही एक प्रकार की सम्पूर्ण निर्लिप्त अवस्था-सी लगती है।

गीता में कहा है-

"....................निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।"

यह देह ही विराट् देह-सी अनुभव हुई (एवं प्रत्येक देह भी इसी प्रकार से), इसका (स्थूल देह, सूक्ष्म देह-इन्द्रिय पञ्च तन्मात्र, अहंकार एवं बुद्धि का) समस्त कार्य ही इसके अधिनायक का, इसके नियन्ता का, जगन्नियन्ता का, जो जीवात्मा इसमें अनुप्रविष्ट है, वह केवल साक्षी स्वरूप है द्रष्टा मात्र है। अतएव इस ध्यान में अवस्थित होने पर ही निर्द्वन्द्व नित्य सत्त्वस्थ हो जाता है एवं योगक्षेम से रहित हो जाता है। आत्मवान और इस प्रकार जीवात्म-स्वरूप स्थित होना

एक ही बात है। यह जीव उक्त नित्य स्वरूप में स्थित होकर भी वही और जो अनन्त ब्रह्माण्ड रूप देह में प्रविष्ट करें वह भी वही, मूल कारण मूल आश्रय परब्रह्म का ध्यान ही इस समय अवलम्बनीय लग रहा है। यह पथ-"एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ।" धन्य गुरुदेव ! तुम्हारी कृपा से ही नित्य नूतन पथ प्रकाशित हो रहे हैं। अहा ! आज श्रीभगवत् मूर्ति से यह समस्त अवस्थाएँ मूर्तिमान होकर प्रकाशित होती हुई देखीं।

धन्य प्रियाजी ! तुम्हीं ने यह तथ्य आज प्रकाशित किया।

धन्य ! धन्य !! धन्य !!!

२६ माघ

कल माघी पूर्णिमा थी। इस बीच सब अवस्था क्रमागत आ रही हैं और जा रही है, कुछ स्थायी नहीं हो रही है, सब कुछ तुम्हारे हाथ में है, जैसे रख रहे हो वैसे ही रह रहा हूँ, असन्तोष पोषण करने की इच्छा नहीं हो रही है। "असन्तुष्टोः द्विजा नष्टाः"।

"योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।"

यह सदा याद रहता है और कुछ स्पष्ट रूप से लिखने पर यदि न समझे, इससे क्रोध का उदय होता है। उसके सम्बन्ध में भी याद रहता है-

"काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।" (गीता, ३/३७)

विशेष रूप से यह स्मरण रखना है-

"यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा।।"

ऐसा लगता है कि लिखकर कभी-कभी अभिप्राय प्रकाश करना इस समय की अवस्था में बन्द नहीं कर पाऊँगा, कारण आश्रम का भार मुझ पर दिया गया है तथा मैंने उसे ग्रहण भी किया है, अतः चुप होकर बैठने में काम की क्षति होती है। इस अवस्था में अब से जहाँ तक सम्भव होगा कोई अभिप्राय प्रकाश नहीं करूँगा, अत्यन्त आवश्यकीय विषय का ही करूँगा। इससे कम-से-कम आश्रम सम्बन्धित कार्यों की चिन्ता तो दूर होगी। नहीं तो उसकी पर्यालोचना भी अक्सर करनी होती है। महेन्द्र और द्वारका द्वारा सब कार्य भली भाँति नहीं हो पाते हैं। क्या करूँ, यह भी भगवान की इच्छा है।

हे महाराज ! तुम्हीं सहायक हो, अपनी ओर से तो कोई सामर्थ्य नहीं दीखती है। हृदय ग्रन्थि समय पर छिन्न होगी, ऐसा कहा था, क्या उसका अभी भी समय नहीं आया? अभी तक इसी आशा में था।

ॐ शान्तिः।

२८ माघ

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद भक्तः स मे प्रियः।। (गीता, १२/१३,१४)

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।

तुम्हारा यही सम्यक् साधन है, यही प्रशस्त पथ है।

४ फाल्गुन

यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः
सहस्रशः प्रभवन्ते <u>सरूपाः।</u>

तथाक्षरात् विविधाः सौम्यभावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति।।

(मुण्डक २-१-१)

बुद्धि से क्षिति पर्यन्त इसी प्रकार प्रकाशित है, बुद्धि के बाद वे ही हैं-

"एवं बुद्धेः परम बुद्धा..........." इत्यादि गीता वाक्य भी स्मरण योग्य है।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म
तपो ब्रह्म परामृतम्।
एतद् यो वेद निहितं गुहायां
सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सौम्य।।

(मुण्डक द्वितीय १-१०)

६ फाल्गुन

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासा निशितं सन्दधीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि।।

(मुण्डक २-२-३)

(१) गोपन में स्थित मन्त्ररूप धनु लाभ करके-

(२) उपासना द्वारा तीक्ष्ण निर्मल जीव चैतन्यरूप शर को सन्धान करके-

(३) भगवद्भागवत चित्तरूप बलवान हाथों द्वारा आकर्षण करके-

(इस समय इसका ही प्रधान अभाव पा रहा हूँ)

(४) ब्रह्मरूप लक्ष्य को भेद कर।

तत् (ब्रह्म) भाव गत (प्रांप्त)–ये भेद बुद्धियुक्त अथवा स्वतन्त्र भावयुक्त चित्त के द्वारा नहीं होगा, ब्रह्म से अभिन्न (तत्) भाव प्राप्त अथवा स्वातन्त्र्यरहित तदधीनता सम्पूर्ण रूप से प्राप्त चित्त के द्वारा मन्त्र का आकर्षण करना होगा, तभी शर लक्ष्य की ओर जायेगा। यदि धनुष को झुका नहीं सके तो शर चलेगा किसके बल पर तथा लक्ष्य भी किस प्रकार प्राप्त हो सकेगा। शर धनुष के साथ लगता है, किन्तु इससे ही शर नहीं चलता, धनुष को झुकाकर मोड़कर ही शर चलता है। तद्भागवत-चित्त सिवाय अन्य कोई झुका नहीं सकता।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वैद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरीक्षम्
ओतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या-
वाचो विमुश्चथामृतस्यैष सेतुः।।

(मुण्डक २-२-३/४/५)

कोई अन्य बात (कथा) नहीं, कोई अन्य लक्ष्य नहीं, केवल एक ही लक्ष, एक ही कार्य, यही एकमात्र सेतु है।

इस चंचल चित्त से यह क्योंकर सम्भव होगा? "तद्भावगतेन चेतसा आयम्य"-नहीं तो उस धनुष को नवाया नहीं जायगा, फिर बाण किस प्रकार योजना करेगा?

हे गुरुदेव ! तुम्हीं एकमात्र आशा हो, तुम्हारा वाक्य ही एकमात्र भरोसा है-"कर सद्गुरु का आश, होय घट में प्रकाश।"

९ फाल्गुन

सावधान ! सावधान !! सावधान !!!

भगवान ही जब कर्ता हैं, वही सब करेंगे, समय पर जो होना होगा वह सब होगा, यह सोचकर कहीं साधन में निश्चेष्ट-भाव 'तुष्टि' नहीं आये। यह योग-प्रतिबन्धक है, सांख्य प्रवचन सूत्र तृतीय अध्याय के ३८-४५ सूत्रों में विशेष रूप से वर्णित है–'आलस्य भी वास्तव में सर्वविध 'तुष्टि' का मूल है।

१६ फाल्गुन

ब्रह्मै वेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म–
पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्द्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मै–
वेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।। (मुण्डक द्वितीय २/११)

"एष सर्वभूतान्तरात्मा" (मुण्डक द्वितीय १/४)

फाल्गुनी पूर्णिमा

ध्यान

जिस तरह गर्भिणी स्त्री खूब यत्न और ध्यान से हमेशा सशंकित भाव से गर्भ धारण करती है, उसी प्रकार यत्नपूर्वक बीजमन्त्र को हृत्पुण्डरीक में धारण करना, कहीं भूल मत जाना, सावधानी से रक्षा करना। बीजमन्त्र ही परब्रह्म का प्रतिनिधि स्वरूप है।

वदी चैत्र कृष्णा चतुर्थी

बीजमन्त्र सेतुस्वरूप है, परब्रह्म के साथ योग करता है, यही ध्यान रखना।

कृष्णा पंचमी

परमात्मा निर्मल गुणों के अतीत द्रष्टास्वरूप–

"ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सुरयो दिवीव चक्षुराततम्"

कृष्णा अष्टमी

किन्तु सर्वातीत द्रष्टामात्र ही दृश्यवर्ग–जगत्, तुम स्वयम् भी वही हो, भिन्न भाव मत लाना, ध्यान के समय एवं सब समय ही यही ध्यान में रखना।

३० चैत्र

कृष्णा पञ्चमी

(१) दोषदर्शन ही प्रकृत दोष, समदर्शन गुण।

(२) अपमान होने पर शोधन के लिए विशेष कृपा अनुभव करनी चाहिए। अपमान को प्रसन्न मन से ग्रहण नहीं करने तक प्रकृत जीवन का आरम्भ ही नहीं है। जब विशेष निकटता में स्वीकार करते हैं तब अपमानित करवाते हैं। शरीर की यातना बहुत से सह्य करते हैं, किन्तु अपमान की यातना बहुत थोड़े ही सहन करते हैं। दूसरे के द्वारा की गई अवज्ञा तथा अपमान सहना वांछनीय है।

कृष्णा प्रतिपदा-वदी ज्येष्ठ आरम्भ

आगामी शुक्ला दशमी (दशहरा) को ५८ वर्ष पूरे होंगे, अतएव भविष्यत् उक्तिपूर्ण होने में अति अल्प समय अवशिष्ट है।

प्रथम ध्यान

(१) चतुर्दश भुवनव्यापी यह ब्रह्माण्ड जिस विराट् पुरुष की देह है वे ही ध्येय हैं। यह भुवन उनकी बाह्य देह है वे इसके प्राणस्वरूप हैं।

(२) (क) तुम इसी के अंगीभूत हो।

(ख) तुम भी वही विराट्रूपी–विराट् के प्राण ही तुम्हारे प्राण हैं।

इसी ध्यान में कि देहस्थ प्राण के आश्रय हृदय में शक्ति की चोट लगते-लगते वह विदीर्ण होता है एवं इस प्रकार प्राण विशेष आश्रयहीन होकर सर्वांग में व्याप्त हो जाता है। तभी यथार्थ में विराटता का अनुभव होता है। स्वयं को भुवनव्यापी विराट् आकाशमय तनुविशिष्ट प्रतीत होता है।

अंतःपर द्वितीय ध्यान

(१) ब्रह्माण्डातीत विराट् आकाश के ऊपर, नीचे तथा चारों ओर अनन्त, निस्तब्ध महासमुद्र है, वही यथार्थ में महत्–यही महाकाश तथा लोकातीत है। (यही महत् अलोक आकाश ही शायद बौद्धों का आलोक आकाश–शून्य) इस महाकाश में ब्रह्माण्ड इस प्रकार है जैसे आकाश में खद्योत होता है। निस्तब्ध महाकाश में ब्रह्माण्ड ओत-प्रोत है, यह ब्रह्माण्ड महासत्ता समुद्र में घूर्णवत् है। यह एक अद्वैत, ब्रह्माण्ड रूपी तुम्हारे ऊपर नीचे, चारों ओर तथा अन्तर में एक अद्वैतरूप मे प्रतिष्ठित है।

(२) क्रमशः इस महाकाश का वहिरंग आनन्द, इस आनन्द का अनुभव कर्ता ब्रह्म, तुम उसी के अंगीभूत हो, कोई पार्थक्य नहीं, उसी अनन्त आनन्द को अनुभव करो।

तृतीय ध्यान

यह आनन्द चिन्मय–अनन्त महत् पुरुष जिनका प्रकाश, जिनमें महत् पदवी भी लुप्त-महत् सूक्ष्म कोई भी जिनकी संज्ञा नहीं हैं, वही अप्रकाश एवं यही महत् पुरुष का आश्रय स्थानीय पुराण पुरुष ही परमात्मा परब्रह्म है। पूर्ण ध्यान में केवल सर्वातीत द्रष्टा रूप में ये ध्येय है। अब तक इतना पथ ही लक्ष्यीभूत हुआ है।

आठ ज्येष्ठ

सर्वमय, सर्वनियन्ता एवं निर्मल (निर्लिप्त) सत्ता रूप में ध्यान ही सब समय में तथा अभी तक फल-प्रद है। इसके अन्तर्भूत अन्य सब ध्यान हैं।

साथ में यह भी स्मरणीय है :-

"ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सूरयो दिवीव चक्षुराततम्"

७ आश्विन

ललिता सप्तमी

किसी वस्तु से किसी प्रकार का दोष अशुद्धि नहीं, इस सम्बन्ध में जो शास्त्र वाक्य हैं, वे केवल जीव की अवस्था भेद हैं। पीड़ित व्यक्ति के लिए जो दोष स्वरूप है, निरोग के लिए वह गुण स्वरूप है। मनुष्य के लिए जो हेय तथा अपवित्र है, अन्य जीवों के वह उपादेय हैं। किसी वर्ग के मनुष्यों के लिए जो अपवित्र है वह दूसरे वर्ग के लिए पवित्र हैं। जो एक जीव के लिए विषवत् है वह दूसरे के लिए अमृत है। इस कारण वस्तु का निज का कोई गुण-दोष नहीं है, अतएव परमहंस के लिए सभी ब्रह्ममय है।

इसी प्रकार कोई कर्म व मानसिक भाव अपने आप में दूषणीय नहीं है, सब भाव व सब कर्म सत्वः, अथवा रजः अथवा तमः प्रभग्न होंगे, तीनों गुण ही भगवत्-अंग हैं इसलिए दोष कहाँ? अनेक समय प्रत्यक्ष रूप में भी यह देखा गया है कि मिथ्या का भी संसार में उपादेयत्व है, उसके द्वारा सत्य की अपेक्षा अधिक उपकार होता है (जीव जगत के अनुसार उपकार)। सत्य के अक्सर उपकार हो जाता है। हिंसा में इस प्रकार का उपकार अक्सर होता है, जिस प्रकार दूसरे

को (परम साधु भी हो सकता है) काटने को उद्यत साँप को मारने से दूसरे का उपकार होता है इत्यादि।

अतएव दोष-दर्शन ही अविद्या अज्ञान है, ज्ञानी व्यक्ति के लिए सर्वथा परित्यज्य है।

८ आश्विन

श्रीराधा अष्टमी (भाद्रपद शु० ८)

"है तो अकेला पर क्या-क्या खेल खेला"

श्रीगुरु महाराजजी का व्यवहार और तत्पोषक वाक्य स्मरण रखना है। यथा-

"न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
योजयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्।।"

१६ कार्तिक

प्रभु एक, विश्व रचयिता, विश्वकर्ता एक। जगत के प्रत्येक कार्य के कर्ता वे स्वयं एक हैं। प्रत्येक जीव के प्रत्येक कार्य प्रत्येक चिन्ता जगत को प्रत्येक घटना तथा अनन्त जगत के साथ उसका सम्बन्ध, अनन्त जगत उस एक घटना उत्पादन करने के लिए अनन्त हाथों में अनन्त काल से आयोजन करता है। यह एक पक्षी भी पुकार उठा अतः इसके लिए भी इस मुहूर्त में इस स्थान पर यह उत्पादन करने के लिए ब्रह्माण्ड व्यस्त है; सब इसके दास होकर अनन्त आयोजन करते हैं, इसके लिए हवा चल रही है, चन्द्र सूर्य उदय हो रहा है, स्वयं जगतपति इसके कर्ता हैं तो फिर इनके दासत्व को स्वीकार करने के लिए कौन कुण्ठित होगा। धन्य जगत्पति ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।

ॐ तत्सत् ॐ

पुस्तिका का सारांश यथा सम्भव प्रकाशित किया है। तथापि यह सब पढ़कर यह नहीं समझना चाहिए कि उनकी साधनावस्था के विषय में सब कुछ अवगत हो गया। सिद्धि की समीपवर्ती उच्च अवस्था जो सब साधकों की होती है वह साधारण मानव-बुद्धि के लिए अगम्य है। इस तरह उनके लोकोत्तर जीवन का यह गुप्त अध्याय गोपनीय है।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की दिव्य-मूर्ति के दर्शन करके अथवा उनकी तपस्या व त्याग की ख्याति सुनकर बहुत से लोग उन दिनों दीक्षा प्रार्थी हुए। इनमें समस्तीपुर के डाक्टर हरिपद घोष, रेलवे कर्मचारी प्रसन्नकुमार घोष और ब्रजेन्द्रकुमार बोस विशेष उल्लेखनी है। इन लोगों को भी वही उत्तर दिया।

उनकी पुस्तिका का जो अंश अभी उद्घृत किया है, उसके अनुसार १६१७ ई. साल की 'कृष्णं प्रतिपदा वदी ज्येष्ठ आरम्भ' तारीख में लिखा है–'आगामी शुक्ला दशमी (दशहरा) को ५८ वर्ष पूरे होंगे अतएव भविष्यदुक्तिपूर्ण होने में थोड़ा ही समय है।"

१६१८ ई. साल के १६ सावन के बाद साधन के विषय में कुछ नहीं लिखा।

इसके बाद १६२० ई. के श्रावण मास में नासिक कुम्भमेले में उन्होंने प्रथम दीक्षा दान किया। इसके बाद जल्दी ही बहुतों ने उनसे दीक्षा लाभ की। तब उनका साधन समाप्त हो गया था। फिर उनकी किसी ने किसी प्रकार का साधन करते नहीं देखा। जिन लोगों ने जब उनको देखा था उन्हीं से यह सब सुना। साधुओं का नियम मानते हुए, श्री श्रीराधाबिहारीजी की सेवा करते, वाह्य दृष्टि से साधारण रूप से जीवन बिताते हुए वह समय यापन करते थे लेकिन सन्धानी दृष्टि से

उनका नित्य स्थिर भाव तथा प्रशान्त धारा दृष्टिगत होती थी। साक्षात् शंकर की मूर्ति के समान भंगिमा, सुधावर्षी हास्य दृष्टि, उनके सान्निध्य में एक अपूर्व शान्ति, यह सब हमने भी देखा तथा अनुभव किया।

यह सब देखते हुए कहा जा सकता है कि १६१८ ई. से १६२० ई. तक के इन दो वर्षों के अन्तराल में उनके गुरुदेव का वर-पूर्ण सिद्धिलाभ-फलित हुआ। दीक्षा-दान के उपयुक्त अवस्था लाभ की अपेक्षा तथा फिर दीक्षा दान करना इससे भी यही सूचित होता है।

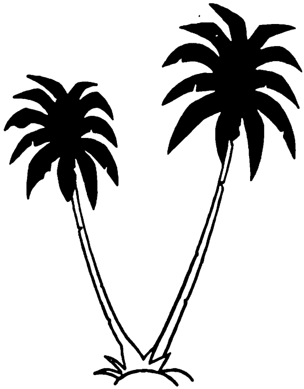

सप्तम अध्याय

संन्यास, व्रजविदेही महन्त पद लाभ, आश्रम में साधु-सेवा का प्रवर्तन

१९१९ ई. में झूलन पूर्णिमा के तीन-चार दिन पहले बाबाजी महाराज के कनिष्ठ गुरुभाई-जो उस समय व्रजविदेही महन्त के पद पर थे-ने आकर उनसे कहा-'मैं अब और महन्ताई रख नहीं सकता हूँ इस सम्बन्ध में आप जो उचित समझें वह करें।'

इस व्रजविदेही महन्त पद का इतिहास है जो कि यहाँ विवृत करना आवश्यक है। 'महन्त' शब्द का अर्थ से मठाधीश ही समझा जाता है तथा अधिकतर इसी अर्थ में महन्त शब्द व्यवहृत होता है। 'महत्' शब्द से महन्त शब्द की व्युत्पत्ति हुई है, जिसका कि अर्थ महापुरुष है। यह पद आचार्य व नेता के पद के समान है तथा उसी के अनुरूप काम भी करना होता है। इनका निर्दिष्ट मठ व आश्रम भी हो सकता है अथवा कोई तो वृक्षतलवासी अथवा गुफा निवासी भी हो सकता है। व्रजविदेही महन्त पद इसी श्रेणी में है। इस पद की मर्यादा बहुत है तथा साथ-साथ दायित्व भी हैं। ये व्रजधाम की समस्त वैष्णव मण्डली के प्रधान हैं तथा सबको इनका अनुशासन मानना होता है। व्रज-परिक्रमा के समय साधुओं के प्रधान स्वरूप साथ में जाना होता है, सर्वत्र विरोध तथा धर्म-विषयक सन्देहों की मीमांसा भी इन्हीं को करनी होती है, साथ के साधुओं की खाने की व्यवस्था भी इनको ही करनी होती है। साधन सम्पद ही व्रजविदेही महन्त का एकमात्र सम्पद है। यह नहीं होने से इस पद पर टिकना कठिन है। खैर, श्रीदादा गुरुजी महाराज के शरीर छोड़ने से पहले जब उनका शरीर काफी वृद्ध हो चुका था, तो किसी उपयुक्त पात्र के नहीं रहने पर उन्होंने अपने

ही सम्प्रदायभुक्त एक वृन्दावनवासी साधु श्रीयुक्त किशोरदासजी को एक शर्त पर व्रजविदेही महन्त पद अर्पण किया था। शर्त यह थी कि वह श्रीदादागुरुजी के स्थान पर महन्त पद पर आजीवन आसीन रहेंगे बशर्ते अनाचारी न हों, लेकिन उनकी मृत्यु पर उनका कोई शिष्य यह पद ग्रहण नहीं कर सकेगा। श्रीदादा गुरुजी महाराज का ही कोई शिष्य तब महन्त होगा ("तुम्हारे पीछे हमारा चेला महन्ताई में आयेगा, तुम्हारा चेला महन्त नहीं होगा")। १७ अगस्त १६०७ ई. में यह दलील सम्पादित हुई। श्रीयुक्त किशोरदास ने यह शर्त मानली तथा वह महन्त पद पर अधिष्ठित होकर कालियदह के निकट रामगुलेला स्थान पर रहने लगे। उनके शिष्यगण अभी भी वहीं रहते हैं।

उनके महन्त होने के बाद थोड़े ही दिनों में श्री श्रीदादागुरुजी महाराज ने शरीर छोड़ दिया। श्रीयुक्त किशोरदासजी महन्त का दायित्व निबाहने लगे। व्रज चौरासी कोस वन-परिक्रमा में वह श्री श्रीदादागुरुजी महाराज ही की भाँति जाने लगे। जहाँ-जहाँ जमात पड़ती, वह रोज शाम को भागवत् पाठ करते, अनेक व्रजवासी आकर सुनते तथा इस तरह उनकी खूब प्रसिद्धि होने लगी। लेकिन फिर कुछ इस प्रकार की घटनाऐं घटीं कि प्रायः समस्त साधु-समाज ही उनका विरोधी हो गया। अतः जब वृन्दावन में अर्द्ध-कुम्भ का समय आया, तो उन्हें डर हुआ कि कुम्भ-मेले में सब जगह के महन्त आयेंगे तो स्थानीय महन्त व साधु लोग उन लोगों से उनकी चर्चा करेंगे। अतः इस डर से श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के गुरुभ्राता श्रीयुक्त विष्णुदास से जाकर उन्होंने कहा कि व्रजविदेही महन्त पद ग्रहण करें। श्रीयुक्त विष्णुदासजी की आयु उस समय पच्चीस वर्ष से भी कम रही होगी। वह कुछ स्थिर नहीं कर सके। इस कारण उन्होंने कलकत्ते में गुरुभाईयों का मतामत जानने के लिए तार भेजे।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज एक दिन जब हाईकोर्ट को जा रहे थे तब उनके पास यह तार पहुँचा। वह तार लेकर अपने दूसरे गुरुभाई श्रीनागेन्द्रनाथ मित्र के यहाँ गये, वहाँ से उनको साथ लेकर अपने ज्येष्ठ गुरुभाई श्रीअभयनारायण राय के यहाँ गये। वहाँ तीनों ने मिलकर परामर्श किया तथा श्रीयुक्त विष्णुदासजी को टेलीग्राम में यह लिख भेजा कि श्रीगुरुदेव जो व्यवस्था कर गए हैं, उसी को ही माननी चाहिए, श्रीयुक्त किशोरदासजी के जीवनकाल में उन्हें महन्त नहीं होना चाहिए।

व्रजविदेही महन्त पद निर्वाचित पद है। यद्यपि महन्त को मनोनीत किया जा सकता है फिर भी मनोनीत व्यक्ति को साधु-मण्डली का अनुमोदन सापेक्ष है। कलकत्ता से इस प्रकार का तार आने पर भी वृन्दावन के अर्द्धकुम्भ में अन्य महन्तों के अनुरोध के कारण श्रीयुक्त विष्णुदासजी को महन्त का पद ग्रहण करना पड़ा। यह घटना १९१४ ई. की है। कुछ दिनों बाद कुम्भ-मेला वृन्दावन से उठकर हरिद्वार गया। श्रीयुक्त विष्णुदासजी ही व्रजविदेही महन्त के रूप में गये। श्रीयुक्त किशोरदास भी वहाँ गये, किन्तु हैजा होने के कारण वृन्दावन लौट गए तथा दो-एक दिन ही में उन्होंने देह त्याग दी।

श्रीयुक्त विष्णुदासजी के हरिद्वार कुम्भ-मेले से वापस आने पर किशोरदास जी के शिष्यों ने उनका विरोध किया। वह तब अल्पवयस्क तथा अनभिज्ञ थे, अतः महन्ताई चलाने में बहुत बाधाऐं आने लगीं। विशेष रूप से परिक्रमा के समय बहुत असुविधा होती थी। किसी तरह तीन वर्ष तो चलाए, फिर चौथे वर्ष नहीं गए। उन्होंने ऐसी अवस्था में आकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज से पूर्वोक्त अनुरोध किया।

प्रतिवर्ष जन्माष्टमी के दो-तीन दिन बाद ही व्रज-परिक्रमा आरम्भ होती है। साधु-मण्डली के नेतृत्व तथा उनकी रहन-सहन व आहार की व्यवस्था के लिए व्रज के महन्त को साथ जाना पड़ता है।

झूलन पूर्णिमा के बाद को अष्टमी हो जन्माष्टमी होती है, अतः परिक्रमा जाने में थोड़ा ही समय था। अतः श्रीयुक्त विष्णुदासजी की बात सुनकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने कहा–'परिक्रमा के मात्र तेरह व चौदह दिन बाकी हैं, इस परिक्रमा को आप ही ले जाइये, फिर यदि आप महन्त पद नहीं रखना चाहें तो कुछ व्यवस्था करूँगा।' श्रीयुक्त जयरामदास नामक एक अल्प वयस्क गुरुभाई था। श्रीयुक्त दादागुरुजी महाराज के देहान्त पर किसी कारणवश वह आश्रम में नहीं रह सके थे, कहीं और रह रहे थे। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने मन में सोचा कि उसे वह बुलाकर महन्त पद पर अभिषिक्त करने की चेष्टा करेंगे। यह महन्त पद गुरु-परम्परा-क्रम से उनको देने में कुछ असुविधा भी नहीं होगी। यह सोचकर उन्होंने श्रीयुक्त विष्णुदासजी को बहुत प्रीतिपूर्वक समझाया बुझाया, उन्होंने भी कुछ विशेष जिद नहीं की तथा यह कहकर कि सोचूँगा, अपने स्थान* पर चले गए। दूसरे दिन वह स्वयं नहीं आए वरन् उन्होंने पत्र द्वारा महन्त पद छोड़ने का निर्णय बताया तथा उनसे अनुरोध किया कि वह यह पद ग्रहण करें। इस पर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने सोचा कि वृन्दावन में जितने अन्य महन्तगण हैं उनको लेकर वे श्रीयुक्त विष्णुदासजी से इस वर्ष परिक्रमा चलाने तथा महन्त पद को हठात् नहीं छोड़ने का अनुरोध करेंगे। ऐसा निश्चित करके उन्होंने वृन्दावन के सब महन्तों को भोजन के लिए निमन्त्रित किया। इस समय 'श्री' सम्प्रदाय के महन्त श्रीमत् स्वामी भरतदासजी महाराज भी वृन्दावन में उपस्थित थे, उन्हें भी बुलाया।

झूलन पूर्णिमा के अगले दिन यह पंगत होने वाली थी। पूर्णिमा की रात को उन्हें श्री श्रीदादागुरुजी महाराज के दर्शन हुए।

* अर्थात् पुराना स्थान। यही वह महन्त थे, अभी भी जीवित हैं।

अति प्रसन्न मूर्ति से आविर्भूत होकर पहले गीता के इस श्लोक का 'नैव किंचित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्' उच्चारण किया तथा उनके हृदय में यह बिठा दिया कि–'जो तुम करोगे वह तुम स्वयं कर रहे हो यह मत समझाना, तुम्हारे सब कार्य का भार मेरे ऊपर है ऐसा समझना।' उनको कुछ देर तक प्रसन्न दृष्टि से देखा तथा फिर अन्तर्हित हो गये। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज इस घटना को पहले तो श्री श्रीगुरुदेव की असीम कृपा तथा उनके स्नेह का परिचायक जानकर प्रसन्न हुए, क्योंकि उन्हें श्रीगुरुदेव का दर्शन प्रायः होता था, लेकिन फिर दूसरे दिन महन्तों को जिस कारण निमन्त्रित किया था, उसका भी कुछ इंगित मिला।

नये आश्रम में जाने के लिए पुराने आश्रम के सामने से आना होता है। कुछ भी कारण रहा हो कि सब महन्तगण जाकर पुराने स्थान में एकत्र हो गये तथा बातचीत करने लगे, महन्ताई का प्रसंग भी आया और खूब आलोचना हुई। इस तरफ श्रीयुक्त बाबाजी महाराज समस्त आयोजन करके उन लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे, अतः जब ग्यारह बजे तो वे उद्विग्न हो गये। इसी समय एक दो साधु आश्रम में आकर उनसे कहने लगे–"महन्तगण पुराने आश्रम में बैठे हैं तथा आपको वहीं बुला रहे हैं।" यह सुनकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज जल्दी ही वहाँ गए, देखा कि सभी महन्तगण वहाँ उपस्थित हैं। वहाँ उनके पहुँचने पर एक सर्वथा अपरिचित साधु उनको देखकर कहने लगा–'यह तो बहुत अच्छा दर्शनीय मूर्ति है। यह सब तरह से महन्त होने लायक है।' सबने उनसे वहाँ साथ में बैठने का अनुरोध किया। जब वह सबको दण्डवत् करके वहाँ बैठे तो पूर्वोक्त साधु ने कहा कि उन लोगों ने उनको ही महन्त बनाने का निश्चय किया है। यद्यपि उनके गृहस्थाश्रम का नाम अभी नहीं बदला है तथा यथाविधि वैराग्य आश्रम

भी उन्होंने ग्रहण नहीं किया, लेकिन इससे कुछ बाधा नहीं होगी। वे लोग उनको साम्प्रदायिक नियमानुसार वैराग्य देंगे तथा आज से उनका नाम 'सन्तदास' होगा। सब सन्त मिलकर उन्हें वैराग्याश्रम प्रदान कर रहे हैं, इस कारण उनका नाम 'सन्तदास' रहेगा। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के एक गुरुभाई जल्दी से जाकर नूतन कोपीन तथा नूतन वस्त्र ले आए तथा समवेत साधु-मण्डली की अनुमति से उन्होंने वह सब धारण कर लिया। फिर सबने प्रीति और आदर के साथ उनके गले में महन्ताई की माला पहना दी तथा चादर भी ओढ़ा दी।

समवेत महन्तगण और साधु-मण्डली जब उन्हें महन्त पद देने का प्रस्ताव कर रही थी, तब उन्हें गत रात्रि की घटना तथा बहुत पहले का 'महन्ताई भी मिलेगी' कथन जो उनके गुरुदेव ने कहा था, स्मरण हो आया तथा वे अभिभूत हो गये। वास्तव में यह सब कुछ गुरुदेव की लीला है, वही सब कुछ करवा रहे हैं, उन्हें स्वयं कुछ करने व सोचने की आवश्यकता नहीं है, इसी विचार से कि उन्हें महन्त पद ग्रहण करना है, जो कि उनके गुरुदेव का अभिप्राय है तथा गत रात्रि उन्होंने इसी लिए दर्शन दिये अतः उन्होंने इस प्रस्ताव को बिना किसी जल्पना के मान लिया।

फिर सब साधु-मण्डली ने नूतन आश्रम में आकर उनके साथ प्रसाद ग्रहण किया।

इसके बाद ही व्रज-परिक्रमा के लिए उन्हें ही जाना पड़ा। इसके लिए कुछ बन्दोबस्त तो था नहीं तथा महन्त होने पर सभी उत्तरदायित्व निवाहने थे। अर्थ तथा दूसरी सामग्री भी उनके साथ न थी। लेकिन समय आने पर अपने आप सब कुछ व्यवस्था हो गई। पण्डित किशोरदासजी के शिष्यों ने उनके महन्त पद की भेंट पूजा पर तो आपत्ति नहीं उठाई,

लेकिन वे लोग स्वयं भेंट पाने के अधिकारी हैं इसको लेकर विरोध हुआ, लेकिन भगवत् कृपा से परिक्रमा निर्विघ्न पूर्ण हुई।

वैराग्य ग्रहण करने पर सपत्नीक बास करना नियम विरुद्ध है, इस कारण श्री श्रीमाता ठकुरानी को काशी स्थित घर में भेज दिया। यह मकान उन्हीं के नाम पर था। तीन मंजिल की अच्छी बड़ी इमारत थी, जो दो भागों में विभक्त थी। बड़ा भाग किराये के लिए तथा छोटा भाग स्वयं रहने के लिए था। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के पूर्वाश्रम के कुछ आत्मीय जन वहीं जाकर काशी बास कर रहे थे। श्री श्रीमाता ठकुरानी उन्हीं के साथ आकर रहने लगीं। पहले तो किराये पर ही निर्भर होकर खर्च चलता था, लेकिन फिर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की शिष्य संख्या बढ़ने पर शिष्य लोग भी सहायता करने लगे थे।

सन् १६२० ई. में नासिक में कुम्भ-मेला आरम्भ हुआ। आश्रम में श्रीठाकुरजी की सेवा-पूजा तथा साधुओं का बन्दोवस्त करके कुछ साधुओं को साथ लेकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ७ जुलाई १६२० को नासिक गये। वहाँ निर्दिष्ट स्थान पर श्री श्रीठाकुरजी की स्थापना करके अपना आसन लगाकर ठाकुरजी की सेवा करने लगे। धीरे-धीरे भारतवर्ष के सभी महन्त वहाँ आकर समवेत हो गये।

भारतवर्ष की वैष्णव मण्डली चार सम्प्रदायों में विभक्त है। क्रमानुसार उनके नाम ये हैं—१. निम्बार्क २. श्री (इसकी दो शाखाएँ हैं (क) रामानुजी और (ख) रामानन्दी) ३. विष्णुस्वामी ४. माध्व। चारों सम्प्रदाय के चार प्रधान महन्त हैं। इन चारों के द्वारा ही समस्त वैष्णवों की कार्य प्रणाली निश्चित होती है। कहाँ क्या नियमविरुद्ध काम हो रहा है, इसका भी ये ही विचार करते हैं। इन चारों सम्प्रदाय के चारों प्रधान आचार्य महन्तों में व्रजविदेही महन्त अन्यतम हैं—

इन चारों महन्तों में से ही एक प्रधान समझा जाता है। प्रथानुसार व्रजविदेही महन्त ही को यह पद मिलता है। इस बार व्रजविदेही महन्त के रूप में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को ही भारत के समस्त साधुओं तथा महन्तों ने प्रधान महन्त पद पर अभिषिक्त किया।

इस प्रकार कुम्भ-मेले में जो साधुगण महन्त पद अर्पित करते हैं, उनको निमन्त्रित करके भेंट देते हैं। अतः बाबाजी महाराज ने काफी खर्च करके खूब अच्छा भोजन बनवाया तथा सबको निमन्त्रित किया, फिर महन्तों को यथायोग्य रुपये भेंट किये। सब लोग खूब परितृप्त हुए तथा उनका जय-जयकार किया। श्री ठाकुरजी की कृपा से सब कुछ आयोजन (अर्थ) अभावनीय रूप से अच्छी तरह हो गया। मेला समाप्त होने पर वृन्दावन लौट गये।

फिर जन्माष्टमी के दो दिन बाद दशमी को यथा नियम व्रजपरिक्रमा के लिए गये। परिक्रमा खूब आनन्द के साथ सम्पन्न हुई। परिक्रमा की समाप्ति पर बहुत से साधु उनके साथ आश्रम आये। उन्होंने भी प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा की। बहुत से साधु आश्रम ही में रह गये, तथा कुछ चले गये, फिर कुछ और आ गये, तथा कुछ चले गये, फिर कुछ और आ गये। साधु-सेवा का सम्वाद सुनकर आश्रम में साधु-समागम होने लगा। आश्रमवासियों के साथ अभ्यागत साधु भी रहने लगे। इस समय आश्रम में श्री श्रीठाकुरजी की सेवा तथा साधु-सेवा के काम के लिए कर्मचारियों का अभाव था। बाबाजी महाराज ही श्री श्रीठाकुरजी की सेवा-पूजा करते, रसोई बनाते, जल लाते, साधुओं को भोजन कराते, कभी-कभी बर्तन भी माँजते, गौ-सेवा करते, रोगी की भी सेवा करते तथा प्रयोजन होने पर उसका मल-मूत्र भी परिष्कार करते थे। उनको बर्तन माँजते देखकर कोई-कोई साधु

आकर उनकी मदद करते। यदि कभी कोई साधु रसोईया होते तो वह भी अपने आप आकर बाबाजी महाराज से रसोई का काम ले लेते। इस प्रकार साधु-सेवा भली भाँति होने लगी। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज कहते थे–'वानप्रस्थाश्रम अवलम्बन करके वृन्दावन वास करूँगा तथा भिक्षान्न से ही उदरपूर्ति करूँगा यह सोचकर संसार छोड़कर आया था। परन्तु श्री श्रीठाकुरजी की ऐसी कृपा हुई कि मुझे एक दिन भी भिक्षा के लिए जाना नहीं पड़ा। कहीं न कहीं से दस-पाँच रुपये आ जाते, अतः खर्चा चल जाता, साधु-समागम जैसे-जैसे बढ़ता गया, रुपये पैसे भी उसी अनुपात में आने लगे।

आश्रम में कभी-कभी साधु-समागम बहुत बढ़ जाता, विशेषकर झूलन-यात्रा के समय। श्रीवृन्दावन का झूलन-उत्सव देखने के लिए बहुत से साधु आते तथा आश्रम ही में ठहरते। इस समय साधु-सेवा में व्यय भी खूब होता तथा शारीरिक परिश्रम भी होता फिर आश्रम भी कोलाहल पूर्ण हो जाता।

दिन पर दिन जब कठोर परिश्रम करना पड़ता है तो हम जैसे साधारण लोगों (विशेषतः बंगाली) में सेवा करने का उत्साह तो तिरोहित हो जाता है, बस गुरुवाक्य पालन करना है, इसलिए करते हैं। हमारे मन में भी यह विचार आया–"गुरु-कृपा लाभ कर निश्चिन्त मन से तपस्या करेंगे यह सोचकर तो संसार छोड़ा, लेकिन यहाँ आश्रम की अवस्था तो सम्पूर्ण रूप से प्रतिकूल है। साधु-सेवा के कारण भजन में विघ्न होता है, सारे दिन अनेक तरह का काम, फिर इस पर शोर रहता, जप ध्यान को समय भी नहीं, सुयोग भी नहीं। माँ बाप को इसलिए तो छोड़कर नहीं आए थे।" श्रीभगवान की ऐसी आश्चर्यपूर्ण कृपा (कृपा क्यों कह रहा हूँ यह पाठकों को बाद में पता लगेगा) हुई

कि यह विचार एक साथ बहुत से साधु गुरुभाइयों के मन में आया, जो आपसी बातचीत में प्रकट हुआ। हम लोग मिलकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के पास गये तथा उनसे निवेदन किया–'बाबा ! इस साधु-सेवा के कारण हमारे साधन भजन में बहुत विघ्न होता है। अधिकांश समय उनकी सेवा के काम में ही लग जाता है, भजन के लिए समय नहीं मिलता है। जब कुछ समय भी मिलता है तो यहाँ इतना शोर होता रहता है कि भजन नहीं हो पाता है, आपको इस सम्बन्ध में कुछ करना होगा।' तब वे बोले–'बाबा ! मैं तो किसी साधु को बुलाकर नहीं ला रहा हूँ। वे स्वयं आते हैं और उनके भाग्य से उनके लिए रुपया पैसा भी आ जाता है, तुम लोग चाहो तो जमा खर्च की बही देख सकते हो।' तब हमने बही लाकर देखी तो आश्चर्य हुआ, कि खर्च के अनुरूप पैसा बराबर आ रहा है, जब अधिक साधु होते हैं तो अर्थ भी यथोचित भाव से अधिक आता है तथा जब साधु कम होते हैं तो अर्थ कम आता है, साधु-सेवा के लिए बराबर ही पूर्ण सुविधा हो रही है। तब बाबाजी महाराज कहने लगे–'अब तो मान गये न कि यह सब रुपया पैसा साधुओं ही के भाग्य से आ रहा है। हम लोग उनकी सेवा करें, यह भगवान की भी इच्छा है, नहीं तो प्रयोजन अनुसार पैसा नहीं आता। भगवान हमारी उपयोगी व्यवस्था करते हैं, इस सम्बन्ध में एक कथा है। धीरमदासजी नाम के एक महात्मा थे। वह एक बहुत बड़े महन्त थे। समस्त भारत में वृहत् साधु जमात लेकर पर्यटन करते थे। साधुओं में उनकी काफी प्रसिद्धि थी। वे जहाँ जाते, वहाँ सब स्थानों पर सेठ लोग तथा ग्रामवासी भोजन के लिए अच्छी-अच्छी चीजें लाते थे। लड्डू, कचौड़ी, पूरी, खीर इत्यादि नित्य प्रति होती थी। जिस दिन ये वस्तुएँ नहीं होतीं, उस दिन रोटी के लिए आटा, घी, दाल, तरकारी आदि वस्तुऐं होतीं, साधुओं को भोजन का अभाव कभी नहीं होता। यह

देखकर प्रायः सभी बोलते कि यह महन्त बहुत भाग्यवान है, इनके भाग्य से ही खाने की अच्छी-अच्छी सामग्री आती है तथा इस तरह साधुओं को खूब अच्छा भोजन करवाते हैं। जब सबसे महन्तजी ने यह सुना तो उन्होंने सोचा कि परीक्षा करके देखनी चाहिए कि यह सब मेरे ही भाग्य से आता है कि नहीं। अतः एक दिन जब साधु जमात एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर अपना-अपना आसन लगा लेना, भोजन की सामग्री कोई भक्तजन दे ही जायगा अतः रसोई बना लेना तथा भोजन कर लेना। मुझे आज कहीं और जगह जाना हैं, अतः मुझे देर हो जायेगी, मेरे लिए इन्तजार नहीं करना। उनके इस प्रकार कहने पर साधुओं की जमात निर्दिष्ट ग्राम पहुँच गयी तथा अपना-अपना आसन स्थापित कर लिया। महन्त धीरमदासजी ने उन लोगों के जाने के बाद यात्रा की तथा उसी ग्राम में गये। जमात की विपरीत दिशा में एक पेड़ के नीचे जाकर अपना आसन लगाया, वहाँ रास्ते पर बराबर आना-जाना हो रहा था। वह वहाँ सारे दिन बैठे रहे, राहगीर उन्हें देखते और चले जाते कोई भी उनके लिए कुछ द्रव्य नहीं लाये। अन्त में सन्ध्या होने पर एक आदमी थोड़ा-सा आटा, दाल, नमक और घी दे गया। वह उसे लेकर जमात में गये। वहाँ साधुओं की जमात के भोजन के लिए बड़े-बड़े सेठ बहुत कुछ अच्छी सामग्री लाकर महन्त की छत्री के पास बैठकर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनको देखते ही सेठ कहने लगे–'आप ही के लिए हम लोग इतनी देर से इन्तजार कर रहे थे। अब आप यह सब स्वीकार करें तथा साधुओं के भोजन की व्यवस्था करवा दें। तब उन्होंने सबको सम्बोधित करके कहा–'देखिए! आप सब लोग कहते हैं कि महन्त बहुत भाग्यवान है, उसी के भाग्य से अच्छी-अच्छी वस्तु प्रचुर परिमाण में आती है। अतः मैंने आज इस बात की परीक्षा की। यह देखिए मेरे भाग्य में यह तीन पाव आटा,

दाल, नमक तथा जरा-सा घी है, यह समस्त वस्तु तो इन साधुओं के भाग्य से आई है।' उनकी बात सुनकर सब अवाक् हो गये। फिर महन्त जी ने साधुओं के भोजन की व्यवस्था की एवं साधुओं ने खूब तृप्त होकर भोजन किया।' यह कथा सुनाकर श्री श्रीबाबाजी महाराज ने कहा—'इसलिए बाबा, साधुगण कृपा करके हमारे आश्रम में आ रहे हैं और अपने भाग्य का खा रहे हैं। हम लोग उनको नहीं खिला रहे हैं।

तुम्हारा यह कहना कि साधु-समागम होने से आश्रम में शोर रहता है, इस तरह भजन में मन स्थिर नहीं रह पाता है। इस सम्बन्ध में मैं इतना कहूँगा कि मेरे विचार से भगवान और भगवत्-भक्त की सेवा मनुष्य के लिए बहुत कल्याणकारी है, साधक यदि भक्तिपूर्वक ऐसा करे तो सब अशुभों से मुक्ति पाकर भगवत्-भक्ति लाभ कर सकता है। तुम लोग अपनी इच्छानुसार निर्जन स्थान कहाँ प्राप्त कर सकते हो? जंगल में जाकर भी यदि भगवान की इच्छा हुई तो विघ्न हो सकता है। इस सम्बन्ध में हमारे ही एक पूर्व आचार्य और उनके शिष्यों के सम्बन्ध की एक घटना बताता हूँ।

उन आचार्य के बहुत से साधु शिष्य थे तथा राजा महाराजा आदि अनेक गृहस्थ शिष्य भी थे। वे लोग एक बार उनके पास गये तथा उनसे प्रार्थना की वह उनका आश्रम सुन्दर रूप से निर्माण कराना चाहते हैं। आचार्य ने उनका आग्रह देखकर स्वीकृति दे दी। शिष्यों ने आश्रम में खूब सुन्दर-सुन्दर कमरे बनवाये। फिर उनकी अनुमति लेकर आश्रम में श्रीठाकुरजी, भक्तों तथा अतिथियों की सेवा का प्रबन्ध किया। इस तरह बहुत से साधुजन तथा अतिथि आने लगे और इस तरह नियम से उनकी सेवा आरम्भ हो गई। उनके शिष्यों (साधु) को भी सेवा में लगे रहना पड़ा। बहुजन समागम के कारण आश्रम में शोर

रहता, अतः वे लोग भजन भी अच्छी तरह नहीं कर पाते। एक दिन सब शिष्यों ने परामर्श किया कि वह लोग गुरुदेव से जाकर कहेंगे कि हमारा यहाँ भजन नहीं हो पा रहा है, इस कारण कहीं निर्जन में जाकर हम लोग भजन कर सकें, ऐसी वह व्यवस्था करें। इस तरह निश्चित कर वे लोग मिलकर श्रीगुरुदेव के पास गये तथा कहने लगे–'महाराज जी ! हम सब संसार छोड़कर आये हैं, यहाँ भी प्रपंच लगा दिया, यहाँ भजन बिल्कुल नहीं होता है, भजन जंगल में ही हो सकता है। अतः इस प्रपंच को छोड़कर जंगल में ही जाना उचित है।' उनकी यह बात सुनकर गुरुदेव ने कहा–'मैं तो इच्छा करके कुछ भी नहीं ले आता हूँ, सर्वेश्वर भगवान की ऐसी इच्छा है तो क्या करूँ?' गुरुदेव की यह बात सुनकर शिष्यों को सन्तोष नहीं हुआ। तब गुरुदेव ने उनकी ऐसी भावना समझते हुए कहा–अच्छा बाबा ! तुम सबको जंगल में भजन करने की इच्छा है तो चलो।' यह कहकर वे सर्वेश्वर भगवान को लेकर शिष्यों सहित आश्रम त्यागकर दूर एक जंगल में गये। थोड़ा-सा स्थान साफ करके सबने अपने-अपने आसन जमा लिए एवं भगवान सर्वेश्वर की स्थापना करली। उस जगह से आबादी काफी दूर थी।

शिष्यों ने सोच लिया कि गाँव से भिक्षा ले आयेंगे और उससे भगवान का भोग लगाकर सब प्रसाद ग्रहण कर लेंगे। इधर एक राजा घोड़े पर चढ़े शिकार के लिए उस जंगल में आ पहुँचे। मृगया के समय एक हिरण इधर भागकर आया था, अतः राजा उसका पीछा करते हुए यहाँ तक आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि कुछ साधु ऐसे घने जंगल में भजन में लीन बैठे हैं। गुरुदेव की दीर्घ जटा-जूट तथा मनोहर काम्तिपूर्ण मूर्ति को देखकर राजा उनके समीप गये और कहने लगे–"प्रभु ! आप अपने शिष्यों सहित इस घने जंगल में भजन कर रहे हैं, पास में कोई गाँव भी नहीं है, भोजन का प्रबन्ध कैसे होगा?"

इस पर उन्होंने उत्तर दिया–'हमने यह सोचा है कि दूरवर्ती ग्राम से भिक्षा लाकर भगवान का भोग लगायेंगे और उसी से सब प्रसाद ग्रहण करेंगे।' तब राजा बोले–'आपकी सेवा करने की मेरी इच्छा है, यदि आप उसे ग्रहण करें तो मैं अपने को कृतार्थ मानूँगा।' इस पर उन्होंने कहा–'मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता। मेरे शिष्यों से कहिये, यदि उन्हें स्वीकृत हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।' राजा ने शिष्यों से अत्यन्त कातर भाव से प्रार्थना की, उनकी कातरता देख उन्होंने स्वीकृति दे दी। इसी बीच राजा के परिचारकगण आ गए। राजा के आदेशानुसार उन्होंने जो सब खाद्य सामग्री उनके साथ थी, वह साधुओं को अर्पित कर दी। इसके बाद उनकी अनुमति ले राजा ने सर्वेश्वर भगवान के लिए मन्दिर तथा कुछ कमरे बनवाये और भगवान के भोग की समुचित व्यवस्था कर दी गई। फिर तो बहुत से लोग दर्शन करने आने लगे, धीरे-धीरे साधु महात्मा व अतिथि आने लगे। अतः पूर्वोक्त शिष्यों को उनकी सेवा करने के लिए बाध्य होना पड़ा। तब गुरु महाराज ने कहा–'तुम सब भजन के लिए जंगल में आये थे, लेकिन यहाँ भी तो प्रपंच लग गया, अब कहाँ जाओगे बताओ?' तब शिष्यों ने कहा–'महाराज आपकी लीला कौन समझ सकता है। हम लोग अज्ञान हैं, इसीलिए साधु-सेवा के लिए आपत्ति की तथा आपकी इच्छा के प्रतिकूल हम लोग आपको जंगल में लाये तथा आपको कष्ट दिया। आपकी तपस्या के प्रभाव से राजा, महाराज़ा तथा अनेक मनुष्य आकृष्ट होकर आते हैं। अब हमारी समझ में सब आ गया है, आप हमारा अपराध क्षमा करें एवं साधु-सेवा आदि आपकी जो इच्छा हो वही करें।' तब गुरुदेव ने कहा–'बाबा, तुम्हारा अपराध कुछ नहीं है, तुम्हारे मन में जो संशय था, उसे दूर करने के लिए ही मैं तुम लोगों के साथ जंगल में आया, अब तुम्हारा संशय मिट गया है। अतएव

आज से मन लगाकर साधु-सेवा करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा, यह निश्चित समझना।

यह घटना बताकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने कहा–'बाबा! बहुत भाग्य से ही साधु-सेवा का सुयोग मिलता है। भगवत्-सेवा और साधु-सेवा से चित्त निर्मल होता है। फिर भजन-साधन में भी अधिकार होने लगता है। सेवा छोड़कर केवल मात्र भजन करने से अभी तुम्हारा चित्त स्थिर नहीं हो सकता है। इसलिए जितना समय मिलता है, उसी में भजन करो। श्रीभगवत्-सेवा और साधु-महात्माओं की सेवा प्रसन्न, मन से करते रहो, इसी में तुम्हारा कल्याण होगा। श्रीगुरु को जब आत्म-समर्पण कर दिया है तो बिना विचार किये सर्व प्रकार के साधनाभिमान परित्याग कर उनके आदेश का प्रतिपालन करना ही तुम्हारा कर्तव्य है।'

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का उपदेश सुनकर हमारा संशय दूर हुआ और प्रसन्न मन से उनके आदेश पालन में प्रवृत्त हो गए।

साधु-संग और साधु-सेवा के माहात्म्य में उनका हमेशा ही से विश्वास था। जब गृहस्थाश्रम में थे, तब भी वे साधु-सेवा करते थे, यह पहले बताया जा चुका है। अब आश्रम में साधु-सेवा का सुयोग पाकर वह खूब आनन्द से, निष्ठा से तथा प्रेम से साधुओं की सेवा करते। अर्थ के संग्रह की तो उन्हें आवश्यकता ही न थी।

इस प्रकार उनके गुरुदेव के दिये सब वरदान उनके लिए सफल हुए।

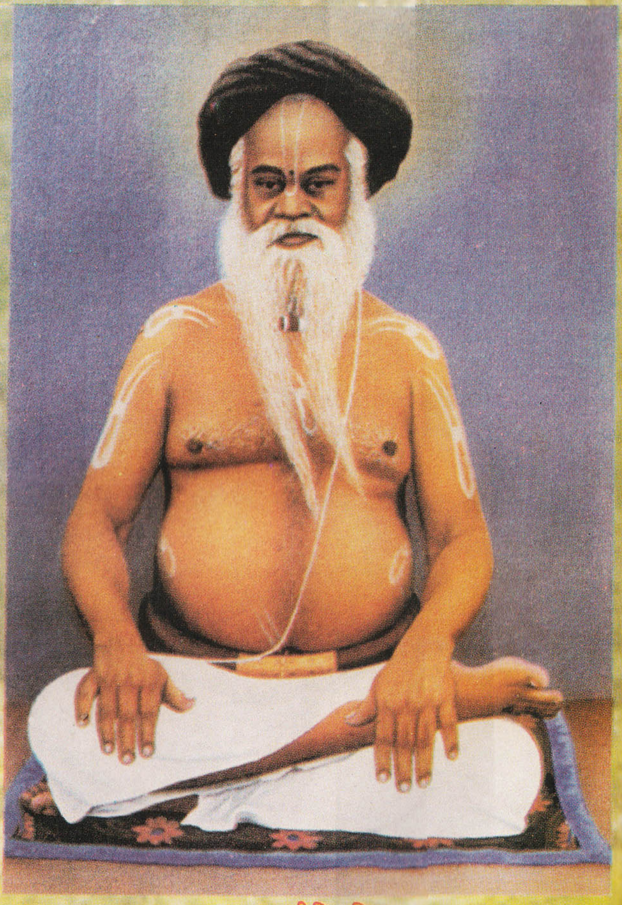

अनन्त श्रीविभूषित
स्वामी धनंजयदास काठिया बाबाजी महाराज

तृतीय खण्ड

प्रथम अध्याय

तीर्थ भ्रमण और दीक्षादान आरम्भ

१९२० ई. में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज, मुरलीदास, द्वारकादास आदि गुरुभाईयों के साथ उत्तराखण्ड के तीर्थ-समूह के दर्शनों को गये। हरिद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला, देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ, बद्रीनारायण आदि स्थानों के दर्शन किये। प्रायः सब रास्ता ही पैदल चलना होता, मोटर बस का तब प्रचलन न था। चलते समय श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ही बड़े उत्साह से सबसे आगे चलते। मुरलीदास पीछे रह जाते, कभी-कभी तो अवसन्न होकर रास्ते ही में बैठ जाते। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज काफी आगे पहुँचकर सबकी प्रतीक्षा करते, फिर सबके पहुँचने पर मालूम होता कि मुरलीदास नहीं आये। फिर बाबाजी महाराज वापस लौटते तथा ममतामयी जननी की तरह उन्हें हाथ पकड़कर लेकर चलते।

बद्रीनारायण जाने के लिये बर्फ पर चलने के लिये एक प्रकार के रस्सी के जूते मिलते हैं, सभी यात्री उसे व्यवहार करते हैं। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने वह भी इस्तेमाल नहीं किये। उन्हें कपड़े के जूते पहने केवल एक बार देखा, वह प्रसंग आने पर बताऊँगा।

उन्होंने उत्तराखण्ड के विषय में बताया-'यह पथ (बद्रीनारायण का रास्ता) देव भूमि है, शुद्ध-चित्त होने से देव-दर्शन होता है, मलिन-चित्त रहने से दर्शन-लाभ नहीं होता है।'

यहाँ के रहनेवालों को देखकर ऐसा लगता है कि यहाँ कलियुग का प्रभाव उतना नहीं है। इस विषय में बाबाजी महाराज ने

एक घटना सुनायी। जब वे बद्रीनारायण से लौट रहे थे तो एक स्थान पर बहुत भीड़ देखी। पूछने पर पता लगा कि एक चोर पकड़ा गया है, उसे देखने के लिये भीड़ इकट्ठी हुई है।

इस तीर्थयात्रा में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का स्वास्थ्य काफी गिर गया था। अर्थाभाव के कारण खाने-पीने का समुचित प्रबन्ध नहीं हो सका। फिर कठोर परिश्रम तो हुआ ही, इससे उन्हें आमाशय का रोग हो गया।इसी अवस्था में अन्य तीर्थ दर्शन करते-कराते वह ज्येष्ठ मास में आश्रम लौटे। तकलीफ काफी बढ़ गई थी, इलाज किया गया, उससे तकलीफ दब अवश्य गई, किन्तु जड़ से नहीं गई। शेष पर्यन्त बीच-बीच में कष्ट होता रहा।

थोड़ा स्वस्थ होने पर ही नासिक के कुम्भ-मेले में जाना पड़ा। वहाँ उनके प्रधान महन्त पद की प्राप्ति आदि के विषय में पहले ही उल्लेख कर चुका हूँ। यहीं कुम्भ-मेले में उन्होंने सर्व प्रथम दीक्षा-दान दिया। सुमित्रादासी नाम्नी एक स्त्री उनके पास आई। कुल-प्रथा के अनुसार ब्रजविदेही महन्त ही से दीक्षा की इच्छुक थी। गरीब होने के कारण वृन्दावन भी नहीं जा पाई, अतः नासिक के कुम्भ-मेले में वह दीक्षा प्रार्थी हुई। फिर बाबाजी महाराज ने उसे यहाँ वृन्दावनवासी श्रीयुक्त प्रतापचन्द्र भट्टाचार्य और ढाका जिले के श्रीयुक्त गुरुचरण राय को सस्त्रीक दीक्षा दी।

माघ मास में श्री श्रीदादा गुरु महाराज का तिरोभाव उत्सव महासमारोह से सम्पन्न करके फिर तीर्थभ्रमण को गये। कुछ दिन पहले पूर्व बंगवासी एक सहवंशी ब्राह्मण किशोर गृह त्यागकर सद्गुरु की खोज में घूमता हुआ उनके श्रीचरणों में आ पहुँचा। दो चार दिन बाद उत्सव के पूर्व दिन उसे दीक्षा दी। दीक्षा के साथ ही साथ श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने उसे वैराग्य प्रदान किया और 'अनन्तदास' नाम

दिया। ये ही प्रथम साधु शिष्य हुए। एक गुर्ज्जर युवक भी दीक्षा प्रार्थी होकर आश्रम में रहते थे तथा उनकी सेवा करते थे। बाद में उनका नाम तिलकदास हुआ। इन दोनों को लेकर इस बार दक्षिण की ओर तीर्थभ्रमण को गये।

श्रीवृन्दावन आश्रम में इस उत्सव के उपलक्ष्य में खूब समारोह होता है। स्थानीय साधु आदि तो आते ही हैं, बंगाल-विहार से भी बहुत से लोग आते हैं। इस वर्ष भी अनेक जन आए। काशी से श्रीमाता ठकुरानी भी आईं। उनके गुरुभाई श्रीयुक्त जानकीनाथ सामन्त अपने घर की महिलाओं तथा श्रीमाता ठकुरानी के साथ श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के साथ तीर्थभ्रमण को गये, इन्होंने ही इस तीर्थयात्रा का भार वहन किया।

सबसे पहले वे भरतपुर गये, यहीं पर सैलानी कुण्ड नामक स्थान पर उनके गुरुदेव को सिद्धि लाभ हुई थी❖ अतः पहले इस कुण्ड के दर्शन किये।

इसी स्थान पर हमारे सम्प्रदाय के एक प्रसिद्ध आचार्य श्रीयुक्त नागाजी महाराज ने श्री श्रीबिहारीजी का विग्रह प्रतिष्ठित किया था। सबने जाकर उनके दर्शन किये। ये श्रीयुक्त नागाजी महाराज हमारी गुरुपरम्परा के चौबीसवें आचार्य हैं। इन्हें भगवान श्रीकृष्ण ने बरसाने के पास कदमखण्डी में दर्शन दिये तथा 'आधापूत आधा दूध' का वरदान दिया। यह घटना श्रीयुक्त बााबजी महाराज द्वारा लिखित उनके गुरुदेव के जीवन-चरित्र ग्रन्थ में सविस्तार वर्णित है। (पृष्ठ १२०-२४)

यहाँ से करौली गये तथा श्री श्रीमदनमोहनजी के दर्शन किये। यह बहुत प्राचीन मूर्ति है। कहा जाता है कि भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र

❖ इस सम्बन्ध में काठियाबाबा द्वारा रचित एक छन्द है–

"राम दास को राम मिला सैलानी को कुण्डा।
सन्तन को सच माने झूँठ माने गुण्डा।।"

राजा वज्र ने इस मूर्ति का निर्माण कराया था, इसका मुखमण्डल और देह का उर्द्धवांश साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण के अनुरूप है। मुखश्री बहुत ही सुन्दर व मनमोहक है।

यहाँ से उज्जयिनी आदि तीर्थस्थान दर्शन करते हुए बम्बई पहुँचे। यहाँ से जहाज द्वारा द्वारका गये। दोनों द्वारका, गोमती द्वारका और बेट-द्वारका जाकर श्री श्रीद्वारकानाथ जी के दर्शन किये। द्वारका हम लोगों के सम्प्रदाय का मुख्य धाम है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज बाद में भी यहाँ एक बार फिर से गये थे जो मैं यथा स्थान उल्लेख करूँगा। बेट-द्वारका में सबने दोनों बाहों पर शंख, चक्र, गदा, पद्म की छाप ली। छाप दो प्रकार की होती हैं। एक तो लौहनिर्मित क्षुद्राकार शंख, चक्र, गदा, पद्म को तप्त करके बाँह पर चिन्ह अंकित किये जाते हैं, इसे तप्तमुद्राधारण कहते हैं। दूसरी केवल चन्दन से छाप देते हैं। ऐसा कहते हैं। जिसके शरीर पर यह चिन्ह होते हैं, उस पर यमदूत अधिकार नहीं जमा सकते हैं। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के शरीर पर तप्त मुद्राधारण के चिन्ह हमने भी देखे।

द्वारका से पोरबन्दर, जूनागढ़ होते हुए गिरिनार जाकर दत्तात्रेय के पादपद्म-दर्शन कर सब लोग प्रभास गये। सिद्धिपुर कपिलदेव के जन्मस्थान दर्शन करते हुए पुष्कर गये। वहाँ सरोवर में स्नान करके सावित्री पहाड़ पर चढ़े, वहाँ सावित्रीदेवी व ब्रह्माजी के दर्शन किये। यहाँ का प्रधानतीर्थ श्रीरंगम् है। श्री श्रीरंगनाथजी का दर्शन करके सेतुबन्ध रामेश्वर की यात्रा की। इस प्रकार भारतवर्ष के दक्षिण भाग की यात्रा की। इसके बाद वैशाख मास में उज्जैन में कुम्भ-मेला था, वहाँ उनकी उपस्थिति अनिवार्य थी, इस कारण वह चैत्र मास के तृतीय सप्ताह में आश्रम लौटे। रास्ते में दक्षिण मथुरा (आधुनिक नाम मदुरा) में मीनाक्षी देवी का दर्शन किया।

आश्रम लौटकर चार-पाँच दिन बाद ही उज्जयिनी गये। कुम्भमेले के प्रथम स्नान के दिन वहाँ पहुँचना जरूरी था। यहाँ वे चारों सम्प्रदाय के प्रधान महन्त के रूप में एक मास तक रहे। इस मेले में समवेत साधुओं ने तथा ग्वालियर के महाराजा ने उनके प्रति गम्भीर सम्मान प्रदर्शित किया।

कुम्भ समाप्त होने पर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज पुरीधाम गये। वह वहाँ दो महीने जटिया बाबा के समाधि मन्दिर में रहे। यह श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी प्रभु का समाधि मन्दिर है। इस समय बहुतों ने उनसे दीक्षा ली। श्रावण महीने में वृन्दावन के लिये रवाना हुए। रास्ते कलकत्ता में श्रीयुक्त मोहनीमोहन चक्रवर्ती के यहाँ भी कुछ दिन रहे तथा बहुतों को दीक्षा दी। झूलन पूर्णिमा के करीब वृन्दावन वापस लौटे।

इसके बाद भी वह दो बार तीर्थभ्रमण को गये। दोनों बार उत्तरभारत के सब तीर्थ दर्शन किये। इसके अलावा भी वह पहले तथा बाद में कई बार तीर्थभ्रमण को गये। उनके तीर्थ दर्शन की भी एक और विशेषता थी। हम लोग यदि किसी तीर्थ स्थान में जाते हैं तो वहाँ जो कुछ द्रष्टव्य होता है, सभी कुछ देखना चाहते हैं। यदि समयाभाव व अर्थाभाव से कुछ नहीं देख पाते हैं तो इसका मन में दुःख रहता है। लेकिन उनका इस प्रकार का भाव नहीं था। तीर्थदर्शन करते समय वह मुख्यधाम ही के दर्शन करते थे, उससे सम्बन्धित जो छोटे-छोटे तीर्थ स्थान होते, उनके प्रति उनका लक्ष्य नहीं रहता था। यदि दर्शन हो गये तो भी ठीक, नहीं हुए तो भी कुछ दुःख नहीं। परिपूर्ण तृप्ति का भाव ही सदैव चित्त मे रहता था। उनकी दृष्टि सदा मूल वस्तु की ओर ही रहती थी। असली कार्य को भक्तिपूर्वक करते थे, ऊपरी विषयों के प्रति उनका मनोयोग नहीं रहता था। जितना हो जाता, उसी में वह पूर्ण सन्तुष्ट होजाते थे। परवर्ती जीवन में जब उनके अनेक शिष्य हो गये

थे, तब वे उन लोगों को तीर्थ-दर्शन के लिये खूब उत्साहित करते। साधु शिष्यों को स्वयं अर्थ देकर तीर्थ दर्शन के लिये भेजते थे। हमारे एक गुरुभाई ने बताया-'मैं काशीधाम थोड़े समय के लिये ही रुका था, चक्रतीर्थ का दर्शन नहीं कर सका, इस कारण मन में दुःख हुआ तथा अपराधी का-सा भाव रहा। वहाँ से लौटकर बाबाजी महाराज को पत्र लिखा तथा इस विषय में भी उन्हें लिखा। उन्होंने उत्तर दिया-"तुम चक्रतीर्थ नहीं जा पाये, इसमें कुछ दोष नहीं हैं। सब तीर्थो में ही भगवत् आविर्भाव है, भक्ति होने पर वे पूर्ण फल देते हैं। तुम चिन्ता मत करो, भगवान अन्तर्यामी हैं, तुम किसी प्रकार का उद्वेग वरण नहीं करो, वह सब जानते हैं, उपयुक्त विधान करेंगे।" मुझे भी उन्होंने इसी प्रकार का उपदेश दिया था। मैं १९३० ई. में कामाख्या तीर्थ गया था, कुछ समय पहले मेरे पैर में चोट लगने के कारण पैर में दर्द रहता था। इस अवस्था में मुझे जाते देखकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने कहा-"यदि तुम पहाड़ पर नहीं चढ़ पाओ तो नीचे ही से प्रणाम कर लेना, वही यथेष्ट होगा। वहाँ सर्वत्र ही देवी का अधिष्ठान है।" यद्यपि मुझे ऐसा करना नहीं पड़ा। थोड़ी चेष्टा करने पर मैं पहाड़ पर चढ़ गया।'

नियमनिष्ठा के लिये भी उन्हें अकारण ही अतिरिक्त कठोरता अवलम्बन करना पसन्द नहीं था। बहुत से ऐसे आचारनिष्ठ व्यक्ति होते हैं, जो नल का पानी नहीं पाते, रेल में दो-तीन दिन का सफर होने पर स्नानाहार आदि नहीं करते हैं। यह सब व्यवहार ठीक हैं, लेकिन उस सीमा तक करना चाहिये कि उसका मूल उद्देश्य ही व्यर्थ न हो जाये। विशेष दिनों शास्त्रों मे भी उपवास की व्यवस्था है। उपवास का अर्थ अनशन नहीं है, उप (समीप) वास अर्थात् ध्यान, जप द्वारा ईश्वर सान्निध्य अनुभव की चेष्टा, भोजन नहीं करने अथवा थोड़ा खाने से देह व मन हल्का रहता है। लेकिन यदि अनशन द्वारा हमारी

शारीरिक शक्ति का ह्रास हो तो मन व मस्तिष्क अवसन्न हो जायेंगे और इस तरह ध्यान और जप करने की शक्ति भी नहीं रहेगी, सो ऐसा उपवास करना तो व्यर्थ ही है। इसी कारण ऋषिगणों ने शास्त्रों मे असमर्थ के लिये अनुकल्प का उपदेश दिया है। तीर्थदर्शन के लिये जाने पर यदि यात्रा ही में शरीर इतना क्लान्त हो जाये कि वहाँ जाकर तीर्थ का प्रभाव समझने तक की सामर्थ्य तक न रहे तो तीर्थ जाना एक प्रकार से निष्फल है। आचारनिष्ठा के नियमों को कठोरता से पालन करने में भी शरीर अस्वस्थ हो जाता है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज तीर्थ स्थान पर जाकर अधिक जप करने का उपदेश देते थे, लेकिन वह लघु और गुरु का विचार करके कार्य करने को कहते थे। अर्थात् आचार-नियम की थोड़ी ढील तथा साधन-लाभ दोनों में जो तुलनात्मक लाभकारी हो, वही विवेचना करके काम करना चाहिये। उन्होंने अपने गुरुदेव के जीवन-चरित्र वाली पुस्तक में लिखा है–"गुरुदेव ने रेल यात्रा में शरीर रक्षा के लिये आपत्-धर्म अवलम्बन करना दोषपूर्ण नहीं माना। समयानुसार वे गाड़ी में भी हम लोगों के साथ फल आदि ग्रहण कर लेते थे।" श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का भी यही अभिमत था। वैसे वह जहाँ तक होता, ऐसी ट्रेन से जाते थे, जो अभीष्ट स्थान पर सुबह ही पहुँचती हो। सुबह शौच, स्नान आदि से निवृत्त होकर भगवत्-ध्यान करके थोड़ा सा प्रसाद पाकर सारे दिन के लिये शरीर व चित्त प्रफुल्लित रहता है और तीर्थ-भ्रमण के लिये मन की ऐसी अवस्था आवश्यक है।

१६२१ ई. में पौष के महीने में पशुपतिनाथ के दर्शन के लिये नेपाल गये। इस बार उनके साथ उनके गुरुभाई राधेश्यामदासजी, अनन्तदासजी तथा एक दो साधु गये। रास्ते में छपरा व समस्तिपुर में कुछ दिन ठहरे तथा नेपाल महाराज के पुत्रों के गृह-शिक्षक के यहाँ भी ठहरे। वह उनको राजा के गैस्ट-हाउस में ले गये तथा उनकी समुचित

अभ्यर्थना की। वहाँ एक निकटवर्ती आश्रम के साधु-संन्यासी भी उन्हें कुछ दिनों के लिये आश्रम मे ले गये। एक दिन नेपाल महाराज अपने राज-पण्डित के साथ उनके दर्शनों को गये तथा अध्यात्मतत्त्व विषयक बहुत से प्रश्न किये, उनके उत्तर सुनकर वे दोनों श्रद्धा से अभिभूत हो गये। यहाँ से मानस-सरोवर जाने की उनकी इच्छा थी, किन्तु आमाशय के रोग के कारण श्रीअनन्तदासजी ने इस कार्यक्रम को स्थगित करने का अनुरोध किया। अनिच्छापूर्वक उन्होंने यह अनुरोध माना। कुछ दिन वहाँ रहकर समस्तिपुर लौट आये। वहाँ से वह अपने गुरुभाई श्रीयुक्त सारदाप्रसन्नदास के नये घर के गृह-प्रवेश तथा श्री श्रीठाकुरजी की चित्र प्रतिष्ठा के लिये विशेष रूप से निमंत्रित होकर कलकत्ता गये। वहाँ खूब आनन्दोत्सव रहा। उनके इस अवस्थाकाल में बहुतों ने उनके श्रीचरणों का आश्रय लाभ किया। कुछ दिन वहाँ रहकर चित्रकूट दर्शन करते हुए झूलन-उत्सव से पहले वृन्दावन लौटे।

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस बार भी ब्रज-परिक्रमा में गये। वहाँ से लौटकर कुछ महीनें आश्रम में रहे। फाल्गुन मास के द्वितीय सप्ताह में ज्वालामुखी की ओर यात्रा की। इस बार उनके साथ उनके दक्षिण भ्रमण के साथी श्रीयुक्त जानकीनाथ सामन्त, उनकी स्त्री, श्रीअनन्तदासजी तथा कमलदासजी नामक रामानन्दी साधु थे। यह स्थान बहुत ही सुन्दर है, देवी भी खूब जाग्रत है। अग्निशिखा का ताप भी कम है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने लोटे में दूध लेकर अग्निशिखा के पास खड़े होकर निवेदित किया। उनकी यात्रा के साथियों के अनुसार अग्निशिखा लोटे में प्रविष्ट हुई तथा कुछ देर बाद बाहर निकली। इसी प्रकार पेड़े का भोग लगाने पर पेड़ा कुछ कृष्णवर्ण का हो गया। फिर सबने वह दूध और पेड़ा प्रसाद ग्रहण किया। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने उस समय कहा, "यह बड़ा सुन्दर स्थान है। यहाँ देवी जाज्वल्यमान है। यहाँ की

कथा मेरे गुरुदेव ने बतायी थी। वह मुझे इस स्थान पर लायेंगे यह वर मुझे मिला था, सो वह वर आज पूरा हुआ।"

इसके बाद 'रोयालसर' की यात्रा शुरु हुई। दो दिन बाद ही चिंतापूर्णी स्थान पर पहुँचे, वहाँ चिन्तापूर्णी देवी के दर्शन किये। जनश्रुति के अनुसार देवी के दर्शन करने से सब मनस्कामनायें पूरी होती हैं। दो दिन वहाँ रहने के बाद सब लोग मागुही की ओर चले। रास्ते में यातायात के साधन घोड़ा-गाड़ी तथा बैल गाड़ी थे। रास्ते में एक बार घोड़े का पैर फिसल जाने से श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का तांगा उलट गया। श्रीअनन्तदासंजी, कमलदासजी व बाबाजी महाराज सभी गिर गये। बाबाजी महाराज के थोड़ी चोट भी लगी। जब उन्होंने जाकर उन दोनों को उठाया तो कहा, "बाबा ! आज मृत्यु योग सरीखा था, सो भगवान् ही ने रक्षा की। घोड़े के पैर में भी चोट लग गई थी, इसलिये सबको लेकर वे पैदल ही चले। प्रायः पाँच कोस एक स्थान पर पहुँचे, वहाँ रसोई बनाकर श्री श्री ठाकुरजी का भोग लगाया गया तब सबने प्रसाद पाया। जहाँ-जहाँ इस तरह विश्राम होता था, वहाँ श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ही सबसे पहले पहुँचकर सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी करते थे, फिर चूल्हा तैयार करते तथा रसोई बनाने को कहते थे। कभी-कभी सब लोग थककर लेट जाते थे, लेकिन वह अक्लान्त भाव से सब प्रबन्ध करते थे, आलस्य तो उनमें तनिक भी नहीं था।"

उस दिन रात को वहाँ ठहर कर अगले दिन फिर ताँगा-यात्रा आरम्भ हुई। चार बजे मागुही पहुँचे, रोयालसर वहाँ से दस मील था। जब ये लोग मागुही मे थे, तभी वृष्टि आरम्भ हो गई, बाध्य होकर दो दिन वहाँ ठहरना पड़ा। तीसरे दिन दो पहाड़ी लड़कों के सर पर सामान लदवाकर पैदल रोयालसर के लिये चले। रास्ते में जोर की बारिश शुरु हो गई और बर्फीली हवा चलने लगी। दोनों पहाड़ी पीछे

रह गये, सब अन्दाज से चलते गये। अनन्तदासजी और कमलदासजी आगे बढ़ गये। शाम को वृष्टि के साथ बरफ भी गिरने लगी। ये दोनों ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ रास्ता बहुत सकरा था, बहुत ही सावधानी से पार करना था। अनन्तदासजी ने सोचा' गुरुजी इस अवस्था में यहाँ कैसे आ पायेंगे, वृद्ध शरीर है, अन्धकार भी हो गया है, रास्ता भी ऐसा है।' इस आशंका से वह रोते-रोते वापस लौटे। थोड़ी ही दूर जाकर देखा कि बाबाजी महाराज निर्भीक भाव से चले आ रहे हैं। अनन्तदासजी ने कहा, 'बाबा अन्धकार हो गया है, सामने का रास्ता भी बहुत सकरा है। मैं आपको साथ लेकर जाऊँगा।' श्रीयुक्त बाबाजी महाराज बहुत प्रसन्न होकर बोले, 'चलो ! तुम मेरे साथ चलो, मैं भली प्रकार चला जाऊँगा।' दोनों साथ-साथ चले, उस स्थान पर पहुँचने, श्रीयुक्त बाबाजी महाराज भली-भाँति पार हो गये। श्रीभगवान् की कृपा से अन्य लोग भी वह स्थान पार कर गये।

चार दण्ड बीत जाने पर सब लोग रोयालसर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर एक ब्राह्मण के यहाँ आश्रय ग्रहण किया और उनसे कुछ लकड़ियाँ माँगी। फिर आग जलाकर सबने अपने कपड़े सुखाये तथा हाथ पैर सेंके। थोड़े समय के बाद उन लोगों के शरीर में गरमी आई। ब्राह्मण ही ने पूरी-साग भी लाकर दिया, उससे श्रीठाकुरजी का भोग लगाकर सबने प्रसाद ग्रहण किया।

दूसरे दिन रोयालसर में सबने जाकर स्नान किया। इस सरोवर के चारों ओर पहाड़ है। भूटिया (भूटान निवासी) लोगों के यही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। यह स्थान लोमश ऋषि की तपस्या भूमि है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज यहाँ दो चार दिन रुकना चाहते थे, किन्तु साथ के लोगों को वहाँ रहना बहुत क्लेशदायक लग रहा था, सो वह शीघ्र

लौटने को राजी हो गये। वहाँ एक दिन ठहरकर सब मागुहो लौट आए। वहाँ से दूसरे रास्ते से अन्य तीर्थ-दर्शन करते हुए अमृतसर पहुँचे।

यहाँ से जानकीबाबू अपनी पत्नी के साथ वापस लौट गए। बाबाजी महाराज यहाँ कुछ दिन रहकर अनन्तदासजी और कमलदासजी के साथ नारायणसरोवर के लिए मरुभूमि से 'सन्डाबन्दर' नामक स्थान पहुँचे। यहाँ की हिन्दू जनता बाबाजी महाराज की ओर बहुत ही आकर्षित हुई तथा उनकी सेवा करने लगी।

यहाँ से 'नारायणसरोवर' जाने के दो रास्ते हैं-एक स्थल-पथ दूसरा जल-पथ। स्थल-पथ का रास्ता काफी दुर्गम है तथा राह में पानी का भी अभाव था सो नौका ही से जाने का निश्चय किया। लेकिन नौका के लिए भी काफी दूर पैदल चलकर वहाँ पहुँचना होता है। रास्ते के लिए कुछ चिड़वा तथा पानी लेकर शाम तक घाट पर पहुँचे तथा एक नौका ठीक करली। उस रात को वहीं ठहरे दूसरे दिन सुबह यात्रा आरम्भ हुई, हवा का वेग मन्द होने के कारण नाव की गति भी धीमी ही रही। उस दिन अनाहार ही रहना पड़ा। रास्ते में भी एक दिन रुकना पड़ा। इस तरह लगभग चार दिन बिना कुछ खाये पिये रहना पड़ा। पाँचवे दिन रात के आठ बजे 'लखपत' शहर से एक मील दूर घाट पर नौका पहुँची। अनाहार के कारण अनन्तदासजी व कमलदासजी की बहुत ही शोचनीय अवस्था थी, लेकिन बाबाजी महाराज को देखकर ऐसा नहीं लगा कि उनको भी कुछ क्लेश हो रहा है, वह सदा की भाँति निर्विकार थे। उन्होंने इन लोगों से कहा, 'बाबा, सब तीर्थ-दर्शन भलीभाँति हो गये यही अन्तिम तीर्थ है, भगवान् परीक्षा ले रहे हैं, उन्हीं का नाम स्मरण करो।'

नई जगह और रात्रि का समय था, माझी से शहर तक साथ चलने को कहा लेकिन वह चलने को तैयार नहीं हुआ। इसी समय अनन्तदासजी को कुछ हिम्मत आ गई, सामान कन्धे पर लादकर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का हाथ थामकर चल दिये। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज उनके इस काम से बहुत प्रसन्न हुए। रास्ते में एक कुँआ देख सबने पहले भर पेट पानी पिया। शहर में सब दुकानें बन्द हो चुकी थीं। किसी तरह एक दुकानदार को जगाकर वहाँ से कुछ मिठाई खरीदी, उसे खाकर वहीं बाहर ही लेट गये। दूसरे दिन नित्यक्रिया के पश्चात् वे एक रामानन्दी आश्रम में गये तथा वहाँ दो दिन ठहरे। नारायणसरोवर वहाँ से पाँच कोस पर था। इस तरह दो दिन विश्राम करके नारायणसरोवर गये और वहाँ भी एक साधुओं के आश्रम में ठहरे।

भारतवर्ष के चार प्रसिद्ध सरोवरों में से यह एक सरोवर है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने इस सरोवर की विशेष प्रसंशा की। इतना कष्ट उठाकर जब वह वहाँ पहुँचे तो बहुत ही तुष्टि हुई तथा स्थानविशेष का महात्म्य भी अनुभव किया। यहाँ से फिर दूसरी बार बेट द्वारका गये। वहाँ तीन दिन ठहरकर आश्रम लौट गये।

इस प्रसंग में एक बात और स्मरणीय है। भारत के बहुत से तीर्थ स्थानों में स्नान ही प्रधान कार्य है। तीर्थ की पावनी शक्ति देह, मन को पवित्र करती है, तो उस शक्ति के प्रति यह प्रार्थना करके 'मैं बहुत दूर से अनेक कष्ट करके तुम्हारे निकट आया हूँ, माँ मेरा अन्तर तथा बाहर शुद्ध करना' फिर प्रणाम करके स्नान करने का उपदेश श्रीयुक्त बाबाजी महाराज सदैव देते थे।

द्वितीय अध्याय

प्रश्नोत्तर

प्रश्न-एक दिन इन्होंने जिज्ञासा की-'श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय अध्याय में तेतीसवें व चौंतीसवें श्लोक में भगवान ने कहा है-

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।।
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।

इसमें क्या सामंजस्य है? पहले तो कहते हैं-'निग्रहः किं करिष्यति?' दूसरे श्लोक में कहते हैं-'तयोर्न वशमागच्छेत्?' अतः इसमें कुछ संशय है।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने जो कुछ उत्तर में कहा उसका सारांश यहाँ लिख रहा हूँ, जो कि सबके लिये उपयोगी होगा। उन्होंने कहा यथार्थ इन दोनों उक्तियों के बीच कोई विरोध नहीं है। प्रकृति को बाधा देने की चेष्टा को भगवान निष्फल बताया है, क्योंकि उन्होंने और भी कहा है-

मिथ्यैव व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। इत्यादि

वरंच अपनी-अपनी प्रकृति के अनुरूप स्वाभाविक कर्म करने को ही कहा, जैसे-

स्वभावनियतं कर्मं कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।
सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।। इत्यादि

अब यह देखना है कि क्या निषेध किया है। 'तयोनैवशमागच्छेत्' इस वाक्य में 'तयोः' पद द्विवचन है, यह प्रकृति के लिये नहीं कहा गया है, वरन् राग और द्वेष के लिये कहा गया है। इन्द्रियों से तो स्वभावजात कर्म करना ही होगा, लेकिन वह कर्म अपने सुख के लिये नहीं, वरन् रागद्वेष-रहित होकर निष्काम भाव से, भगवत्-सेवा के लिये करना होगा। 'राग द्वेष विमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रिचैश्चरण। आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति' 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः' इत्यादि वाक्यों में भी यही कहा है। अपने-अपने कर्म किस प्रणाली से किये जाने पर उनसे श्रेय लाभ हो सकता है, यह बताते हुए उन्होंने कहा है–

स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।।
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य' यही ध्यान देने का विषय है। समस्त प्राणियों के सब कामों के प्रेरक वही हैं। प्रकृति के वशीभूत हो विशेष-विशेष भाव से जो करना होता है, वह उन्हीं की प्रकृति है। 'स्वकर्मणातमभ्यर्च्य' प्रत्येक कर्म द्वारा उन्हीं की अर्चना हो रही है, यह समझते हुए यदि काम किये जायें तो चित्त निर्मल होता है तथा सिद्धि लाभ हो सकती है।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के मैमनसिंह के आवास काल (१९३२ ई.) में वहाँ के वकील श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र ने उनके कुछ उपदेश लिपिबद्ध किये थे। उनमें से दो-चार उपदेश अधोलिखित हैं–

प्रश्न-गृहस्थ के लिये भगवान के दर्शन-लाभ का क्या उपाय है? जब कि यह असम्भव ही लगता है।

उत्तर-जिस लक्ष्य पर संन्यासी पहुँच सकते हैं, उसी लक्ष्य पर गृहस्थ भी पहुँच सकते हैं। लेकिन दोनों में भेद है। हमारे बाबाजी महाराज एक गल्प कहते थे। एक राजा ने अपनी पुत्री के विवाह के लिये एक शर्त रखी थी कि जो कोई गरम उबलते हुए तेल की कढ़ाही मे डुबकी लगा सकता है, वही उसको प्राप्त कर सकता है। एक राजा का लड़का उससे प्रेम करता था, लेकिन उसे प्राप्त करने का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। अन्त में वह प्राण त्याग करने के लिए वन में गया, वहाँ उसे एक संन्यासी मिला। उन्हें उसने अपने मन की व्यथा बताई। उन्होंने उस उबलते हुए तेल में डुबकी लगाकर राजकुमारी को प्राप्त करके उस राजकुमार को दान कर दिया। सो संन्यासियों को इस प्रकार असाधारण ऐश्वर्य लाभ हो जाता है जो गृहस्थियों को नहीं होता है। गीता में भगवान ने कहा है 'अभ्यास योगेन ततो मामिच्छाप्तुं' (अभ्यास योग से मुझे प्राप्त करने की चेष्टा करो)-एक घण्टा, दो घण्टा बैठकर अभ्यास करना चाहिये। किन्तु वह हो नहीं पाता है, कारण मन तो विषय मग्न रहता है, इसीलिये कहा है "अभ्यासेऽप्य समर्थोऽसि मत्कर्म परमो भव।"-यदि अभ्यास करने में असमर्थ हो तो सेवा-भाव अपनाओ अर्थात् सब प्राणियों में मैं हूँ यह समझकर सबकी सेवा करो, तुम्हारी सेवा करना मेरा कर्तव्य है, यह समझकर कर्म करना चाहिये। जिस प्रकार प्रभु की सेवा सेवक करता है, उसी प्रकार सबकी सेवा यत्नपूर्वक करनी चाहिये तभी वह प्रकट होंगे।

प्रश्न-विधवा के लिये किन नियमों का पालन करना उचित हैं?

उत्तर-भगवान जिससे प्रसन्न हों वही करना चाहिये। थोड़ा

ध्यान करके यह सोच लिया कि भगवान प्रसन्न हो गये सो यह बात नहीं है। उन्होंने जिस अवस्था में रखा है, उसी अवस्था में सेविका भाव से सबके साथ व्यवहार करने से वे संतुष्ट होते हैं। स्त्री व शूद्र उन्हें सहज ही में प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि सेवावृत्ति इन दोनों का स्वाभाविक गुण है। सबको भगवान का रूप समझकर उसी भावना से सबके प्रति व्यवहार करें। इस प्रकार सबका स्नेहपात्र होने पर ही भगवान प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार संसार मे भी सुख और शान्ति मिलेगी। हमारे ऋषियों ने भी यही कहा है।

प्रश्न-प्रकृत शान्ति किस प्रकार मिल सकती है?

उत्तर-अमृत सागर के बिना शान्ति कहाँ हैं? उसे ही प्राप्त करके तुम आनन्दमय हो सकते हो। शास्त्रों के अनुसार कुछ भी स्थायी नहीं है, बराबर परिवर्तन होता रहता है। शिशु बालक होता है, बालक युवक होता है और युवक वृद्ध होता है। इस समय आपकी देह में जो अणु-परमाणु हैं, बारह वर्ष बाद वह कुछ नहीं रहेंगे। जो खुद ही स्थायी नहीं हैं, बराबर परिवर्तन होता रहता है, उसकी आशा त्याग करके उसके भीतर जो स्थायी वस्तु है, उसे यदि प्राप्त कर सको तभी शान्ति व आनन्द मिलेगा। गुलाब का उदाहरण ही लो-आपके पास गुलाब की कली है, वह खिली और सूख गई फिर भी आप उसे गुलाब ही कहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ही तो हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। गुलाब के गुण सब बदल गये, लेकिन फिर भी उसको गुलाब कहते हैं, क्योंकि उसकी जो असली वस्तु है, वह नहीं जा सकती है, वह वस्तु तो सदा नित्य है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। आपके भीतर कितने परिवर्तन हो रहे हैं, लेकिन फिर भी आप कहते हैं कि आप ठीक हैं, सो यही स्थायी वस्तु है। शास्त्र कहते हैं-

"ईशा वास्यमिदं सर्वम्"

जो फूल में हैं वह आप में भी हैं। यदि आप उसे पा सकें तभी शान्ति मिलेगी। फिर भी मनुष्य सोचता है यदि रुपया हो, मकान हो तो सुख-शान्ति मिलेगी। स्त्री, कन्या, पुत्र, धनदौलत कोई वस्तु आपको शान्ति नहीं दे सकती है। अनित्य वस्तु से क्या कभी शान्ति मिल सकती है?

हमारे गुरुभाई रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट जज श्रीयुक्त शचीन्द्रकुमार सैन ने भी उनके बहुत से उपदेश लिपिबद्ध किये थे, उनमें से कुछ अधोलिखित हैं–

प्रश्न–सांसारिक आपदाओं में चित्त स्थिर क्यों नहीं रहता है?

उत्तर–मैं स्वयं सब कुछ कर रहा हूँ, यह सोचकर इस प्रकार ही होता है। यदि मन में यह विश्वास आ जाये कि सब कुछ भगवान कर रहे हैं तथा मै तो उनका सेवक मात्र हूँ, वह जो करवायेंगे वही होगा, जैसा रखेंगे वैसा रहूँगा तो मन में शान्ति रहेगी। राजा नल की कथा पढ़ी है ना? उन्होंने कितने दुःख उठाये। भगवान सब करा रहे हैं, यह सोचकर उन्हें शान्ति रहती थी। अन्त में उन्होंने सब कुछ फिर से प्राप्त किया।

प्रश्न–संसार में कोई सुखी है?

उत्तर–कोई सुखी नहीं है। करोड़पति व भिखारी जिससे भी पूछो वही कहेगा मै बहुत दुःखी हूँ। तुम लोग जिसे सुख समझते हो वह यथार्थ में सुख नहीं है। सिनेमा व थियेटर देखने से जो सुख व आनन्द मिलता है वह क्षणिक है।........रुपया पाकर भी सुख नहीं मिलता है। क्योंकि रुपया भी तो हमेशा नहीं रहेगा। ग्रीस देश में 'विज्ञ सोलोन' (Solon the wise) की एक कहानी है। Croasus नामक एक राजा

जो अत्यन्त वैभवशाली थे, सोलोन को अपने यहाँ महल में ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपना ऐश्वर्य दिखाया, फिर उनसे पूछा कि संसार में आप किसको सबसे अधिक सुखी समझते हैं। सोलोन ने थोड़ी देर सोचने के बाद एक किसान का नाम लिया। 'उसके बाद कौन सुखी है' यह पूछने पर उन्होंने अन्य किसी का नाम लिया। राजा सोच रहे थे कि इस बार तो वे मेरा नाम लेंगे, लेकिन जब उन्होंने उनका नाम नहीं लिया तो वह पूछने लगे 'मेरे बारे में आपका क्या विचार है?' इस पर सोलोन ने कहा 'I have not Seen Your Last' मैंने आपका आखीरी तो अभी नहीं देखा है—कुछ दिन बाद एक अन्य राजा ने इनको परास्त कर दिया, इनका धन-वैभव सब कुछ छीन लिया तथा फाँसी की बात याद आई तो वह कहने लगे 'Oh Solon, Solon, how lialy Wise thou art !' (हे सोलोन तुम वास्तव में कितने ज्ञानी हो) उनकी यह बात सुनकर प्रहरियों ने जिज्ञासा की कि इसका अर्थ क्या है? तब उन्होंने सब कुछ बताया। विपक्ष के राजा ने सब कुछ सुनकर उन्हें छोड़ दिया।

संसार में कोई स्थायी नहीं है। यदि संसार में स्थायी सुख होता तो इतने महात्मा लोग संसार क्यों छोड़ते। अस्थायी वस्तु तो स्थायी सुख नहीं दे सकती है।

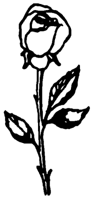

तृतीय अध्याय

साधुसमाज में बाबाजी महाराज

जिन लोगों ने कुम्भ-मेला देखा है तथा भारत के बहुत से स्थान भ्रमण किये हैं वह यह भली प्रकार जानते हैं कि भारतवर्ष में साधु-संन्यासियों का एक वृहत् समाज है। अपने आकार की विपुलता के साथ-साथ भारत के जन-मानस के ऊपर भी इनका असामान्य अधिकार है। इस धर्म-समाज में कुछ दिन पहले तक बंगालियों का कोई स्थान नहीं था, बंगाली इस समाज में हेय समझे जाते थे।

यह अगौरव तथा अमर्यादा श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने प्रायः समाप्त की। इस देश के साधु-समाज में बंगालियों की अवस्था उन्नति की। चारों वैष्णव सम्प्रदायों के वे प्रधान महन्त भी हुए। साधुओं के प्रति उनका आचरण तथा उनके प्रति साधुओं को आचरण में परिवर्तन हुआ है, इस विषय में मैं कुछ आलोचना करना चाहूँगा।

१९२१ ई. से श्रीयुक्त बाबाजी महाराज बराबर ही बंगाल आते रहते थे, पहले तो एक साल के अन्तर में फिर प्रत्येक वर्ष ही आने लगे थे तथा कुछ महीने ठहरते थे। बाकी समय में वे वृन्दावन में रहते थे, स्वस्थ रहने पर ब्रजपरिक्रमा भी जाते तथा कुम्भ मेले में भी उपस्थित होते थे। शायद दो-एक बार नहीं गये थे।

जब वह बंगाल में रहते थे तो अधिकतर साधुओं से उनका साक्षात् नहीं होता था, वृन्दावन अवस्थान के समय में ही हुआ करता था। वहाँ तथा कुम्भ-मेले में जो उनका व साधुओं का पारस्परिक व्यवहार होता, उसे मैंने देखा है, वही मैं वर्णन कर रहा हूँ। साधारण साधु से लेकर उच्चावस्था-प्राप्त साधक व तपस्वी तक, सभी उनको

श्रद्धा करते थे तथा स्नेह भी करते थे। हमारे आश्रम ही में पचास-साठ साधु हमेशा रहते थे। साधु एक स्थान पर अधिक दिन नहीं ठहरते हैं, इसलिये संख्या घटती बढती रहती थी, लेकिन पचास से कम कभी नहीं होती थी। दोनों समय की आरती के पश्चात् जब हम लोग उन्हें प्रणाम करते थे, तब अन्य साधुगण भी उन्हें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते थे। यह केवल शिष्टाचार के कारणवश किया जाता हो यह बात नहीं है, वे लोग यथार्थ श्रद्धा और प्रीतिवश ऐसा करते थे तथा श्रीयुक्त बाबाजी महाराज भी सबको समान स्नेह से आशीर्वाद देते थे।

श्रीवृन्दावन में प्रायः सारे वर्ष ही यात्री आते रहते हैं। अतः ये सब यात्री मन्दिरों के दर्शन करके श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के दर्शन करने आते थे। वृन्दावन में समस्त भारत से साधु-महन्त वगैरह भी आते हैं, वे लोग भी तीर्थ-यात्रियों की भाँति श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के दर्शन करने आते थे। बहुत से लोग अपने संशय-निवारण के लिये आते तथा कुछ लोग साधन-विषयक प्रश्नों की मीमांसा करवाने को आते तथा सब कुछ श्रद्धापूर्वक सुनते। साधुओं में बहुत से उग्र स्वभाव के साधु होते हैं, वे लोग भी श्रद्धा विगलित भाव से उनके उपदेशों को सुनते। एक बार डूँगरपुर के एक तेजस्वी नागा साधु श्रीयुक्त बााबाजी महाराज के दर्शन को आये, उस समय वे आश्रम से सन्निहित बगीचे में टहल रहे थे। उनके एक शिष्य की कमर में काठ की कोपीन को देखकर नागा साधु ने उत्तेजित होकर कहा-"इसे यह काठ का क्यों पहना दिया है? यह मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है। इस प्रकार से क्या लोगों को बताना है कि-'मैं बहुत तपस्या करता हूँ' इससे कुछ लाभ नहीं है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज चुप रहे, कुछ जबाव न दिया। फिर वे लोग आश्रम लौट आये और उनसे कहने लगे-'मेरे बाबा के

दर्शन करने चलिये।' श्रीदादा गुरुजी महाराज के मन्दिर के बरामदे में गये और तब उन्होंने कहा-'मेरे गुरुदेव काठ की कोपीन धारण करते थे।" इस पर नागा साधु कुछ नहीं बोले। बाद में आश्रम के पिछवाड़े के बरामदे में जहाँ पर बाबाजी महाराज बैठा करते थे, वहाँ जाकर बैठे, तब बाबाजी महाराज ने कहा-'इस काठ की कोपीन से साधक का बहुत कल्याण होता है, इससे ब्रह्मचर्य अक्षुण्ण रहता है। स्त्रियाँ इसको देखकर पास आने का साहस नहीं करती हैं। इसके पहने रहने से कुप्रवृत्ति नहीं आती है। इसके अलावा निद्रा और आलस्य कम हो जाता है, खाना भी अधिक नहीं खाया जाता है तो स्वतः ही भजन की ओर मन जाता है। हमारे गुरुजी महारजा ने इसे धारण किया और उनके पूर्ववर्ती बहुत से पुरुषों से यह परम्परा चली आ रही है। साधक के भजन में विशेष रूप से सहायक होने के कारण ही उन लोगों ने इसे धारण किया, वे लोग कितने असाधारण महापुरुष थे।' कहते-कहते उनका स्वर गम्भीर हो गया तथा नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। साधु की ओर देखा तो उनके नयन भी सजल हो उठे। फिर वे कहने लगे-'महाराज मैंने जो कुछ कहा वह अनुचित था। मैं वास्तव मे इसका तत्त्व नहीं जानता था। आप मुझे क्षमा करें।' थोड़ी देर बाद श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने साधु से फिर कहा-'बाबा ! आप अनभिज्ञ थे, इसलिये आपने ऐसा कहा, लेकिन इसके लिये आप दुःखित न हों। लेकिन आज मैं आप से कहना चाहता हूँ कि महापुरुष की निन्दा कभी मत करना।' उन साधु ने हाथ जोड़कर कहा-'महाराज ! आशीर्वाद दीजिये जिससे मेरी यह आदत हमेशा को छूट जाये।'

उच्च साधना-सम्पन्न महात्मा उनसे स्नेह भी करते तथा श्रद्धा भी करते थे। ऐसे मैंने बहुत से दृष्टान्त देखे। हमारे आश्रम में एक

बार एक रामानन्दी सम्प्रदाय के साधु आकर ठहरे थे। उनके विषय में बाबाजी महाराज ने कहा था कि-'वे खूब उन्नत पुरुष हैं।' उनके साथ बात-चीत करके ही लगता कि वह भगवत्-नाम के रस मे डूबे हुए हैं। उनका नाम रामदास था। यह प्रायः नित्य प्रति श्रीयुक्त बाबाजी महारजा को साष्टांग प्रणाम करते तथा पंखा करते थे, कभी-कभी प्रेममविभोर होकर कुछ प्रार्थना-गान भी करते थे।

जयपुर में भी निम्बार्क-सम्प्रदाय के एक पुरातन वृद्ध साधु थे। कुछ समय पहले ही इनका देहान्त हुआ है। जयपुर के महाराज माधवसिंहजी इनका खूब आदर सम्मान करते थे एवं गोविन्दजी के मंन्दिर के पास ही उनके रहने तथा आहारादि की समुचित व्यवस्था कर दी थी। इनका नाम 'कृष्णदासजी' था, किन्तु लोग इन्हें 'सिद्धबाबा' कहते थे। भक्तगण आकर बहुत कुछ चढ़ाते थे। लेकिन ये एक पैसा भी स्पर्श नहीं करते थे। यह अर्थ साधु-सेवा में व्यय कर दिया जाता था।

इनके सम्बन्ध में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने कहा था-'ये सूर्य की उपासना करते हैं, इनकी ग्रह-नक्षत्रादि सम्बन्धी दृष्टि अनेक खुल गई हैं।' (भुवन ज्ञानं सूर्ये संयमात्-पातंजलि सूत्र)

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के प्रति भी इनकी अगाध श्रद्धा व प्रीति थी। बीच-बीच में वे जयपुर से केवल बाबाजी महाराज के दर्शनों को आते थे। जब वह दर्शनों को आते थे, तो दूर से ही-'जय हो महाराज' ! 'जय हो महाराज' कहते हुए आते थे तथा फिर पास आकर दण्डवत् करके बैठते तथा बातचीत करते थे। जिन्होंने इन दोनों को आलाप करते देखा वे भी मुग्ध हो जाते थे।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के देहान्त पर भण्डारे में आने के लिये इन्हें निमन्त्रित किया था। वह यह सम्वाद पाते ही वृन्दावन आ

गये। एकादशी के दिन श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के चित्र की प्रतिष्ठा हुई। उस चित्र को लेकर साधु लोग वृन्दावन में शोभा यात्रा को गये, जब भ्रमण करके हम लोग लौट रहे थे तो किसी ने सिद्धबाबा से जाकर कहा-'श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की मूर्ति लेकर शोभायात्रा चल रही है, आप दर्शन करना चाहें तो चलिये।' वह आवेश में आकर बाहर आये और कहने लगे-'कहाँ है ! कहाँ है !!' मैंने कहा-'यह देखिये' कहते ही उनका मुखमण्डल आनन्द से उद्भासित हो गया तथा गद्‌गद स्वर में कहने लगे-'बलिहारी महाराज ! बड़ा दर्शन दिया। जय हो ! जय हो !!' मैंने पूछा-'बाबाजी महाराज का दर्शन मिल गया?' हँसते हुए कहने लगे-'खूब दर्शन मिल गया। बाबाजी साक्षात् खड़ा है।'

विख्यात संन्यासी भोलानन्द गिरि महाराज की जो श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के प्रति सौहार्द और प्रीति थी, उसका उल्लेख तो पूर्वाध्याय में किया जा चुका है। वैष्णव चार सम्प्रदायों में से अन्य तीन सम्प्रदाय के महन्तगण भी उनको श्रद्धा करते थे। जब-जब वे दर्शन करने आते तो श्रद्धा और विनयपूर्ण व्यवहार करते थे। वह सब बाहरी शिष्टाचारवश नहीं था। उन लोगों की बातचीत व आचरण में श्रद्धा प्रीति उच्छ्वासित होती थी। इस तरह केवल दो-चार महापुरुष ही नहीं करते थे, वरन् समस्त साधु-समाज के ही श्रद्धापात्र थे। इसका प्रथम परिचय उज्जयिनी के कुम्भ मेले में मिला था। अस्वस्थ होने के कारण वे उस बार मेले में नहीं गये थे। श्रीयुक्त अनन्तदासजी को उन्होंने अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। मुझ से भी कहा-'तुम्हें भी कुम्भ-मेले में जाना चाहिये, तुम जाओ' जाते समय मुझसे कहा-'कुम्भ-मेले में समवेत महन्तगणों को मेरा दण्डवत्-ज्ञापन करना।' जब मैं मेले में पहुँचा तो मैंने महन्तगणों को उनका प्रणाम कहा। इस पर वे लोग

विनीत भाव से कहने लगे-'वह हमारे गुरु तुल्य हैं, वह हमें क्यों कर प्रणाम करेंगे, आप जब आश्रम लौटें तो हम लोगों का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम-ज्ञापन करना।'

साधु-समाज ने केवल उन्हें ही समादर से नहीं ग्रहण किया, बल्कि उनके कारण हमें भी प्रीति व आदर मिला। सब लोग हमारे साथ भी सद्वयवहार करते। हमारे अधिकांश साधु गुरुभाई तीर्थयात्रा पर गये और इस तरह भारत-भ्रमण के बीच अनेक स्थानों के साधु-आश्रमों में आश्रय ग्रहण किया। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के नाम के उल्लेख मात्र ही से वे लोग पहचान जाते थे तथा हमें उनका शिष्य जानकर खूब सत्कार करते थे। हम लोग किस जाति या प्रदेश के हैं यह सब उनके लिये कुछ अर्थ नहीं रखता था। आजकल प्रायः देखा जाता है कि बहुत से लोग साधुओं के वेश में घूमते हैं तथा कहीं आश्रय पाकर वहाँ से चोरी करके भाग जाते हैं, इसलिये आश्रम के महन्त सब साधुओं को जब तक कि उनका पूर्ण परिचय नहीं मिल जाये स्थान नहीं देते हैं। किन्तु श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का नाम इतना प्रसिद्ध था कि उनका शिष्य बता देने मात्र से ही अन्य परिचय की आवश्यकता नहीं रहती थी। यहाँ तक कि शिष्यों के अलावा भी अन्य जन उनका नाम बताकर सादर अभ्यर्थना के अधिकारी हो जाते थे।

इस प्रसंग में एक और बात उल्लेखनीय है। उनके साधु-शिष्यों में प्रायः आधे बंगाली हैं। पहले तो हमारे स्पर्श किए हुए भोजन पर भी साधु आपत्ति करते थे। साधु अधिकांश अबंगाली हैं और 'बंगाली मछली खाता है' 'अनाचारी म्लेच्छ' कहकर जाना जाता है, इसलिये उन्हें हेय समझते हैं। साधुओं में एक प्रथा यह भी है कि किसी भी प्रान्त का साधु क्यों न हो जब तक द्वारकाधाम जाकर शंख चक्रादि

मुद्रा (तप्त मुद्रा) नहीं धारण करे, तक तब उसके हाथ का बना हुआ भोजन अन्य साधु लोग ग्रहण नहीं करेंगे। किन्तु बंगाली साधु उक्त चिन्ह धारण कर भी ले तो भी उसके हाथ के खाने के लिये द्विधा रहती है। कुछ समय पहले की घटना है कि हमारे आश्रम ही में एक बंगाली साधु रसोईघर में चला गया, तो रसोईया साधुओं ने आपत्ति की फिर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को बताया गया। वह उठकर रसोईघर में आये तथा रसोईया से दृढ़ तथा मधुर स्वर में कहा-'देख बाबा ! यह भी ब्राह्मण सन्तान है, माता, पिता, आत्मीय स्वजन सब को छोड़कर तुम लोगों के पास आया है। दीक्षा लेकर ब्रह्मचर्य आश्रम ग्रहण कर वैष्णव हो गया है। तुम लोगों के सब आचार पालन कर रहा है, द्वारकाधाम जाकर तप्त मुद्रा भी धारण करके आया है, फिर इसके शरीर मे क्या बंगालीपन लगा है? इसके प्रति ऐसा व्यवहार करना तुम लोगों के लिये उचित नहीं है। अब ऐसा नहीं करना।" रसोइया साधु ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया। पंगत में परोसने के समय में ऐसी घटनाऐं हुई, किन्तु श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने दृढ़ भाव से हमेशा प्रतिकार किया। वह आचार्य, महन्त व स्वयं सिद्ध महापुरुष थे, उनकी बात सभी मानते थे। फलस्वरूप सब आश्रम के उत्सवों में बंगाली साधु खाना बनाते और परोसते तथा अब भी कर रहे हैं, अब कोई आपत्ति नहीं उठाता है।

इस प्रकार साधु-समाज में उनकी प्रतिष्ठा थी।

चतुर्थ अध्याय
श्रीसद्गुरु रूप लीला

श्री श्रीभक्तमाल वर्णित कथानुसार एक वर्द्धमान निवासी दरिद्र ब्राह्मण पैदल वृन्दावन गया तथा श्रीसनातन गोस्वामी से स्पर्शमणि पाकर उसे नदी में फैंक दी, क्योंकि वह तो अलभ्य वस्तु को पाना चाहता था, जिसके समक्ष मणि भी कुछ नहीं है। इसी तरह जब कोई गृहस्थाश्रमी पुरुष जिसके पास धन, मान, सुख और ऐश्वर्य सब कुछ हो तथा फिर वह सर्वस्व त्याग करके पूर्णानन्दमय होकर रहें तो यह सुख ऐश्वर्य देखकर मनुष्य को अवाक् होना पड़ता है तथा कोई इस आनन्द को पाने की इच्छा से उनकी शरण में जाता है कि उसे भी इस पूर्णानन्द का कुछ अंश मिले।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज जब संसाराश्रम में थे तभी बहुत से लोग उनसे उपकृत होते थे। आत्मीय स्वजन सहायता पाते थे, विद्यार्थी आश्रय पाते थे, बहुत से गरीब लोग उनकी ही सहायता से मुकदमे से उद्धार पाते थे, यह सब पहले वर्णित हो चुका है। जब वह यह पार्थिव वैभव त्यागकर वृन्दावन में जाकर रहे, तब भी प्रार्थियों ने उनको नहीं छोड़ा तथा उनके साधन ऐश्वर्य में से कुछ अंश भी बहुत से जन माँगने लगे। यह देश गुरुवाद का देश है। समर्थ गुरु मिलने पर शिष्य को जन्म-जन्मान्तर के पापों से मुक्ति मिल जाती है, यह विश्वास परम्परा सदा की है। उनके अपूर्व त्याग तथा कठोर तपस्या को सुनकर बहुत से लोग उनके ओर दान के प्रार्थी हो गए, पहले तो सबको निराश ही होना पड़ा, क्योंकि श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने १६२० ई. में नासिक

कुम्भमेले में दीक्षा-दान का आरम्भ किया, वहाँ से आकर बहुतों को शिष्य बनाया, यह सब यथास्थान उल्लेख हो चुका है। इसके बाद तो सद्‌गुरु के रूप में उनकी लीला का विस्तार अनन्त है।

साधारणतः सद्‌गुरु कहने से एक शक्तिमान् पुरुष जो अपने तपोबल से शिष्यों का कल्याण कर सके ऐसा ही अर्थ ग्रहण किया जाता है, किन्तु वास्तव में भगवत्-शक्ति विशेष ही गुरुशक्ति है, गुरुदेह इस शक्ति का आधार हैं तथा श्री श्रीसद्‌गुरु की लीला परम्परा साक्षात् श्रीभगवान का ही काज है।

श्री श्रीबाबाजी महाराज ने कहा है-"गुरु केवल एक विशेष देह से आबद्ध नहीं हैं, वह भगवान से अभिन्न हैं। जिस देह का अवलम्बन करके भगवान तुमको उपदेश करते हैं, वह देह तो चिरस्थायी नहीं हैं, उसी के ऊपर केवल गुरुबुद्धि रखने से गुरुतत्त्व प्रकाशित नहीं होता है। X X X हाँ यह देह अवश्य आदरणीय है, कारण इसी के आधारभूत हो गुरु ने तुम पर कृपा की है, किन्तु वह देहमात्र नहीं है, वह तो आत्मस्वरूप सर्वव्यापी पदार्थ है।"(पत्रावली प्रथम भाग पृ.१८)

विश्वव्यापी गुरुशक्ति मनुष्य के जीवन में किस प्रकार कार्य करती है, इस विषय में उन्होंने कहा-'जगत की सृष्टि के साथ ही साथ ब्रह्म ने ब्रह्मवित् गुरु के रूप में आविर्भूत् होकर उनके स्वरूप-प्राप्ति के लिये ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया एवं यह उपदेश उपयुक्त शिष्य में स्फुरण करने की शक्ति गुरु में संचारित की, इस तरह यह शक्ति परम्परागत है। यह परम्परागत शक्ति जिन्हें प्राप्त नहीं हुई है, वह कितने ही ज्ञानी व शक्तिशाली क्यों न हों, शिष्य को मोक्ष मार्ग की प्राप्ति नहीं करवा सकते हैं।'

मोक्षार्थी मानव के उद्धार के लिये श्रीभगवान ने सृष्टि के आरम्भ में स्वयं विभिन्न रूपों में आविर्भूत होकर इस संसार में

गुरुशक्ति की धारा प्रवर्तित की, जो आज भी कार्य कर रही है तथा भविष्य में भी करती रहेगी। इसी की एक धारा श्रीभगवान के हंसावतार द्वारा प्रवर्तित होकर हंस-सम्प्रदाय, सन-सम्प्रदाय अथवा निम्बार्क सम्प्रदाय नाम से प्रसिद्ध हुई। श्री श्रीहंस भगवान ने किस प्रकार आविर्भूत होकर यह सम्प्रदाय प्रवर्तित किया, इसका विशद वर्णन श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के त्रयोदश अध्याय में है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज इसी परम्परा के पचपनवें पुरुष थे।

१९३१ ई. में जब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज श्रीहट्ट जिले के अन्तर्गत हविगंज में थे, तब एक दिन सद्गुरु-विषयक प्रसंग चल रहा था। एक भद्र पुरुष ने उनसे प्रश्न किया था–'यह परम्परागत गुरुशक्ति जिन्होंने लाभ की हो, किन्तु यदि उन्हें स्वयं सिद्धि न लाभ हुई हो तो क्या वे अपने शिष्यों को मुक्तिलाभ करवाने में समर्थ हैं?' उन्होंने उत्तर दिया-'इस प्रकार के गुरु जो स्वयं सिद्ध नहीं हों उनके शिष्यों में गुरुशक्ति संचारित हो जाती है। जिन्होंने गुरुधारा से बीज तो प्राप्त किया है तथा परम्परागत शक्ति का स्फुरण नहीं हुआ है तो भी शिष्य में वह शक्ति संचारित होती है। पितामह का कुष्ठ रोग पिता में प्रकाशित नहीं होने पर पुत्र में प्रायः संचारित होता हुआ देखा है। कभी-कभी तो बीच की दो पीढ़ियों में रोग नहीं होता तथा तीसरी पीढ़ी में आ जाता है। इसी प्रकार सद्गुरु-परम्परा में यदि किसी की शक्ति प्रस्फुटित नहीं भी होती हो, फिर भी उसके शिष्य में शक्ति संचारित होगी एवं उसके फलस्वरूप मुक्तिलाभ भी होगा। हम लोग महापुरुष उसी को ही मानते हैं जो ब्रह्मज्ञ तथा ऋषि परम्परागत है।' इसी समय किसी अन्य ने जिज्ञासा की-'बाबा ! सद्गुरु-आश्रय लाभ करने पर क्या इस शक्ति का किसी पर जल्दी प्रकाश होता है?'

उन्होंने कहा-'जो अधीन भाव से रहता है, उसमें ही शक्ति का जल्दी स्फुरण होता है। जितना तुम लोग 'अहम्' को मान्यता दोगे उतनी ही देर लगेगी। जो सम्पूर्ण रूप से गुरु को समर्पित कर देते हैं, उन्हीं में गुरुशक्ति शीघ्रतापूर्वक प्रकाशित होती है।'

उन्होंने भी इसी प्रकार से गुरु के श्रीचरणों में समर्पण किया था, जिसके फलस्वरूप गुरुशक्ति ने उनको आत्मसात् कर लिया तथा इस तरह श्रीसद्‌गुरु के साथ एकीभूत हो गये। उन्होंने अपने किसी शिष्य को पत्र में लिखा था-'बाबा, मैं तुमको यथार्थ में बता रहा हूँ कि मेरी निज की कोई शक्ति नहीं हैं। मेरे सद्‌गुरु✤ ने मुझे अपना लिया है। वही इस (मेरे) घर में रहकर तुम्हारे गुरु हो गये हैं, वही तुम्हारा कल्याण करेंगे, तुम इस पर पूर्ण विश्वास रखना।' (पत्रावली द्वितीय खण्ड, श्रीगुरुमहात्म्य २८० पृष्ठ)

मुझे एक घटना याद है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज जब बंगदेश आते थे तो अपने बड़े गुरुभाई श्रीयुक्त अभयनारायण राय से मिलने के लिये उनके घर जाते थे। एक बार इसी प्रकार जब वे मिलने गये तो श्रीयुक्त अभयबाबू ने उन्हें आदरपूर्वक बिठाया। काफी देर तक बहुत से विषयों पर कथावार्ता होती रही। जब वे चलने लगे तो श्रीयुक्त अभयबाबू ने उन्हें साष्टांग दण्डवत् की। ज्येष्ठ गुरुभाई होने के कारण बाबाजी महाराज उनका हमेशा आदर करते थे। अतः यह देखकर वह 'क्या कर रहे हो' 'क्या कर रहे हो' कहकर चंचल हो उठे। इस पर अभयबाबू ने कहा-'मैं ठीक ही कर रहा हूँ। आपको गुरुदेव का स्वरूप प्राप्त हो गया है, ऐसा मुझे अनुभव होता है। आपका चेहरा भी बाबा सरीखा हो गया है।'

उनको विश्वव्यापी सद्‌गुरु की साक्षात् मूर्ति मानकर हजारों साधक वैसा ही अनुभव कर रहे हैं।

✤ अर्थात् विश्व व्यापी गुरु शक्ति।

वह गुरुदेव में सर्वदा हमारी रक्षा कर रहे हैं, ऐसा आभास होता है। वह महान हैं, सर्वव्यापी हैं हम लोग उन्हीं के अंगीभूत होकर उनकी कृपा सदैव अनुभव करते हैं। श्री श्री बाबाजी महाराज ने एक पत्र में लिखा था-'इस देह का पतन अवश्य होगा, लेकिन इससे तुम लोगों के लिये कोई व्यतिक्रम नहीं होगा।' (पत्रावली प्रथम खण्ड २७६ पृष्ठ)

जिन लोगों के जीवन पर इनकी लीला का विस्तार हुआ तथा हो रहा है, उन सबके प्रसंग इस अध्याय में उन्हीं लोगों की भाषा में लिपिबद्ध कर रहा हूँ।

हमारे गुरुभाई अध्यापक श्रीयुक्त ने लिखा-'१९२५ ई. में मधुपुर में मेरी दीक्षा हुई। भगवान की कृपा से मेरे मन में यह धारणा हो गई थी कि बिना सद्‌गुरु कृपा-लाभ किये यह जीवन व्यर्थ है तथा इस दुःखपूर्ण संसार से परित्राण भी नहीं हो सकता है। मेरे दोष-गुणों को न देखते हुए मेरा उद्धार कर सके, ऐसे गुरु को मैं किस प्रकार ढूँढूँ, इसी चिन्ता में मैं जीवन बिता रहा था। बहुत से साधु-स्थान गया लेकिन सब तरफ से तृप्ति लाभ हो, ऐसा कोई सत्‌स्थान नहीं मिला, इस कारण दीक्षा लेने की भी इच्छा नहीं हुई। हताश होकर जीवन काट रहा था तथा भगवान से प्रार्थना करता कि सद्‌गुरु के रूप में तुम्हीं मेरा उद्धार करो। दिन पर दिन बीतते जाते, उतना ही मैं हताश हो गया। मन की व्यथा इतनी बढ़ गई थी कि मानो मृत्यु-यन्त्रणा भोग कर रहा हूँ। इसी समय एक दिन श्रीगुरुदेव स्वप्नातीत आश्चर्य रूप से प्रकट हुए तथा मुझे ग्रहण करने का आश्वासन दिया।

इसके कई महीने बाद श्री श्रीबाबाजी महाराज ने मधुपुर आकर मुझे दीक्षा देकर कृतार्थ किया। जब मैं अपने अतीत जीवन की आलोचना करता हूँ तो मुझे ऐसी प्रतीति होती है कि बहुत समय से श्रीगुरु अदृश्य रूप से मुझे परिचालित कर रहे थे।

दीक्षा के उपरान्त ही मुझे बीमारी हो गयी तथा काफी समय तक बीमार रहा। इस समय मेरे पास अर्थ भी नहीं था, बहुत ही निःसम्बल अवस्था थी। श्रीगुरुदेव ने इस समय तथा बाद में भी हर प्रकार से मेरी सहायता की।

१९२५ ई. में जुलाई अथवा अगस्त का महीना रहा होगा। मेरी तकलीफ पूरी तरह से दूर नहीं हुई थी। श्रीधरपुर गाँव के स्कूल के हैडमास्टर के पद के लिये मैं अस्वस्थ शरीर लेकर ही वहाँ गया। इस सम्बन्ध में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को मैंने सब कुछ पहले ही लिखा था। उन्होंने उसके उत्तर में आशीर्वाद तथा उपदेश लिखकर भेजे थे। एक दिन दोपहर को जब मैं सोच रहा था कि उनके उपदेशों का भली-भाँति पालन नहीं हो रहा है तो मैं क्या देखता हूँ कि थोड़ी दूर पर श्री श्रीबाबाजी महाराज खड़े हैं तथा कठोर मुद्रा से मेरी ओर देख रहे हैं। मैं उन्हें उठकर दण्डवत् भी नहीं कर पाया कि वे अदृश्य हो गये।

इसके अगले वर्ष हावड़ा जिले के अन्तर्गत कोलिया नामक ग्राम के हाईस्कूल में मैं शिक्षक नियुक्त हुआ था। वहाँ मैं बोर्डिंग में रहता था, किन्तु खाना हाथ से बनाता था। स्कूल का काम तो था ही, ट्यूशन भी करता था, इस कारण बहुत काम हो जाता था। रात को इतना थककर सोता था कि कभी-कभी चेष्टा करने पर भी सुबह उठ नहीं पाता था। इधर श्रीगुरुदेव के आदेशानुसार भोर में उठकर शौच, स्नान से निवृत होकर भजन करना चाहिए, इस तरह मन में बहुत अशान्ति रहती थी। एक दिन शेष रात्रि में जब मैं सो रहा था, उस समय किसी ने मुझे नाम लेकर पुकारा, मैं उसी समय जग गया तथा देखा कि वहाँ कोई न था। वैसे भी उस ग्राम में मुझे नांम लेकर पुकारने वाला कोई नहीं था। जल्दी से शौच-स्नानकर मैं भजन करने बैठ गया, इस प्रकार एक-दो बार और हुआ।

मुझे ऐसा लगता है कि मेरा चित्त अतिशय मलिन है, इसी कारण मेरे लिए श्रीगुरुदेव की यत्न चेष्टा भी अमित थी। इस प्रकार की बहुत-सी घटनाएँ श्रीगुरुदेव की इच्छा से हुईं तथा हो रही हैं। एक बहुत ही आश्चर्यजनक घटना हुई। एक दिन मैं सुबह घर की बैठक में चारपाई पर बैठा हुआ किसी लिखाई-पढ़ाई के काम में संलग्न था। इसी बीच न जाने मन कैसे किन्हीं कुत्सित विचारों में लग गया, काम-भाव जागृत होने से मन आगे बढ़ गया तथा कथन में कुछ भोग की बात सोचकर उसके लिए मन चंचल हो उठा। इसी समय मन में ऐसा लगा जैसे कोई कह रहा है–'तुम्हारे सुख का आदर्श यहीं तक है क्या?' मैं एकदम चौंक गया ! कहने वाले का स्वर बिल्कुल बाबा के स्वर की भाँति था। यह आवाज बाहर से नहीं, वरन् मेरे अन्दर ही से आई। हमेशा के लिए काम-चिन्ता छिन्न-भिन्न हो गई तथा गुरुदेव उस परमानन्द की ओर ले गये, जिसकी तुलना में कामक्रीड़ाजनित सुख नितान्त तुच्छ है और यही सोचकर मैं काम-भाव को पराभूत कर सका।

"इसके पहले बहिर्जगत में बाबा के प्रभाव का परिचय अनेक बार प्राप्त किया, किन्तु वे मेरे मन में ही विराजित हैं ऐसा नहीं जानता था, अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि वे मेरे अन्दर विराजमान हैं।"

त्रिपुरा जिले के अन्तर्गत गंगामण्डल राज इन्स्टीट्यूशन के शिक्षक श्रीयुक्त सुरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती ने लिखा–

"दीक्षा-लाभ से कुछ दिन पहले ही मुझे मालूम हुआ था कि–श्री श्रीबाबाजी महाराज बंगदेश में परिभ्रमण के लिए आये हैं, बूड़ीचंग ग्राम में अपने एक शिष्य के यहाँ वह ठहरने वाले हैं। हठात् एक दिन सुबह-सुबह मैंने अपनी स्त्री को रोते हुए देखा, उसे बहुत पूछने पर उसने बताया कि स्वप्न में एक जटा-जूटधारी ज्योतिर्मय साधु

महापुरुष को देखकर मन इतना प्रसन्न हुआ कि अब जागने के बाद उनको न पाकर मन बहुत ही अधीर हो रहा है। मैंने उन्हें खूब समझाया तथा कहा कि इससे कुछ मंगल ही होगा। दीक्षा-लाभ से दो-चार दिन पहले ही यह घटना हुई। बूड़ीचंग जाने पर मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि जिन महापुरुष को मेरी स्त्री ने स्वप्न में देखा था, वह यही हैं। गुरुजनों व माता-पिता के अमत होने पर वे दीक्षा नहीं देते हैं, ऐसा भी सुना था, अतः मुझे आशंका हुई। मैं तो उनसे दीक्षा लेना चाहता था। बाबा ने कहा–'तुम्हारे माता-पिता विरोधी हुए तो?' मैंने ना मालूम किस प्रेरणा से प्रेरित होकर उन्हें जबाब दिया–'बाबा ! यदि मेरा आत्ममंगल हो तो औरों का विरोध कुछ अर्थ नहीं रखता है, फिर आपकी कृपा से तो सब कुछ सम्भव है, आप निमेष-मात्र में सब कुछ ठीक-ठाक कर देंगे।' वह थोड़ी देर चुप रहे फिर कहा–'अच्छा ठीक है।' इसके बाद वह वर्तमान समाज की दुरावस्था पर बहुत कुछ कहने लगे कि आज-कल के माता-पिता संतान के म्लेच्छ आचरण पर उतनी आपत्ति नहीं करते, जितनी कि सद्गुरु-लाभ करके त्याग आदर्श ग्रहण करने के विषय में अनिच्छा प्रकट करते हैं। इस प्रकार की बहुत-सी बातें हुईं, लेकिन मेरे लिए यह आश्चर्य का विषय है कि सब आत्मीयों का विरुद्ध-भाव जो मेरे प्रति था, वह सब दूर हो गया एवं उनके मनोभावों में भी परिवर्तन हो गया। लेकिन उन्होंने मुझे सस्त्रीक दीक्षा देने के लिए कहा। हम दोनों दीक्षा के लिए उपस्थित हुए। मुझे भक्तिहीन व विश्वासहीन जानकर ही शायद उन्होंने दीक्षा-दान के समय ही में अपनी महिमा का आभास दिया। एक नया जनेऊ शोधन करके रखा था, सोचा था कि दीक्षा के समय उसे ही व्यवहार करूँगा, किन्तु दीक्षा के समय उसे लाना ही भूल गया। श्री

श्रीबाबाजी महाराज ने दीक्षा से समय बहुत ही स्नेह से मुझ से कहा–'नया जनेऊ पहन कर दीक्षा ली जाती है' बहुतों की दीक्षा हुई, लेकिन उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा। फिर श्री श्रीराधाबिहारीजी के चरणों में समर्पित होने के लिए प्रस्तुत होने को कहा। मैं बहुत ही भाव-विह्वलता से कहने लगा कि इसके लिए ही मैं कितने दिनों से भगवान की पुकार कर रहा था। इस पर बाबाजी महाराज ने झिड़कते हुए कहा–'मुझे सब मालूम है, बताने की जरूरत नहीं है।' इस तरह उनकी कृपा से तेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। दीक्षा के बाद जब श्री श्रीबाबाजी महाराज से विदा लेने गया तो एक घटना घटी। एक समस्या के चक्कर में पड़कर मैं अस्थिर होकर बाबा के पास जाकर मन ही मन कहने लगा–'गुरुदेव ! यदि आप यथार्थ में सद्गुरु हैं तो मेरे मन की बात समझेंगे तथा उसके विषय में उपदेश देंगे तथा उसका समाधान करेंगे, लेकिन उपस्थित जनता उसके विषय में कुछ जान नहीं पावे। मैं उस समय उनके पास ही बैठा था, उन्होंने मेरी ओर हँसते हुए देखा, उक्त विषय के सम्बन्ध में उपदेश दिया तथा बाद में उनके कहे अनुसार कार्य करके मुझे आशातीत सफलता मिली। उन्होंने जो कुछ उपदेश दिया वह स्पष्ट स्वर ही में था, किन्तु उसे मेरे सिवाय किसी ने नहीं सुना। क्योंकि मैंने इसके बारे में बहुतों से पूछा। X X X मैं बहुत संशयवादी था, अतः शायद मेरी मोह कालिमा दूर करने के लिए ही उन्होंने यह अहेतु कृपा की।

हाइलाकान्दिका वकील श्रीयुक्त कुञ्जबिहारी चक्रवर्ती ने जो लिखा–

X X X दीक्षा के समय मेरी मनोकामना थी कि श्रीयुक्त बाबाजी महाराज अपने हाथों से मुझे जनेऊ पहनायें, लेकिन मैंने इस

बारे में कुछ कहा नहीं था। उन्होंने आसन पर बैठते ही श्रीयुक्त अनन्तदासजी से जनेऊ की माला लाने को कहा तथा फिर उन्होंने अपने हाथ ही से मुझे पहना दो। जब उन्होंने मेरे गले में कण्ठी पहिनाई तब मुझे बहुत बुरा लगा कि जो कुछ मुझे पसन्द नहीं था, वही करना पड़ा। मैंने मन में पक्का कर लिया कि वृन्दावन में कण्ठी पहनना 'निन्दनीय नहीं है, इस कारण यहाँ जितने दिन हूँ, उसे पहने रहूँगा, जब यहाँ से जाऊँगा तो उतार रक रख दूँगा तथा फिर तिलक भी नहीं धारण करूँगा। मैं तो यह सब सोच रहा था कि श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने हँसते हुए दूसरी कण्ठी मेरे हाथ में देते हुए कहा–'देख ! मैं सबको एक कण्ठी की लड़ी देता हूँ, लेकिन तुम्हें दो दे रहा हूँ। एक के टूटने पर दूसरी पहन लेना। जिस प्रकार हमेशा जनेऊ पहनना होगा, उसी प्रकार कण्ठी भी पहननी होगी।' यह सुनकर मैं निरुपाय हो गया तथा मन ही मन प्रार्थना करने लगा कि गुरुदेव सर्वशक्तिमान् हैं, वही मेरी दुर्बलता दूर करेंगे। वह सब कुछ जानते हैं, उनके सम्मुख मेरी कोई चतुराई नहीं चलेगी। उनकी कृपा से माला-तिलक धारण करके जनसमाज में मिलने-जुलने में मुझे कोई संकोच नहीं रहा।

श्रीमती X X X ने जो लिखा है–"एक दिन बाबा कुछ उपदेश दे रहे थे, बाद में उन्होंने कहा–'देख ! रोगी की सेवा खूब यत्नपूर्वक करना। भगवान पीड़ित रूप में तेरी सेवा ग्रहण कर रहे हैं, यह याद रखकर सावधानी से रोगी की सेवा करना। इससे भगवान बहुत प्रसन्न होते हैं। घृणा व संकोच मन में नहीं रखना। यदि रास्ते में मेहतर भी पीड़ित अवस्था में मिले तो जरूरत होने पर उसकी सेवा भी कर सको यही भावना रहनी चाहिए। क्यों, कर सकेगी ना?' मैंने कहा–'हाँ, चेष्टा करूँगी।"

"मैं स्वभाव से ही आलसी तथा मल, मूत्र, रक्त, पीव आदि से घृणा करती थी। लेकिन उस समय भगवान को प्रसन्न करने की इच्छा बलवती थी। सोचा कि यह उपाय तो अपेक्षाकृत सरल है। रोगी मिलने पर अवश्य चेष्टा करूँगी यह मन में सोचा लिया। करीब तीन-चार महीने बाद काशी गई। मेरे जाने के कुछ दिन बाद ही मेरी एक बुआ कैन्सर-रोगी होकर काशी-लाभ की आशा से काशी आईं। मैंने मन ही मन श्रीगुरुदेव को धन्यवाद दिया तथा उस बीमार बुआ की सेवा का समस्त भार अपने ऊपर ले लिया तथा मैं यथासाध्य यत्न से उनकी सेवा करने लगी। उनका रोग दुःसाध्य था, अतः बीमारी बढ़ने लगी तथा फिर उनकी उठने-बैठने की शक्ति भी प्रायः समाप्त हो गई। एक दिन एक नयी बीमारी शुरू हो गई, बुआ को चारों तरफ कुछ भयानक मूर्तियाँ दिखाई देने लगीं तथा जैसे कि वह कुछ दण्ड दे रही हैं, ऐसी बातें वह करने लगीं। वह डरकर मेरे दोनों हाथ पकड़कर मुझे वह सब कुछ दिखाने व सुनवाने की कोशिश करतीं, पर मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता, लेकिन उनकी आँखों और चेहरे को देखकर यह लगता कि उन्हें कुछ ऐसा ही दीख रहा है। वह दुर्बल तो थी हीं, अब तो उनका चेहरा भी भीषण हो गया था। फिर उन दिनों बहुत ही खराब दुर्गन्ध आने लगी थी। वह चीत्कार करके मुझ से चिपट जातीं। मुझे बहुत डर लगता, मैंने श्रीगुरुदेव से प्रार्थना की–'बाबा ! क्या मुश्किल है? जब बुआ के प्राण निकलें तब मैं वहाँ न रहूँ।' मैं दोनों आँख बन्द करके मन्त्र-जप करने लगी। तभी श्रीगुरुदेव का धीर मधुर स्वर कानों में पड़ा–'क्यों डरती हो माई, मैं तो तुम्हारे पास हूँ।' सुनते ही पहले तो आश्चर्य हुआ फिर प्राणों में असीम बल और साहस का संचार हुआ। यह १९२२ ई. की बात है, फाल्गुन का महीना था, श्रीगुरुदेव

उन दिनों ज्वालामुखी तीर्थस्थान पर थे। इतने दूर फिर भी कितने समीप? मैं विस्मय विमुग्ध हो गई ! वास्तव में वह हमेशा ही मेरे साथ रहते हैं। तब मुझे श्रीगुरुदेव का कथन याद आ गया, उन्होंने कहा था–'गुरु सर्वदा तुम्हारे साथ हैं तथा तुम्हारी रक्षा करते हैं। यह सत्य समझना तथा निश्चिन्त रहना। तुम्हें भय व चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं है। यह भी याद रखना कि अन्दर बाहर के सब कार्य-कलाप वह देखते हैं, उनसे कुछ छिपा नहीं है।' श्रीगुरुदेव सर्वज्ञ योगेश्वर भगवान हैं। उनके दो रूप आँखों के सामने उपस्थित हुए, एक देहधारी रूप तथा दूसरा सर्वव्यापी रूप। रोगी सेवा का फल साथ ही साथ मिल गया। इसके बाद भी उन्होंने अनेक बार अपनी करुणा का परिचय दिया तथा दे रहे हैं, लेकिन ऐसा लगता है कि सब करुणा का एक मूल मन्त्र है–'क्यों डरती हो माई मैं तो तुम्हारे पास हूँ।'

"जब मैंने यह घटना श्रीगुरुदेव को निवेदित की तो वे भाव-विभोर होकर कहने लगे–'हाँ ! अब तो समझ गई कि गुरु सर्वदा ही साथ-साथ रहते हैं।' गुरुदेव ने मेरी प्रार्थना भी पूर्ण की, बुआ के देहान्त से कुछ समय पहले किसी विशेष कारणवश मैं उनके पास से हट गई थी।"

उनकी कृपा से माताल, लम्पट, अविश्वासी, भ्रष्टाचारी व्यक्ति भी आज सदाचारी व सच्चरित्र हो गये। यह सब सोचकर हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। गुरु वास्तव में शिष्य के चरम आश्रयस्थल हैं। पिता, माता, बन्धु सब कुछ वही हैं। शिष्य की हर प्रकार की परिस्थिति व अवस्था में वही उसके रक्षक हैं। इसी कारण गुरु-शक्ति की क्रिया शिष्य के जीवन में अनेक प्रकार से प्रकाशित होती है।

ई. आई. रेलवे के आसनसोल स्टेशन के टेलीग्राफ आफिस के श्रीयुक्त विजयकृष्ण वन्दोपाध्याय की लेखनी के अनुसार–

"हावड़ा शिवपुर आश्रम की प्रतिष्ठा के दिन आश्रम के पश्चिमवाले बरामदे में बाबा व काकाजी महाराज (श्रीयुक्त विष्णुदास महाराज) एक आसन पर बैठे थे, अनेक लोग अनेक प्रकार का चढ़ावा चढ़ाकर उन दोनों की पूजा कर रहे थे। बरामदा नर-नारियों से ठसाठस भरा हुआ था, सब उनका दर्शन कर रहे थे। मैं भी बरामदे की दीवार से लगकर खड़ा हो गया तथा वहीं से दर्शन करने लगा। मन ही मन बाबा को लक्ष्य करके कह रहा था–'बाबा, आज इस आनन्द बेला में सब लोग तुम्हारी अनेक प्रकार से पूजा कर रहे हैं, मैं भी चरणों पर चढ़ाने के लिए कुछ फूल चन्दन लाया था जो कि सब जेब ही में रह गया। चेष्टा करने पर भी तुम्हारे पास नहीं पहुँच पाया। तुम तो सदा से ही गरीबों पर कृपा करते हो तथा मन की वेदना समझते हो।' इसी समय बाबा ने आसन पर ही से हाथ हिलाकर मुझे पास आने का संकेत किया। पहले मुझे ऐसा लगा कि वह मेरे पीछे जो गुरुभाई खड़े हैं, उन्हें बुला रहे हैं तथा वे भी जाने को उद्यत हो गये, तब उन्होंने कहा–'विजय आयेगा' मैं उनके पास गया। वह मेरे मन की भावना तथा पीड़ा को समझते हैं, यह दिखाने के लिए ही उन्होंने मुझ पर कृपा की।"

बी. एन. रेलवे खड़गपुर आफिस के हैड क्लर्क श्रीयुक्त निर्मलचन्द्र मित्र ने जो लिखाः-

"जिन दिनों श्रीयुक्त बाबाजी महाराज भुवनेश्वर में थे तब मैं, विजय भाई, विनोद भाई, आदि कुछ गुरुभाई उनके दर्शनों को गये। रास्ते में भुवनेश्वर मन्दिर के पास कुछ साधु बैठे हुए थे। हमने उन लोगों को हाथ उठाकर नमस्कार किया। जब हम बाबाजी महाराज के

पास पहुँचे तो उन्होंने हम सबकी मृदु भर्त्सना करते हुए कहा–'यह तुम लोगों का किस प्रकार का ढंग है, जो साधु-संन्यासी को साष्टांग-प्रणाम नहीं करते हो।' इस तरह उन्होंने भविष्य के लिये हम लोगों को सावधान किया। उनके अन्तर्यामित्व तथा हम लोगों को संशोधन करने की चिन्ता को देखकर मैं हर्ष और विस्मय से अभिभूत हो गया।"

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के एक स्थान पर रहने तथा दूसरे स्थान पर साक्षात् दर्शन देने के विषय में प्रश्न उठाने पर उन्होंने कहा था–'बाबा ! आकुल-व्याकुल प्राण की प्रार्थना होने पर कभी-कभी इस प्रकार से दर्शन हो जाता है।' मैं अपनी एक देखी हुई घटना सुनाता हूँ। १६३३ ई. में जब उज्जैन में कुम्भ हुआ था, तब बाबाजी महाराज ने स्वयं वहाँ न जाकर अपने प्रतिनिधि-स्वरूप हम लोगों के ज्येष्ठ साधु गुरुभाई श्रीयुक्त अनन्तदासजी को भेजा था। मैं भी बाबाजी महाराज के आदेशानुसार वहाँ गया था जो कि प्रसंगानुसार पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है। इस मेले में हम लोगों के गुरुभाई श्रीयुक्त सुरेन्द्रनाथ बसु (हिल स्टेशन के तत्कालीन स्टेशन मास्टर) भी सस्त्रीक आये थे। बाबा जिस स्थान पर ठहरते थे, वहीं पर मैं व श्रीयुक्त अनन्तदासजी रहते थे। श्रीयुक्त अनन्तदासजी महन्त के आसन पर न बैठकर नीचे बैठा करते थे। एक दिन जब शाम को श्री श्रीठाकुरजी की आरती करके दण्डवत् प्रणाम कर रहा था तो श्रीयुक्त अनन्तदासजी ने मुझ से आकर कहा-'देख तो सुरेन्द्रबाबू की स्त्री वहाँ बैठी हुई क्यों रो रही है?' मैंने जब उनसे रोने का कारण पूछा तो पहले उन्होंने कुछ जवाव नहीं दिया, फिर बहुत पूछने पर उन्होंने कहा–"बाबा का खाली आसन देखकर मुझे बहुत दुःख हो रहा था, अतः मैंने मन ही मन में बाबा से कहा-'बाबा, तुम्हारे आसन पर बैठने से कितनी शोभा होती है तथा

हम लोगों को कितना आनन्द मिलता है। आसन पर बैठकर तुम आशीर्वाद देते हो। शून्य आसन देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है।' यह कहते-कहते मेरी आँखों में आँसू आ गए। थोड़ी ही देर में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज आसन पर विराजमान दीखे। मैंने उन्हें प्रणाम किया तो उन्होंने मेरी पीठ पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया, मैं हर्ष से इतनी विभोर हो गई कि तुम्हें बता नहीं सकती, फिर वह अदृश्य हो गये।'

मेदनीपुर अन्तर्गत वांशदापलासी की नन्दी स्टेट के मैनेजर श्रीयुक्त धीरेन्द्रनाथदास गुप्त की पत्नी ने बताया–

"X X X मेरी दीक्षा लेने के दो वर्ष बाद एक बार मेरी बड़ी लड़की बहुत बीमार हो गई थी, उसके जीवन की कोई आशा न थी। उन दिनों जब एक दिन मेरी लड़की रात के समय तकलीफ से छटपटा रही थी तो मैं भी बैठी एक बात सोच-सोचकर रो रही थी– कहते हैं कि सन्तान की मृत्यु माता-पिता के पाप कर्मों के कारण होती है, अतः यदि मैं इतनी पापिन हूँ कि मेरी लड़की मर जायेगी तो श्रीगुरुदेव सरीखे महापुरुष ने मुझे अपने चरणों में आश्रय कैसे दिया? उनके साक्षात् दर्शन होने से पहले ही इन महापुरुष ने स्वप्न ही में मुझे कंठी दी फिर कृपा करके दीक्षा दी और अब दो वर्ष होते-होते मेरी यह दशा हुई जा रही है। जब मैं यह सब कुछ सोच रही थी कि देखा, बाबा मेरे बिस्तर पर खड़े हैं। मैं मन्त्रमुग्ध-सी होकर कितनी देर तक उनका अलौकिक रूप दर्शन करती रही यह बता नहीं सकती। फिर मेरी कन्या के सिरहाने खड़े होकर मेरी ओर अभय दृष्टि से देखा तथा फिर धीरे-धीरे दीवार के साथ ही मिलित हो गये। उनकी वह दृष्टि तथा वह रूप आज भी मेरे हृदयपटल पर अंकित है। मेरी कन्या धीरे-धीरे रोग मुक्त हो गई।"

'एक बार जब मैं शिवपुर आश्रम में बाबा को प्रणाम करने को गई तो उन्होंने हँसते हुए दाहिना पैर मेरी ओर कर दिया। मैंने प्रसन्न होकर बाबा की पद-धूलि सिर पर लगाकर दण्डवत-प्रणाम किया। इसके बाद ही बाबा ने मृदु-भाव से मुझ से कहा-'बाहर की ओर ही नहीं देखती रहना, अन्तर की ओर दृष्टि रखने ये सब कुछ पाओगी। अपना मन मत खराब करना, मैं हमेशा तुम लोगों के पास ही हूँ।'

"गत १६३५ ई. में जब बाबा के तिरोभाव का सम्वाद मुझे मिला तो मैं बहुत शोक संतप्त हो गई। सम्वाद पाने के तीन दिन बाद अपने कमरे में रात के दस बजे के करीब मैं बैठी हुई बाबा के लिये रो रही थी। उस कमरे में एक तख्तपोश था, जिस पर कोई सोता नहीं था। रोते-रोते मैंने देखा कि तख्तपोश के एक कोने पर बाबा बैठे हुए हैं तथा मुझे बुला रहे हैं। उनका चेहरा ज्योतिपूर्ण था। मैंने रोते-रोते जाकर बाबा को स्पर्श न करके जमीन पर से दण्डवत् प्रणाम किया। किन्तु बाबा ने दोनों हाथ मेरी पीठ पर फेरते हुए कहा-'अरे इतनी व्याकुल क्यों हो रही है? मैं तुम लोगों के पास ही हूँ, और मत रो' यह कहकर उन्होंने अपना हाथ उठा लिया तथा अन्तर्धान हो गये। इसके बाद मेरे शोक का वेग कुछ घट गया तथा तभी से उनकी वह मधुर मूर्ति अक्सर अन्तर में अनुभव करती हूँ।"

गुरुभाई श्रीयुक्त मुकुन्ददेव चट्टोपाध्याय (अध्यापक दौलतपुर कालेज) लिखते हैं-

"मेरे विवाह के बाद ही मेरी पत्नी ने श्री श्रीगुरु महाराजजी की कृपा लाभ की। इसके बाद वह केवल दो वर्ष जीवित रहीं। इतने थोड़े समय में उनको जो साधनोन्नति हुई उसे देखकर मुझे आश्चर्य

होता है। श्री श्रीठाकुरजी के प्रति उनका चित्त आकृष्ट हो गया, श्रीगुरुदेव के प्रति आत्मीय बोध उत्पन्न हो गया तथा सांसारिक वस्तुओं के प्रति स्पृहाशून्य हो गई थीं। ठीक दो वर्ष बाद करुणामय गुरुदेव उनको वैकुण्ठ ले गये।"

"केवल सात दिन ही उन्होंने रोग-यन्त्रणा भोग की। सन्ध्या के समय थोड़ा ज्वर-सा लगा, रात को ज्वर खूब बढ़ गया। उत्तेजित होकर श्री श्रीबाबाजी महाराज की बातें करने लगीं। सिर पर बरफ रखने पर थोड़ी स्थिर हुई। सुबह-सुबह कहने लगीं-'बाबा आये हैं।' फिर यही बार-बार कहने लगीं। फिर बोली-'बाबा आये हैं, बाबा, बाबा, बाबाइत ! दीदी (मेरी बहन को वह दीदी कहती थीं) जल्दी से आसन बिछा दो, देखती नहीं हो कि वह खड़े हुए हैं, उनका शरीर कितना दुर्बल हो गया हैं।✤ बहुत कष्ट हो रहा है, दीदी जगह परिष्कार करके आसन बिछा दो।"

"इस तरह दो-एक दिन तक चलता रहा। एक दिन मुझसे बोलीं-'मैं बाबा के संग जाऊँगी, जाऊँ? बोलो जाऊँ क्या?' मेरी सम्मति माँगने लगीं। मैंने कहा-'बाबा क्या कहते हैं?' थोड़ी देर में उन्होंने कहा-'बाबा तो राजी हो गये हैं, वह मुझे ले जायेंगे, अब बताओ मैं जाऊँ क्या? बहुत कष्ट से मैं कह पाया-'बाबा यदि ले जाना चाहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।' रोग बढ़ने लगा। प्रायः हर समय ही बाबा की बात करतीं। लगातार ज्वर होने से पाँचवें दिन अवसन्न हो गई। कुछ बड़बड़ाते हुए देखकर मेरी बुआ ने उनके मुख के पास जाकर सुना कि वह 'जय बाबाजी महाराज की जय' कह रही थीं।"

✤ इस समय श्रीयुक्त बाबाजी महाराज अस्वस्थ थे एवं जटा परित्याग कर दी थी। यह सब बातें उन्हें मालूम भी नहीं थीं।

"छठे दिन मैं अस्थिर हो उठा–श्री श्रीबाबाजी महाराज को सम्बोधन करके रोते हुए कहा–'बाबा ! यदि लेना है तो शीघ्र लो। इतना कष्ट मैं नहीं देख सकता हूँ।' बस फिर देरी नहीं हुई, अस्थिरता बन्द हो गई। दूसरे दिन शिव रात्रि थी। सुबह थोड़ी-सी दवाई खाई थी, रात को दो बजे के करीब अवस्था काफी खराब देख डाक्टर को सूचना दी, वह खबर मिलते ही चले आए। एक इन्जेक्शन देकर कहा–'अब अधिक देरी नहीं है, तुम सब भगवान का नाम करो।' मेरी बहिन ने जल्दी से शरीर पोंछकर बिस्तर साफ करके गंगाजल दिया। मैंने सिरहाने से तकिया हटाकर बाबा की व्याख्यात गीता वहाँ रख दी तथा तिलक-स्वरूप कर दिया। मैं मन ही मन में भगवान का नाम जपने लगा। जैसे-जैसे अन्तिम समय आने लगा वैसे-वैसे उनकी मुखश्री लावण्ययुक्त होने लगी, मुख में गंगाजल डाला गया। डाक्टर भी ब्राह्मण, सज्जन तथा भक्तपुरुष थे। वह भी ठहरे हुए थे। हम लोगों को नीरव जप करते देख वह मधुर स्वर में उच्च कण्ठ से भगवान का नाम करने लगे। इस प्रकारसे देहत्याग के समय मधुर स्वर में भगवत् नाम होते हुए मैंने कभी नहीं देखा न देखने कीं आशा है। उनकी स्वर-लहरी बढ़ती गई तथा कमरा भगवत् नाममय हो गया। शोक की व्यथा लघु हो गई, देहत्याग का समय उत्सवमय हो गया। उस समय तथा बाद में भी रोगिणी के मुख पर एक अपूर्व उज्जवल आनन्दश्री फैल गई जो कि पहले कभी नहीं देखी थी। घर के लोग तथा पड़ौसी उसे देखकर आश्चर्यचकित हो गये।"

"उनके मरण-समय का दृश्य जब याद करता हूँ तो मन में एक विश्वास उठता है। बाबा को मन ही मन कहता हूँ–'तुम अपनी इस पतित अधम सन्तान की सब गलतियाँ माफ करते हुए इसी प्रकार ले जाओगे, इसी विश्वास पर मै जीवित हूँ।"

वामनराउ कृष्णराउ आजिंक्य नामक हमारे एक मराठी गुरुभाई हैं, जो कलकत्ते में नौकरी करते हैं। उन्होंने विवाह नहीं किया है, संसार में उनके दो-एक भाई-बहिन हैं और कोई नहीं है। सभी श्री श्रीबाबाजी महाराज के आश्रित हैं, उन्हीं को केन्द्र मानकर सेवा-'पूजा भजन की मधुमय धारा उनके जीवन में प्रवाहित होती है। चंचलकुमारी नामनी इनकी बहिन थी। उसके देहावसान का विवरण (दूसरी बहिन शशिकला द्वारा लिखित) निम्नलिखित है–

"श्रीयुक्त बाबाजी महाराज से दीक्षा लेकर हम लोगों के समान विषयी लोग भी धर्म-जगत में उच्च स्थान प्राप्त कर सकते हैं, इसका उदाहरण चंचल का जीवन है। दीक्षा-ग्रहण करने पर मेरी बहिन को सारे दिन-रात में तीन-चार घण्टे से अधिक भजन करने का समय नहीं मिलता था। श्रीयक्त बाबाजी महाराज ने उसे दीक्षा देने के बाद कहा था कि प्राणियों की सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है, सच्चे मन से सब की सेवा करना। श्रीगुरुदेव का यह 'वाक्य' ही उसके जीवन का मूल मन्त्र साधनासवरूप हो गया था। मृत्यु से आधा घण्टे पहले तक सबके खाने की खबर ली। 'मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यम्' यह उसके जीवन में फलीभूत हुआ।"

"दीक्षा-दान के समय बाबा ने यह भी कहा था-'विवाह के समय जिस प्रकार पिता कन्या-सम्प्रदान करता है, उसी प्रकार मैं तुम्हें श्रीकृष्ण को अर्पण करता हूँ। तुम इसको समझीं? सबकी ख़ूब यत्नपूर्वक सेवा करना।"

"शिवपुर-आश्रम की प्रतिष्ठा के आठ दिन बाद चंचल को सर्दी व बुखार हो गया तथा सर में जोर से दर्द होने लगा। तीन-चार दिन में भी डाक्टर यन्त्रणा कम नहीं कर सके। पाँचवे दिन सुबह प्रायः साढ़े आठ नौ बजे श्रीदादागुरुजी महाराज के पैरों में जो फूल पिन से

लगा हुआ था, वह फूल उसके मस्तक पर आकर गिरा (हमारे घर में तस्वीर के फ्रेम में पिन लगा हुआ है, इसी पिन में फूल लगा देते हैं) ऐसा लगा जैसे किसी के हाथ से फूल लेकर उसके सर पर डाला हो। इस घटना के समय हम सब लोग रोगिणी के पास ही बैठे थे। श्री श्रीदादागुरुजी महाराज का फोटो चंचल के सर से चार हाथ दूर दीवाल के एक आले में जमीन से एक हाथ ऊपर स्थान पर था। यदि वह फूल पिन से खुलकर गिरे तो भी फूल चार हाथ सामने आकर गिरे, यह भी सम्भावना नहीं था। इस फूल के गिरने के दो-तीन मिनट बाद ही उसके सिर का दर्द अन्तर्हित हो गया।"

"बिस्तर में गंगाजल छिड़कने को कहती थी। दिन में दो-बार बिस्तर बदला जाता था। क्योंकि सारे दिन ही वह यह कहती रहती थी मेरे बिछौने पर दादागुरुजी महाराज तथा बाबाजी महाराज बैठे हैं, कोई उसे छूना नहीं, गुरु-परम्परा के साधु आये हैं और उनके साथ भी अनेक साधु हैं। डाक्टर के पूछने पर यही कहती कि कोई कष्ट नहीं है ठीक हूँ; किन्तु ज्वर रहता था, किसी शारीरिक कष्ट के बारे में उसने कभी कुछ नहीं कहा था। वह कहती-'मैंने श्री श्रीदादागुरुजी महाराज से कहा कि बुधवार को जाऊँगी, लेकिन उन्होंने कहा कि वृहस्पतिवार को द्वादशीं है, उस दिन शाम को मैं तुम्हें ले जाऊँगा।"

रोज दोनों समय स्वरूप करके साफ कपड़े पहनने तथा बाल ठीक करने की जिद करती थी, अतः रोज इस प्रकार किया जाता। जब वह ठीक थी, तब कपड़ों के विषय में उसका कुछ ध्यान ही न था। यदि कोई उससे सजने व कपड़ों के लिये कहता तो वह खीजती थी तथा कहती थी कि उसे यह सब कुछ पसन्द नहीं है।

"हमारे काका ने कहा–'तुम ठीक हो जाओ, फिर विवाह होगा और अपने घर जाना।' इस पर उसने कहा–'आप क्या मुझे पकड़कर रखेंगे? मैं तो चली जाऊँगी। दादागुरुजी महाराज ने कहा कि जाते समय वह मुझे तीर्थ-दर्शन करायेंगे, आपने सब तीर्थ-दर्शन किए हैं क्या काका? सारे दिन-रात साधु-दर्शन और स्तुति-पाठ थोड़ी भी थकान नहीं। डाक्टर के पूछने पर हमेशा यही जबाव देती कि 'ठीक हूँ कुछ तकलीफ नहीं है।"

"डाक्टर भी ज्ञानी-सात्विक-भावापन्न-साधनशील ब्राह्मण थे। यह देख-सुनकर उन्होंने हमें तैयार रहने को कहा तथा यह भी बोला–'उसके जाने का दिन स्थिर हो गया है, उसे अब और अधिक नहीं रोका जा सकता? उसकी दृष्टि हमेशा भ्रू के मध्य ही में स्थिर है, गुरु-दर्शन हो ही रहा है, इतनी व्याधि होने पर भी शरीर में कोई यन्त्रणा-बोध नहीं है। रोगिणी शरीर से अलग अपनी सत्ता अनुभव कर रही है, यह देह और ज्यादा दिन नहीं ठहरेगी। तीन चार दिन बाद देह-त्याग होगा।' शरीर इतना लावण्ययुक्त हो गया था कि उसे रोगी समझना तो दूर की बात लगती थी, बल्कि ऐसा लगता था कि उसका शरीर स्वस्थ हो रहा है। उसका गोरा रंग चौगुना गोरा लगने लगा था।"

"इसके बाद निर्दिष्ट दिन सन्ध्या को आठ बजे सबसे बिदा लेकर श्रीगुरुदेव का स्मरण करते हुए शेष मुहूर्त तक सज्ञान अवस्था में उसने शरीर त्यागा। मुँह पर भी यन्त्रणा का कोई आभास नहीं था।"

सद्गुरु के रूप में श्री श्रीबाबाजी महाराज की विभूतियों का परिचय केवल उनके शिष्यों ने अनुभव नहीं किया, बल्कि ऐसे व्यक्तियों ने भी अनुभव किया जो उनके शिष्य न थे।

वीरभूम जिले के अन्तर्गत अहमदपुर रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर श्रीयुक्त क्षितीन्द्रनाथ सरकार ने भी लिखा है–"मैं चार वर्ष पहले अपने दोस्तों के साथ होली पर श्रीवृन्दावनधाम गया था। वहाँ पर श्री

श्री १०८ श्रीस्वामी सन्तदास बाबाजी महाराज के दर्शन का भी सौभाग्य हुआ। उनके साथ हम लोगों को सात-आठ दिन सत्-प्रसंग आलोचना भी हुई। जिस दिन हम लोग वृन्दावन से रवाना होने वाले थे, उसके एक दिन पहले मैं उनके पास गया तथा उनकी स्मृति-चिन्ह स्वरूप किसी वस्तु की प्रार्थना की। इस पर वह कहने लगे-"मैं तुम्हें और क्या दूँ?" फिर उन्होंने मुझे अपनाफोटो दिया और कहा कि यदि कभी कोई मुश्किल आये तो इस फोटो की ओर देखकर उन्हें स्मरण करना, मुश्किल आसान हो जायेगी। मेरे पास वह फोटो आज भी अच्छी तरह से रखा हुआ है। मैं एक बार परीक्षा के लिये पूरी तैयार नहीं कर पाया था, लेकिन जिस दिन परीक्षा देने गया, उस दिन इनके फोटो को सिर पर लगाकर मैंने प्रार्थना की एवं उनकी कृपा से मैं परीक्षा में सफल हो गया। एक बार नौकरी में कुछ भूल हो जाने के कारण ऐसी विषम स्थित हो गई थी कि नौकरी से बरखास्त हो जाने की आशंका हो गई थी। उस बार भी मैंने पहले ही की तरह उन्हें स्मरण किया तथा उनकी कृपा से मैं बच गया। इस तरह कितनी छोटी-बड़ी विपदाओं से मेरा उद्धार हुआ वह वर्णनातीत है। मुझे आशा नहीं थी कि मुझे वह इस प्रकार उपकृत करेंगे। मैं तो उनकी दया का पात्र होने योग्य भी नहीं हूँ, किन्तु वह स्वयं दया के सागर हैं। इस कारण मेरा जीवन शान्तिमय बनाया वही मेरे जीवन के आश्रय हैं। मैं उनका मन्त्र-शिष्य नहीं हूँ।"

श्रीयुक्त हीरेन्द्रचन्द्र सरकार हैल्थ-आफीसर शिलौंग ने बताया-

"शिलौंग आने पर दोनों समय ही मैं उनको साथ लेकर गाड़ी में घूमने जाता था। अधिकतर जब मेरे जाने का समय होता तभी श्रीयुक्त बाबाजी महाराज मेरे साथ बाहर घूमने के लिये प्रस्तुत हो जाते थे। खूब जन-समागम होता था। उन सबको छोड़कर केवल मेरे साथ चले जाना, उन सब लोगों को अच्छा नहीं लगता था। लेकिन बाबाजी

ऐसा व्यवहार करते थे जैसे कि किसी दुर्दान्त सन्तान का आदेश पालन कर रहे हों। मेरा स्वभाव उग्र होने के कारण मैं उनसे साधारणतः उग्र भाव ही से बातचीत करता था। उन्होंने उसे भी स्वीकार कर लिया था। जन-समागम तथा उनकी व्यर्थ की कथा वार्ता तत्त्व-जिज्ञासा आदि से मुझे बहुत खीझ होती थी। एक दिन मैं बाबाजी ही से खीज गया, उनसे बहुत जोर से कहने लगा–'आपके गुरु महाराज की जीवन में उनकी अलौकिक लीलाओं का वर्णन है। यदि आप भी उनके जैसा कुछ कर सकें तो देखेंगे कि सब लोग भगवान के नाम में उन्मत्त हो जावेंगे। यदि कुछ कर सकते हैं तो आप दिखाते क्यों नहीं?' उन्होंने बहुत शान्ति से जबाव दिया–'ऐसा करने पर तो ये लोग मेरे मांस का टुकड़ा-टुकड़ा करके खा लेंगे।"

मेरे मन में अविश्वास ने अधिकार जमाया। मैंने मन में सोचा–'वकील थे, वकालत की बात कर दी।' फिर मैंने पूछा–कर तो सकते हैं ना?' बाबाजी ने उत्तर दिया-'हाँ बाबा ! तुम्हें पता लग जायगा।' बाबाजी के साथ मेरा सम्बन्ध केवल घूमने-घुमाने तक ही सीमित था। उनको पहुँचा कर मैं लौट जाता था। मैं भीड़ में कभी नहीं जाता था। यदि कभी प्रसाद के लिये आना होता तो बाहर बैठकर सिगरेट फूँकता रहता था। प्रसाद के सम्बन्ध में बाबाजी कहा करते थे–'बाबा, प्रसाद का बहुत गुण होता है।' वह हमेशा के लिये प्रसाद रखते थे, जितने दिन भी शिलौंग रहते इसमें व्यतिक्रम नहीं होता। दिन भर के काम के बाद एक दिन मैं अपने घर में सो रहा था। शेष रात्रि में नींद खुल गई। नींद खुल जाने पर सिगरेट पीने की मेरी हमेशा आदत थी। सिगरेट निकाल कर दियासलाई के बक्स पर उसे ठोक ही रहा था कि हठात् क्या देखता हूँ कि बाबाजी महाराज मेरे बिस्तर पर बैठे हैं। मैंने आश्चर्यचकित हो उनसे पूछा-'आप यहाँ?' उन्होंने हँसकर

एक संस्कृत का वाक्य उच्चारण किया। मैं संस्कृत नहीं जानता था इसलिये उसका अर्थ पूछा। उन्होंने जो कुछ जवाव में कहा उसका भी अर्थ भली-भाँति नहीं समझ सका, किन्तु बात मन में बैठ गई। उनकी सस्मित उज्ज्वल मूर्ति देखते हुए उनके वाक्यार्थ के सम्बन्ध में कुछ सोच ही रहा था कि सहसा वह अदृश हो गये। दूसरे दिन सुबह शोर्टराऊंड रोड पर गाड़ी छोड़कर जब वे पैदल घूम रहे थे, तब मैं उनसे प्रश्न करने जा रहा था, लेकिन वह अपने आप ही मेरी ओर देखकर बोले–'बाबा ! सब समय सब बातें नहीं कहते हैं।' मैंने अपने स्वाभावानुसार जोर से कहा–'न कुछ सुना न समझा, मुझे कौन समझायेगा?' तब उन्होंने कहा-'अच्छा बाबा, मैं सब समझा दूँगा।' बाद में परोक्ष भाव में उन्होंने सब कुछ मुझे समझाया।

"श्रीयुक्त शिलौंग में स्कूल-मास्टर थे। मेरे घर की सड़क के उस पार उनका किराये का मकान था। वह काफी लम्बे-चौड़े व्यक्ति थे। शरीर के अनुसार उनकी एक बाँस की कुर्सी थी जो बरामदे में पड़ी रहती थी, वह उस पर अक्सर बैठे रहते थे। उनके साथ मेरा खूब बन्धुत्व था। दोनों परिवारों में भी मेल-मिलाप था। किसी घटनावश मुझे यह मालूम हुआ कि वह बंगाली विद्वेषी हैं, तब से मुझे भी उनसे घृणा व विद्वेष हो गया। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज सुबह शाम मेरी गाड़ी ही में घूमने जाते थे, यह मैं पहले ही बता चुका हूँ। जब मेरी इच्छा होती तभी मैं उन्हें अपने घर ले आता था। शहर के सभी लोग मेरी मोटर ही में बाबाजी महाराज का दर्शन करते थे। यह जानते हुए भी कि मेरी मोटर में बाबाजी महाराज हैं, बाबू अपने बरामदे की कुर्सी पर पैर फैलाये बैठे रहते थे। कभी-कभी रास्ते में भी वह मिलते। वह मेरी गाड़ी की ओर पीठ किए खड़े रहते। मुझे बहुत गुस्सा आता। इधर

दूसरी तरफ बाबा को देखते ही बाबाजी महाराज कहने लगते-'देख रहे हो बाबा ! कितना सुन्दर चेहरा है। वाह ! वाह ! बहुत सुन्दर है।' इस पर मैं कहता-'उसके सुन्दर चेहरे से आपको क्या? अपने को बहुत समझाता है।' मैं मन ही मन सोचता X X बंगाली साधु समझकर थोड़ा भी सम्मान नहीं दिखा सकते हैं। कभी-कभी एसेम्बली के सामने-बाबू को हमारी गाड़ी की ओर पीठ किए खड़ा देखता, और बाबाजी महाराज का भी आवेग आरम्भ हो जाता।"

"बाबाजी शिलौंग से चले गये। बाबू के साथ मिलने की इच्छा तो पहले ही न थी, इन बातों के कारण घृणा और विरक्ति और भी बढ़ गई। कुछ दिनों बाद इनकी बदली हो गई। उनके जाने के समय भी मैं उनसे मिलने को इच्छुक न था। जिस दिन वह जाने वाले थे, उस दिन अन्य सबको स्टेशन भेजकर मुझ से मिलने के लिये ठहरे। मुझे देरी हो गई थी, उनके पास समय कम था तो भी वह ठहरे हुए थे। मैं जब मिला तो उनकी अवस्था देख मेरा मन पसीज गया। बातचीत के दौरान में मैंने उन्हें बताया-'श्रीयुक्त सन्तदास बाबाजी महाराज ने आपको आशीर्वाद भेजा है।' वे एकदम विह्वल हो गये 'इसका अर्थ यह है कि मेरा प्रणाम कब किया? आप या तो अपने बरामदे में पैर फैलाये बैठे रहते थे अथवा जब वह गाड़ी में होते तो आप पीठ करे खड़े रहते थे, आपका प्रणाम क्या इसी प्रकार का है?' उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से उत्तर दिया-'डाक्टर बाबू, हम लोगों की नीरव साधना है। हम जब साष्टांग-प्रणाम करते हैं, तब सबको ऐसा लगता है कि हम पीठ फेरे सीधे खड़े हैं।' आँखों में आँसू भरे वह चले गये।"

पक्षान्तर में उनके शिष्यों को अन्य महापुरुषों की कृपा भी अनेक बार विशेष रूप से प्राप्त हुई। इस सम्बन्ध में श्रीयुक्त बाबाजी

महाराज ने अपने किसी शिष्य को जो कुछ लिखा, वह यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ-

"X X X तुम्हारा पत्र मिला। भोलागिरि महाराज ने बाबू को दर्शन दिया, इसका तात्पर्य यही है कि यथार्थ महापुरुषों में भेदबुद्धि नहीं होती। वास्तव में जो लोग सद्गुरु की कृपालाभ करते हैं, वह सब लोग गुरुभाईयों के समान हैं तथा सब महापुरुषों की कृपा लाभ करते हैं। सबकी दृष्टि ही उन पर रहती है।....."

(पत्रावली प्रथम खण्ड पृष्ठ २२२)

ग्रन्थ का विस्तार न बढ़ जाये, इस कारण यहीं सब दृष्टान्त देकर इस विषय को समाप्त करता हूँ।

यथार्थ में श्रीसद्गुरु एक हैं। विभिन्न देहावलम्बन में कार्य करते हुए भी एवं उन सभी देहों में गुरुशक्ति-स्फुरण की विभिन्नता रहते हुए भी वास्तव में वह एक हैं और सर्वव्यापी हैं। "वे आत्मस्वरूप हैं, वही सर्वव्यापी पदार्थ हैं।" (पत्रावली प्रथम खण्ड पृष्ठ १८)

इस अध्याय में वर्णित घटनाओं में जो कुछ सम्पूर्ण रूप से फलित हुआ है, उसका उपसंहार श्री श्रीबाबाजी महाराज की एक इसी प्रकार की अमृतमयी वाणी को स्मरण करते हुए करता हूँ।

"श्री श्रीभगवान् सद्गुरु ही यथार्थ में अपने जन हैं, वह सर्वत्र हैं, सब स्थानों से कृपा कर सकते हैं। उनमें अपनत्व रखकर यह अभ्यास करते हुए कि वे सर्वदा हमारे निकट हैं,संसार के समस्त ताप शीघ्र दूर हो जायेंगे।" (पत्रावली प्रथम खण्ड पृष्ठ १९४)

पंचम अध्याय

चरित्र

श्रीक्षेत्र के विस्तृत समुद्र तट पर खड़े होकर जिस किसी ने सूर्योदय का दृश्य देखा है, वह क्या उसे कभी भूल सकता है? समुद्र और आकाश का वह निविड़ आलिंगन और उसके मध्य में प्रसन्न ज्योति का विकास सदा के लिये चित्तपटल पर अंकित हो जाता है। फिर कभी संसार के कर्म कोलाहलपूर्ण जीवन एवं क्लान्तिपूर्ण दिनचर्या में वह मधुर-स्मृति जीवन के उस क्षण को मधुमय बना देती है।

लेकिन ऐसा कितनी बार हो पाता है? क्या कोई यह कह सकेगा कि आकाश अथवा समुद्र को वह पूर्णता से जान पाया है?

इसी प्रकार से श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की महिमा तथा नाना रूपों का अनेक समय दर्शन करने पर भी हम उन्हें पूरी तरह से नहीं जान पाये हैं। लेकिन हमारे इस कलुषपंकिल जीवन में भी उनका निविड़ मधुमय स्पर्श हमें घेरे हुए है, इसकी अनुभूति हम सबको सदा रहती है।

इन विराट् पुरुष के बाह्य-व्यवहार का इतना वैशिष्ट्य था कि जो भी उनके सम्पर्क में आया वह उनकी ओर प्रबलता से आकर्षित हुआ। उनके शिष्य तथा भक्त-प्रशंसक आज भी जीवित हैं। जिन लोगों ने उनके सान्निध्य में समय बिताया है, उन लोगों के लिए उन दिनों की स्मृति उनके स्मृति-कोष की अमूल्य निधि हो गई है। श्रीभगवान की कथा कहते हुए उनका गद्गद भाव, उनकी गम्भीर मृदुवाणी, उनकी अपूर्व कर्म प्रणाली, दर्शन-शास्त्र के कठिन प्रश्नों का समाधान करने वाली उनकी असाधारण प्रतिभा, भक्ति प्रसंग उठते ही उनके सजल

नेत्र, इस प्रकार की उनकी कितनी स्मृतियाँ उनके जटाजूट मंडित तेजपुञ्ज शिवोपम मूर्ति के साथ हृदय-पटल पर एवं आँखों के सम्मुख उद्भासित हो जाती हैं।

उनके विषय में सोचते ही उनकी अपार करुणा की कथा याद आती है, जो कि वह सांसारिक प्राणियों के प्रति रखते थे। वह सन्यासी होकर भी फिर लौकिक-समाज में क्यों लौटे? वह संसार के समस्त बन्धन काटकर चले गये थे एवं गुरुकृपा से उन्होंने सब कुछ प्राप्त किया, उनका जो अभीष्ट था वह सिद्ध हुआ। श्रीवृन्दावन उनका गुरु-स्थान था, वहीं गुरुद्वारे में वे सिद्ध-मनोरथ हुए, वहीं जीवन का शेष भाग बितायेंगे, यही सोचकर उन्होंने संसार छोड़ा था। उसी वृन्दावन को छोड़कर शोक-ताप जर्जरित जन-समाज के बीच आने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु फिर भी वे आये?

ऐसा लगता है कि जो महापुरुष कुछ दिन संसार में रहने के बाद संन्यास लेते हैं तथा जीवनमुक्त हो जाते हैं, उनके मन में सांसारिक प्राणियों के लिए दर्द होता है। उन्हें भी अनुभव रहता है कि संसारी जीव कितना दुःखी और दुर्बल है और इसी कारण उन लोगों के प्रति असीम करुणा होती है। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की कृपा धनी-दरिद्र, ऊँच-नीच सभी के ऊपर समान भाव से थी। किसी की दुःख की कहानी सुन उसके साथ दुःखी हो जाना, अपराध होने पर उसे क्षमा कर देना आदि उनकी विशेषताएँ आज भी मुझे याद हैं।

शेष वयस में शरीर वृद्ध होने पर दीक्षा देने पर वे अस्वस्थ हो जाते थे। दीक्षार्थियों की संख्या अधिक होने पर कभी-कभी तो दीक्षा-दान के बाद वे अवसन्न होकर लेट जाते थे तथा बहुत देर तक उठ नहीं पाते थे। आखिरी दिनों जब स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था,

शरीर से भी दुर्बल हो गये थे तो हम लोग इस सम्बन्ध में आपत्ति करने लगे थे। एक बार कुछ गुरुभाइयों ने मिलकर उनसे निवेदन किया– 'बाबा! आजकल आपकी तवियत ठीक नहीं रहती है, दुर्बल भी हो गये हैं। दीक्षा देकर आप अवसन्न हो जाते हैं, कभी-कभी तो काफी देर तक अवसाद और ताप रहता है, ऐसी अवस्था में आप दीक्षा देना बन्द कर दीजिएगा।' श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की उस समय जो करुणा विगलित मूर्ति प्रकाशित हुई, वह मेरे हृदय-पटल पर आज भी अंकित है। वह कहने लगे–'बाबा ! फिर यह शरीर है किसलिए?' उनका यह उत्तर सुनकर हम लोग स्तम्भित हो गये। सांसारिक प्राणियों के प्रति उनकी यह करुणा और ममता देख हम लोग कुछ कह नहीं सके। संसार का समस्त ऐश्वर्य तुच्छ समझकर, संसार छोड़ा और फिर से उसी कलुषित जन-समाज में आने का रहस्य तथा उद्देश्य पूर्वोक्त कथन में निहित है।

बंगाल, विहार, आसाम और भारत के अन्य राज्यों के तीन हजार से अधिक नर-नारियों ने सोलह वर्षों के समय में उनके श्रीचरणों का आश्रय ग्रहण किया। श्री श्रीसद्गुरु की कृपा से इन लोगों का जीवन किस प्रकार से धन्य हुआ, उसका कुछ उल्लेख पिछले अध्याय में हो चुका है। बहुतों को आश्रय दिया, हमारी लौकिक दृष्टि के हिसाब से बिना कुछ विचार किये सभी को आश्रय दिया, जो भी प्रार्थी होकर आये उनमें अधिकांश ही को दीक्षा दी, इनमें असहाय, दरिद्र, शिक्षित लोगों की ही संख्या अधिक थी, धोबी आदि शूद्र जाति भी थे, हमारी दृष्टि में कुछ चरित्रहीन भी थे। इस सम्बन्ध में उस शिक्षित वर्ग की समालोचना भी सुनी जो उनको श्रद्धा तथा आदर करते थे। पहले पहल तो शिष्यों के मन में आपत्ति का भाव आता, सन्देह

होता, इस कारण ऐसे अयोग्यों की दीक्षा के सम्बन्ध में किसी ने उनसे निवेदन किया, उन्होंने जो उत्तर दिया उसे सुनकर हमारा संशय सदा के लिये दूर हो गया। हम लोगों ने अनुभव किया कि इस सम्बन्ध में हमारी जो निर्णय-बुद्धि थी, वह सर्वथा गलत है। जिस प्रकार दाता के अन्न पर यथार्थ अधिकार क्षुधित का है, उसी प्रकार यदि पापी मनुष्य के हृदय में शुद्ध जीवन लाभ की लालसा पैदा हो तो महापुरुष की कृपा-लाभ का वही पहला अधिकारी है। एक बार इसी प्रकार किसी दीक्षा प्रार्थी के सम्बन्ध में कुछ आपत्ति उन्हें बतायी गई। कुछ देर नीरव रहकर अपने गुरुदेव का प्रसंग कहते हुए उन्होंने सजल नेत्रों से कहा-'देख ! देख ! मेरे बाबा✤ ने तो मुझे अयोग्य समझकर लौटाया नहीं? यही याद करके मैं इन्हें लौटा नहीं सकता हूँ।' इसके बाद तो कुछ कहना ही व्यर्थ था, बाध्य होकर हमको चुप होना पड़ा।

एक बार उन्होंने जो उत्तर दिया उसे समझने के लिये उसके सम्बन्ध में एक विषय का उल्लेख करना आवश्यक है। हम लोग साधारणतः लोगों के दोष पहले देखते हैं, लेकिन उनका इस विषय में विपरीत स्वभाव था, वह पहले चरित्र-गुण ही देखते थे। बड़े-बड़े गुणों की ओर हमारी भी दृष्टि जाती है, लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि बहुत से दोषों का ही प्रावल्य दीखता है, गुण खोजने पर भी नहीं मिलते हैं, जब कि यह जानते हुए भी कि मनुष्य में बहुत गुण व बहुत अवगुण ही नहीं होते हैं, बल्कि दोनों ही चीजें होती हैं। इन परिस्थितियों में वे पहले गुण ही देख लेते थे। सैकड़ों दोषों के साथ एक गुण होता और वे उसे खोज लेते, उसको मर्यादा देते तथा हमें भी बताते, फिर यह भी कहते-'देख ! यह सब उसको मत बताना।'✤

✤ उनके गुरुदेव।

✤ अर्थात् इससे उसे अहंकार हो सकता है।

एक बार एक नये शिष्य के लिए बहुतों ने आपत्ति की तब उन्होंने कहा–'देखो ! तुम सब लोग उसके जो दोष बता रहे हो वह सब ठीक हैं।' फिर उन्होंने उसके दो एक गुण बताये (जो कि उन्होंने देखे ही नहीं) और कहा–"उसमें यह गुण भी तो है? शिष्य होने के योग्य यह एक लक्षण भी तो उसमें है, उसे ही लेकर भगवत्-नाम दिया है।" यह सुनकर वह लोग चुप हो गये।

एक दिन की बात और बताता हूँ। यह तीसरी बार का उनका उत्तर तो बहुत ही आश्चर्यपूर्ण है तथा उनकी अपरिमित दया का परिचायक है। घटना पूर्ववत् थी, क्या देखकर उसे शिष्य बना लिया? यही हम लोगों का प्रश्न था। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने करुण-मुद्रा में कहा था, बाबा ! क्या तुम लोग नहीं चाहते हो कि जीव शान्ति लाभ करे? अन्ततः कुछ समय के लिए तो उसका चित्त भगवान के प्रति उन्मुख हुआ और तभी वह प्रार्थी होकर आया? उसी दान के आधार पर मैंने उसे भगवत् नाम दिया। नाम की शक्ति अमोध है। निश्चय ही इस व्यक्ति का उद्धार हो जायेगा। कुछ क्षण नीरव रहकर फिर कहा–"इस काल में उनका नाम बहुत ही कम लोग करते हैं। किस प्रेरणा से वशीभूत होकर भगवान का नाम लूँगा? इच्छा लेकर वह यहाँ आया। मैंने भी उसमें शिष्य का एक लक्षण देखकर उसे श्रीचरणों में अर्पण कर दिया। अब वही अपनी वस्तु को शुद्ध कर लेंगे।"

दीक्षा-दान के समय वह जाति, कुल, शील, यश व वुद्धि कुछ भी नहीं देखते थे, केवल प्रार्थी का अन्तर देखकर ही दीक्षा देते थे, इसके कुछ उदाहरण दे रहा हूँ।

बारिशाल के श्रीयुक्त सुरेशचन्द्र मेहता नामक हमारे एक श्रद्धास्पद वयोवृद्ध गुरुभ्राता हैं। उन्होंने एक पत्र मे लिखा–"यहाँ से

आसन उठाकर श्री श्रीबाबाजी महाराज खुलना होते हुए बागेरहाट जाने के लिए जब स्टीमर में चढ़े तो उस समय एक भद्र मनुष्य स्टीमर पर आकर दीक्षा के लिए प्रार्थना करने लगा। बाबा ने उससे कहा कि उसे दीक्षा मिलेगी लेकिन अभी देरी है। फिर अगले वर्ष इनको दीक्षा दी। फिर कुछ दिन बाद इन्होंने बाबाजी को पत्र लिखा–"नीच प्रवृत्ति क्यों होती है?" बाबा ने उन्हें श्रीवृन्दावन से उत्तर दिया कि पूर्वजन्म संस्कार से ऐसा होता है तथा यह भी लिखा 'तुम्हारी सारी अवस्था समझकर ही मैंने दीक्षा दी है।' बाबा जब दूसरी बार यहाँ आये तो यह गुरुभाई अन्य गुरुभाइयों के सम्मुख अपनी दुश्चरित्रता की बातें श्री बाबाजी महाराज को बताने लगा तथा कहने लगा कि उसका यह स्वभाव उसका पीछा ही नहीं छोड़ रहा है। इस कुचरित्र के विषय में सुनकर भी बाबाजी महाराज का कुछ भावान्तर नहीं हुआ। उन्होंने कहा–'नाम करो, नाम करो, सब ठीक हो जायेगा।'

अब इस गुरुभाई की यह अवस्था है कि उसे खींचकर भी बुरी तरफ नहीं ले जाया जा सकता। हम लोगों में उनसे अधिक कौन सच्चरित्र और गुरुभक्त है? कह नहीं सकता।

एक बार जब वे श्रीहट्ट जिले के अन्तर्गत हविगंज गये थे, तो हमारे गुरुभाई–एक दिन एक अछूत स्त्री को उनके पास लाये। यह स्त्री दीक्षा लेने के लिए बहुत व्याकुल हो रही थी, लेकिन साहस नहीं हो पा रहा था कि उनके निकट आती। हमारे गुरुभाई ने भीड़ में सुयोग देखकर उस स्त्री की इच्छा बताई, तब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने उससे घर, कुटुम्ब, जाति आदि के विषय में सब प्रश्न पूछे तथा दीक्षा देने के लिए सहमत हो गये, लेकिन उन्होंने हमारे गुरुभाई को डाँटा कि उनसे बिना पूछे वे उसे उनके कमरे में क्यों ले आये। वाह्य-व्यवहार

तथा आचार-रक्षा के लिए ही उन्होंने ऐसा किया। फिर उन्होंने दीक्षा के समय उसे आदर एवं स्नेह से ग्रहण किया। प्रसन्न-भाव से हम लोगों को बताया–"बाबा ! नीच जाति होने से क्या होता है? इसका कपाल कितना प्रशस्त है तथा कपाल पर ऋषियों का चिन्ह है।" हम लोगों ने उसके उन्नत ललाट पर तिलक का चिन्ह देखा।

इस प्रकार की घटनाएँ हमने अनेक बार देखीं। किसी को आपत्ति करने पर वे कहा करते थे–"सभी भगवान के जन हैं, उनकी आराधना का सभी को अधिकार है। नीच जाति का होने पर भी यदि कोई भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करता है तो उसे अवश्य परम गति मिलेगी।" इस प्रकार उनकी कृपा सभी प्राणियों के ऊपर थी। वह केवल दीक्षा ही नहीं देते थे, वरन् गरीब होने पर मस्तक मुण्डन का पैसा, दीक्षादान के समय पहनने का कपड़ा आदि भी देते थे।

१३४४ (बंगाब्द) की माघ मास की सुदर्शन पत्रिका में हमारे गुरुभाई श्रीयुक्त नरेन्द्रनाथ सेठ एडवोकेट हाईकोर्ट ने लिखा–

"एक दिन एक उच्च शिक्षित देखने में सुन्दर युवक उनके पास मन्त्र ग्रहण करने के लिए आया। उन्होंने जैसे ही बाबाजी महाराज के चरण-स्पर्श किये वह चौंककर बोले–"तुम से मन्त्र ग्रहण नहीं होगा।" मैंने जाकर जब यह सुना तो मैं उसे फिर बाबाजी महाराज के पास ले गया। वह युवक नीचे सिर किये बैठा रहा। बाबाजी महाराज ने मुझसे कहा–"अभी नहीं होगा, बाद में हो सकता है।"

सन् १६२६ ई. में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज बरसात के दिनों में श्रीवृन्दावन-आश्रम में काफी बीमार हो गये थे। कुछ दिनों के बाद बीमारी तो ठीक हो गई, किन्तु क्वार के महीने तक वह काफी दुर्बल ही रहे। क्वार-कार्तिक महीने में बंगदेश में पूजा की छुट्टियाँ रहती हैं,

सो हर वर्ष ही अनेक जन उनके सान्निध्य में रहने के लिए श्रीवृन्दावन आते थे तथा छुट्टी-छुट्टी आश्रम में ही रहते थे। बंगाल और विहार से श्रीवृन्दावन आने-जाने में अधिक खर्च होता तथा इस तरह आने वालों में बहुत से धनिक भी नहीं होते थे। बहुत से ऐसे लोग भी आते थे, जो उनके शिष्य नहीं थे। इस बार जो लोग पहले आये वह श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की सेहत देखकर उन्हें जलवायु परिवर्तन के लिए मधुपुर ले जाने की व्यवस्था करने लगे। जब यह प्रस्ताव श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के सम्मुख रखा तो वह इस पर सहमत नहीं हुए कहने लगे—'मेरी जाने की इच्छा नहीं है। बहुत से लोग जो यहाँ आने की आशा में रहते हैं, वह दो-चार दिन में आने वाले हैं। इतनी दूर से इतना कष्ट उठाकर वह लोग यहाँ आवेंगे और मुझे यहाँ न पाकर उन्हें बहुत दुःख होगा? अभी भी जो आये हुए हैं, उनमें कुछ ऐसे है जो मधुपुर भी साथ नहीं जो सकते। इन सब को छोड़कर शरीर के लिए मैं कैसे जा सकता हूँ? इससे उनकी शिष्य-वत्सलता प्रकट होती है।

हम लोगों के सर्वज्येष्ठ साधु गुरुभाई श्रीयुक्त अनन्तदासजी ने एक बार नर्मदा नदी के किनारे की वन-भूमि में कुछ समय अवस्थान किया था। इस समय श्रीयुक्त बाबाजी महाराज शिवपुर आश्रम में पीड़ितावस्था में थे। अनन्तदासजी ने एक दिन स्वप्न में देखा कि बाबा का शरीर बहुत दुर्बल हो गया है तथा उन्हें पुकार रहे हैं। लगातार दो दिन तक यही स्वप्न दीखा। उनका मन चंचल हो उठा और वह व्याकुल भाव से वृन्दावन चल पड़े। वृन्दावन-आश्रम में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को न पाकर वे शिवपुर जा पहुँचे। बाबा मानों उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे, एकदम बिस्तर पर उठकर बैठ गये और पास बैठे डाक्टर से कहने लगे-'अब दवाई की आवश्यकता नहीं है, अब मैं

ठीक हो जाऊँगा। मेरा बड़ा बेटा आ गया है।' फिर उनकी इच्छानुसार श्रीयुक्त अनन्तदासजी को उन्हीं के कमरे में फर्श पर आसन बिछाकर प्रसाद दिया गया। स्वयं रोग-यन्त्रणा भूलकर-'यह खाओ, वह खाओ' कहकर प्रेम से खिलवाने लगे। उनका यह व्यवहार उस विरहिणी जननी की भाँति था, जो दूर प्रवासी पुत्र को बहुत दिनों बाद पाकर खुश हो जाती है। हम लोगों के प्रति उनका यह भाव स्वाभाविक ही था।

श्रीयुक्त कन्हैयादास नामक हम लोगों के एक साधु गुरुभाई हैं। श्री श्रीबाबाजी महाराज के साथ वह उनके देहान्त-पर्यन्त रहे हैं तथा सदा ही धैर्य, प्रेम और भक्ति से उनकी सेवा की। वास्तव में इनकी जैसी सेवा करने वाला हम लोगों ने कोई नहीं देखा। ऐसा कहने का एक विशेष कारण है, क्योंकि श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का इनके प्रति व्यवहार अतिरिक्त कठोर ही लगता था। इस विषय पर कन्हैयादास कुछ समय बाद पूछने पर उन्होंने जो जवाव दिया, वह उन्हीं के शब्दों में उद्धृत कर रहा हूँ। इससे भी श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के चरित्र का एक अंग प्रकाशित होता है-

"किसी किसी दिन खूब कठोर परिश्रम करने के बाद जब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के पास जाता तो यह सोचता था कि आज बाबा मुझ से खूब प्रसन्न होंगे तथा प्यार करेंगे, लेकिन उनके पास पहुँचने पर आशा के विपरीत ही मेरे भाग्य में होता। किसी बात व घटना को लेकर वह मेरा तिरस्कार करते। मर्माहत होकर मैं भी उनसे रूठ जाता तथा उनके पास नहीं जाता था, लेकिन तब बाबा मुझको किसी न किसी काम के बहाने प्यार से बुलाते तथा मधुर व्यवहार करते। मैं उनके व्यवहार से इतना मुग्ध हो जाता तथा मान अभिमान सब भूल जाता और यह सोचने लगता कि श्री श्रीगुरुदेव दया के सागर

हैं, उनका बाहर के आचरण वज्र के समान कठोर लेकिन अन्तर फूल से भी कोमल है। इन दोनों भावों को देखकर मैं पहिले से और भी अधिक उनकी ओर आकृष्ट होता और यही सोचता कि बाबा मुझे शुद्ध और शान्त बनाने के लिये इस प्रकार का आचरण करते हैं। कभी-कभी उनके व्यवहार से ऐसे लगता, जैसे वह मुझ से अप्रसन्न हैं किन्तु फिर गम्भीर भाव से सोचता तो ऐसा लगता तैसे वह मेरे हितैषी हैं तथा मुझसे प्रसन्न ही हैं। केवल मेरे मन को शुद्ध करने के लिये कभी-कभी ऐसा करते हैं। यथार्थ में उनके हृदय में स्नेह-धारा सदा ही प्रवाहित रहती थी, जब जो जिद करता तो स्नेहमयी जननी की भाँति उसे पूरा करते। वास्तव में वे हमारी स्नेहमयी माता, भरण-पोषणकारी पिता तथा शासनकारी गुरु थे। उनसे यदि कोई अप्रयोजनीय वस्तु माँगते तो उसे इतना डाँटते तथा प्रयोजनीय वस्तु चाहने पर आशा से अधिक देते। उनका व्यवहार इतना सरल था कि हम उनसे अपने मन की बातें निःसंकोच रूप से कह देते तथा वह सब कुछ सुनकर यथोचित व्यवस्था कर देते।"

संसारी शिष्य और शिष्याओं के प्रति भी उनका स्नेह एवं वात्सल्य कुछ कम रहा हो ऐसा भी हमने कभी अनुभव नहीं किया। वह एक समान रूप से सबके माता पिता थे। पूजा की छुट्टियों के समाप्त होने पर जब आश्रम से उनके शिष्य अपनी-अपनी जगह रवाना होने से पहले उनसे विदा लेने आते तो वे आसन पर से उठकर आश्रम के फाटक तक आते तथा वे लोग प्रणाम करके चलते तो इस सर्वत्यागी संन्यासी की आँखों में आँसू होते।

उनसे हम लोगों ने खूब स्नेह पाया। उनका स्नेह, यत्न, कल्याणंकामना सब परिपूर्ण थी, कार्पण्य का लेश भी न था।

साधु-शिष्यों के सब विषयों का भार✤ तो उन्होंने लिया ही था, संसारी शिष्यों के भी अभाव-अभियोग का ध्यान रखते, संसार की अनेक समस्याओं–बेकारी, आकस्मिक विपदा, कन्या का विवाह, आदि की ओर सहिष्णु दृष्टि रखते। बहुत समय तो उन्होने स्वयं चेष्टा करके सानुकूल व्यवस्था की।

दौलतपुर में जब मैं संस्कृत विद्यालय में पढ़ता था तो एक बार छुट्टियों में वृन्दावन आकर मैंने बाबाजी महाराज से प्रार्थना की-'बाबा ! कभी-कभी वहाँ अनेक प्रकार के दुःख व कष्ट आ जाते हैं, यहाँ आपके पास आकर कोई दुःख नहीं है। कभी तो ऐसा लगता कि बस आपके पास आ जाऊँ। दौलतपुर में अब और अधिक रहने की इच्छा नहीं होती।' बाबा ने कुछ नहीं कहा, थोड़ी देर बाद बाउल के सुर में यह गान गाकर मेरी बात का जबाव दिया–

"बिना दुखे हय ना साधन,
सेई योगी जनार बांछित चरण रे।
सहजे कि हय कखन पाषंड दलन रे?
सुख शय्याये शुये केवा पेयेछे कखन,
सेई देवेर दुर्लभ अमूल्य रतन रे?
अश्रुपात करे बीज करवे वपन,
यदि मनेर आनन्दे शस्य करिवे कर्तन रे।
प्रभुर कार्ये हय यदि ए देह पतन,
(तवे) परिणामे दिव्यधामे करिवे गमन रे।।"

✤ वृद्ध अवस्था में दुर्बल शरीर होने पर भी साधु-शिष्यों को नियमित रूप से स्वयं पढ़ाते थे। वर्तमान साधु-समाज में ज्ञान-चर्चा का अभाव देख उन्हें बहुत दुःख होता, हमारे गुरुभाई लोग शास्त्र-चर्चा विमुख तथा भोग-लिप्सु न हों, इसका वह विशेष ध्यान रखते थे।

भावार्थ—योगीजन बांछित उन चरणों की साधना बिना दुःख सहे नहीं होती। अधार्मिक व नास्तिक का दलन करना सहज साध्य नहीं है। सुख-शय्या पर लेटे-लेटे कभी देव-दुर्लभ रत्न मिल सका है? अश्रुपात करके ही बीज बोना है, यदि आनन्द से फसल काटनी है तो। प्रभु के काम में यदि यह शरीर नष्ट हो जाये, तो परिणाम में दिव्यधाम मिलेगा।

मुझसे भी साथ में गाने को कहा तथा सुर भी सिखाया, उनके साथ में गाकर बहुत ही आनन्द आया तथा मेरी आपत्ति की मीमांसा भी हो गई।

बाबाजी महारजा देह-त्याग से कुछ समय पहले जलवायु परिवर्तन के लिये कुछ दिनों को इटावा गये थे। रोज सुबह घूमने जाते थे, मैं व अनन्तदासजी उनके साथ में जाते थे। कुछ दिन बाद गुरुभाई श्रीयुक्त शचीन्द्रकुमार सैन✣ भी आ गये और वह भी साथ में जाने लगे। पौष का महीना था, इटावे में विषम शीत पड़ रही थी। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के लिये कपड़े के जूते बनाये गये थे, वह उन्हें पहन कर ही घूमने जाते थे। एक दिन सुबह जब सब घूमने जा रहे थे, तो शचीन्द्रबाबू एवं बाबाजी महाराज के पैरों में कपड़े के जूते थे तथा हम दोनों नंगे पैर थे। चलते-चलते शचीन्द्रबाबू कहने लगे-'बाबा, अननतदासजी और धनंजयदासजी को इस जाड़े में खाली पैरों चलने से बड़ा कष्ट होता है, यदि आप अनुमति दें तो इन दोनों के लिये भी कपड़े के जूते खरीद लूँ।' श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने उत्तर दिया-'नहीं बाबा, यह ठीक नहीं है। मैं तो वृद्ध हो गया हूँ, शरीर भी ठीक नहीं रहता है। इस कारण बाध्य होकर यह जूते पहने हैं, नहीं तो साधु होने के बाद

✣ अवकाश प्राप्त डिस्ट्रिक्ट सैशन जज। ये तथा इनकी स्त्री श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की विशेष भक्त हैं। दो एक बार अनेक अनुरोध करके ये उनको अपने निवास स्थान ले गये थे तथा मन, वचन एवं कर्म से सेवा की थी।

मैंने अभी तक किसी प्रकार के जूते नहीं पहने थे। साधुओं के लिये जूता पहनना असंगत है।'

सन् १६२३ ई. में आषाढ़ मास में कलकत्ता हाईकोर्ट के विख्यात वकील श्रीयुक्त ब्रजलाल शास्त्री के बहुत बुलाने पर श्री श्रीबाबाजी महाराज उनके एक भाई के यहाँ कुछ दिन रहे थे। वहाँ पर एक दिन कुछ लोगों ने मुझे पकड़ कर एक विशेष प्रकार की तरकारी बनाने को कहा, जरूरत की तरकारी वे लोग ले आये थे। मैंने बाबा से जाकर कहा-'ये लोग बहुत आग्रह से तरकारी ले आये हैं, यही तरकारियाँ आज बनानी होंगी।' मैंने जैसे ही यह कहा कि बाबा बहुत ही जोर से गुस्से में चिल्लाये-'अभी उठ यहाँ से, तुम बन्दोबस्त करने वाले कौन हो और कुछ भी नहीं बनेगा।' मुझे बहुत ही बुरा लगा, सबके सामने इस प्रकार अपदस्थ होकर मैं बाबा से रूठ-सा गया। प्रसाद के समय भी अपने आसन ही पर चुपचाप लेटा रहा। श्री श्रीमाता ठकुरानी स्वयं आकर मुझे प्रसाद पाने के लिये बुलाकर ले गईं। बाबा ने कहा-'मेरे पास ही इसे बिठाओ।' प्रसाद ग्रहण करने तो बैठ गया, किन्तु मुझसे खाया नहीं जा रहा था, बीच-बीच में बाबाजी महाराज अपनी पत्तल में से कुछ-कुछ देते जा रहे थे तथा साथ में कहते जाते थे-'बाबा ! खाओ ! खूब प्रसन्नता से खाओ !' आचमन करने के बाद अपने कमरे में जाते समय मुझ से कहकर गये कि आचमन करने के बाद मेरे पास आना।' 'मैं अभी आ रहा हूँ।' कहकर मैं उनके कमरे में गया, वह लेटे हुए थे, मुझसे बोले-'पैर दाब दे', मैं पद-सेवा करने लगा। तब बड़े शान्त और मधुर स्वर में कहने लगे-'देखो बाबा ! तुमने मुझे गुरु किसलिये बनाया है? चित्त निर्मल करके भगवत्-दर्शन द्वारा संसार-यन्त्रणा से उद्धार मिले इसी कारण ही

तो !' मैंने उत्तर दिया-'हाँ, इसीलिये ही।' तब बाबा ने कहा-'मैंने तुम्हारा तिरस्कार इसलिये किया कि तुम्हारी अभिमान-वृत्ति दूर हो तथा तुम यथार्थ कल्याण-मार्ग की ओर अग्रसर हो सको। जब फटकार खाओगे तब ही इस उद्देश्य को समझकर प्रसन्नचित्त उसे ग्रहण करने का अभ्यास कर सकोगे, तभी चित्त भी शीघ्र निर्मल होगा तथा भगवत्-दर्शन के अधिकारी हो जाओगे। सच्चा गुरु अपने आश्रितजनों का अभिमान नहीं बढ़ने देता है।'

विगत १९२६ ई. में हरिद्वार कुम्भ से ढाई महीने पहले श्रीवृन्दावन के अर्द्ध-कुम्भ में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज यमुनाजी की रेती में श्रीपंचमी से दोल-पूर्णिमा (होली) तक अपना आसन स्थापित क़रके वहाँ रहे थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है। इस समय उनके साथ हमारे अनेक साधु-गुरुभाई थे। शिवपुर आश्रम के वर्तमान महन्त रामकृष्णदासजी के ऊपर श्री श्रीठाकुरजी की सेवा-पूजा का भार था। एक दिन सुबह यमुना-स्नान करके आने में उन्हें कुछ देरी हो गई। जब आये तो देखा कि श्रीयुक्त बाबाजी महाराज स्वयं श्री श्रीठाकुरजी की सेवा कर रहे हैं। वह डरकर जल्दी-जल्दी तिलक-स्वरूप कर श्रीयुक्त बाबाजी महाराज से बोला-"बाबा, आप जायें, मैं पूजा करता हूँ।" उन्होने उस समय कुछ जबाव नहीं दिया, सेवा-पूजा का कार्य करते रहे। रामकृष्णदासजी बार-बार उनसे उठने का अनुरोध करने लगे। तब सहसा वह खड़े हो गये और उसके गाल पर जोर से चाँटा मारा तथा कहने लगे-'इतनी देर हो गई है, अभी तक श्री श्रीठाकुरजी का उत्थापन नहीं किया? यदि तुम्हारी पूजा करने की इच्छा नहीं है तो मुझे पहले क्यों नहीं बताया? ठाकुरजी ने मुझे अभी इतना असमर्थ नहीं किया है, मैं स्वयं उनकी पूजा कर सकता हूँ।' तब रामकृष्णदासजी रोने

लगे। रामकृष्णदासजी को बहुत बुरा लगा तथा यह संकल्प करके कि वह उनसे अब कुछ बात नहीं करेंगे। श्री श्रीठाकुरजी की सेवा-पूजा करके कहीं चले गये। थोड़ी देर बाद बाबाजी महाराज ने उन्हें बुलवाया तथा पूछा-"बाबा ! तुम कहाँ गये थे? तबियत तो ठीक है न?" इस पर उन्होंने कुछ जबाव नहीं दिया, लेकिन बाबाजी महाराज के स्नेह कण्ठ और मधुर भाव से उनके मन में जो भाव था, वह परिवर्तित हो गया और कहने लगे-'बाबा ! काकाजी के पास गया था।' बाबा ने कहा-"यह लो, तुम्हारे लिये मैंने यह प्रसाद रखा था" और उन्हें आँवले का मुरब्बा प्रसाद दिया।

बाबाजी महाराज ने कभी-कभी साधु-शिष्यों को इससे भी अधिक कठोर दण्ड दिये। लाठी, पंखा, लकड़ी आदि से प्रहार किया तथा आश्रम से निकाल भी दिया। यह सब कठोर शासन साधु-शिष्यों ही के लिये था, गृहस्थियों के लिये नहीं था। आखिरी दिनों में शासन की कठोरता काफी कम हो गई थी, तिरस्कार ही किया करते थे।

उनकी दया केवल आध्यात्मिक उन्नति के पथ तक ही नहीं सीमित थी बल्कि व्यावहारिक और सांसारिक बातों के लिये भी वह दया के सागर थे। जब तक वे संसार में थे, तब तक बहुत से दरिद्र छात्र उनके यहाँ रहते थे तथा बहुतों को नियमित रूप से आर्थिक सहायता करते थे। साधु होने के बाद तो उनकी कोई आय रही ही नहीं थी, जिसके द्वारा वह दूसरों की सहायता कर सकते। श्री श्रीठाकुरजी की सेवा के लिये जो लोग अर्थ भेजते थे, वह ठाकुरजी की सेवा ही में खर्च होता था, उसमें से वह किसी को दान नहीं देते थे। उनको प्रणामी में जो कुछ मिलता था, वह किसी एक शिष्य के पास जमा रहता था तथा इसमें ही से वह दान देते थे। हमारे एक गुरुभाई ने बताया-'बी. ए.

परीक्षा देने के बाद मेरी तबियत बहुत खराब हो गई थी, शरीर भी खूब दुर्बल हो गया, कुछ काम-काज करने के योग्य भी नहीं रहा था। पहले तो खूब परिश्रम कर लिया करता था, अब थोड़ा भी परिश्रम करने में बुखार आ जाता। मेरी इतनी दुरावस्था थी कि दवाई तक के लिये पैसे नहीं थे। मेरी ऐसी अवस्था जानकर श्रीगुरुदेव ने अपने आप मेरी आर्थिक सहायता की। मैं यह सोच भी नहीं सकता था तथा चाहता भी नहीं था। प्रचलित धारणा के अनुसार गुरु को कुछ देना चाहिये, यह मैं जानता था, लेकिन उनको कुछ देने की तो मेरी सामर्थ्य ही नहीं थी और इसके लिये मैं लज्जित भी था और वही मुझे सहायता करेंगे, यह तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। श्रीगुरु ही पिता, माता, भ्राता, बन्धु हैं तथा जीवन का समस्त भार ही उन्होंने ग्रहण किया, तब यह मैं जानता न था। खैर जो हो, वह रुपया पैसा जल्दी ही समाप्त हो गया, कुछ तो मुझसे बहुत बुरी अवस्था थी। इसके बाद फिर खाली होकर बैठ गया, बहुत ही कष्टपूर्ण अवस्था थी। इस समय श्रीयुक्त-दादा ने कुछ महीनों तक नियमित रूप से आर्थिक सहायता की। एक संग में वे थोड़ा स्वस्थ भी हो गया तथा एक स्कूल में हैडमास्टरी की जगह मिलने पर वहाँ चला गया। इस प्रकार जब मेरी अवस्था अच्छी हो गई तो श्रीयुक्त-दादा ने मुझे बताया कि वह रुपये उन्होने नहीं दिये, वरन् श्रीगुरुदेव ने दिये थे, उन्होंने उन्हें बुलाकर कहा था–'उसकी अवस्था बहुत खराब हो रही है, उसको एक साथ इतने रुपये नहीं देना, नहीं तो वह बिना सोचे समझे सब खर्च कर देगा, तुम थोड़े-थोड़े प्रयोजन के अनुसार ही देना' और ऐसा कहकर एक साथ काफी रुपये दिये। यह सुनकर मेरे मन की जो अवस्था हुई, वह मैं बता नहीं सकता हूँ। आज भी उस दिन की बात याद करके अश्रुरोध नहीं कर सकता हूँ। इसके बाद नौकरी से छुट्टी लेकर जब एम. ए. की परीक्षा दी थी तो

टयूशन करके घर पैसा भेजता था, लेकिन परीक्षा की फीस ८०) देने की तब भी सामर्थ्य नहीं थी, वह रुपये भी बाबाजी महाराज ने.ही दिये थे।

'तोती' नामक एक वृन्दावनवासी जो कि जाति का चमार था, लेकिन वह काम राजमिस्त्री का करता था। वही आश्रम की मरम्मत का काम अधिकतर करता था। एक दिन उसे सीमेण्ट चोरी करते ले जाते देख मैं उसे पकड़ श्रीयुक्त बााजी महाराज के पास ले गया। उन्होंने सब कुछ सुनकर उससे पूछा तथा फिर खूब डाँट-फटकार दी। थोड़ी देर बाद ही मैंने देखा कि वह उससे दूसरे दिन के काम के बारे में अच्छी तरह कुछ सलाहमशवरा कर रहे हैं। उसके जाने के बाद श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने मुझसे कहा-'देख बाबा ! ये लोग बहुत गरीब हैं, इन पर दया करनी चाहिये।'

श्रीवृन्दावन-आश्रम में पखाना व नाली साफ करने के लिये एक मेहतर है। उसे रोज खाना देना होता है। एक दिन दोपहर को बहुत से अतिथि आने के कारण प्रसाद कुछ कम हो गया, अतः उस दिन मेहतर को प्रसाद नहीं दिया जा सका। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को किसी तरह यह मालूम हो गया, उन्होंने हम लोगों को बुलाया। जिनके ऊपर प्रसाद बाँटने का भार था, उनसे बोले-'आज मेहतर को प्रसाद क्यों नहीं दिया गया?' उन्होने डरते-डरते कहा-'आज पंगत के समय बहुत से साधु आ जाने से प्रसाद कम हो गया, इसलिये उसके लिये कुछ नहीं बच पाया।' इस पर उन्होंने कठोर भाव से कहा-'यह बात मैं नहीं सुनूँगा। सब तो खा लेंगे और उसी के लिये कम हो जायगा, यह कहाँ की बात है? खबरदार फिर ऐसा न हो। मेहतर को रोज प्रसाद देना ही है, उसके लिये पहले से निकाल कर रख देना।' भण्डारी को बुलाकर मेहतर के लिये दाल, आटा आदि लाने को कहा।

जब उसको यह दे दिया गया तो बाबाजी महाराज ने हम लोगों से बहुत स्नेह से कहा–'देख, माँ जिस प्रकार शिशु-सन्तान की विष्ठा-मूत्र परिष्कार करती है, घृणा नहीं करती है, ये लोग भी उसी प्रकार हमारी सेवा करते हैं, इनको थोड़ा-सा खाना देना क्या उचित नहीं है?' इस प्रकार बहुत कुछ कहकर हम लोगों को समझाया।

निम्न श्रेणी के लोगों की अवज्ञा तथा अपनी सुख-सुविधा के लिये उन्हें दबाना, उनको असहनीय था। जिसको ऐसा करते देखते थे उसको वह डाँटते थे। इसके उदाहरण हम लोगों ने बहुत से देखे।

केवल सब प्रकार के मनुष्यों के लिये ही उनके मन में दरद था, यह भी बात नहीं थी। पशु, पक्षी यहाँ तक कि वृक्ष, लता आदि के प्रति भी उनके मन में अगाध दया थी। एक बार जब वे कलकत्ता मे श्रीयुक्त सारदाप्रसन्नदास के घर में थे तो एक दिन उन्होंने सुबह गंगा-स्नान की इच्छा प्रकट की। श्रीयुक्त ब्रजलाल शास्त्री सुबह उनसे मिलने आये हुए थे। उन्होंने यह सुनकर प्रस्ताव किया कि वह अभी घर से घोड़ा गाड़ी भेज देंगे, श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को स्नान करवा कर वापस यहाँ पहुँचाकर फिर वह उससे हाईकोर्ट चले जायेंगे। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने इस पर अपनी असहमति जताई बोले-'घोड़े को इतना आना-जाना करने में बहुत तकलीफ होगी, यह व्यवस्था ठीक नहीं है, घोड़ा होकर भी वह जीव तो है? उन्होंने यह बात इस तरह से कही कि उपस्थित लोग फिर इस विषय में कुछ न कह सके। उनके गंगा-स्नान के लिये दूसरी व्यवस्था की गई।

ब्रज में एगरारा नामक स्थान पर ही श्री राधाबिहारीजी की कुछ जमीन है। वहाँ पर कुछ बैल रखकर खेती करवाते हैं, वहाँ की

जलवायु भी स्वास्थ्यकर है। देह-रक्षा के कुछ महीने पहले श्रीयुक्त बाबाजी महाराज वहाँ कुछ समय जाकर रहे थे। वह वहाँ जितने दिन रहे रोज सुबह आकर बैलों को देखा करते थे। उनकी कुछ तकलीफ देखकर उसका प्रतिविधान करते तथा कहते "बाबा ! यह लोग तो स्वयं अपनी तकलीफ व असुविधा नहीं बता सकते हैं, इस कारण इनका विशेष रूप से ख्याल किया करो। यदि कुछ तकलीफ दीखे तो उसे जल्दी दूर करने की चेष्टा किया करो।"

श्रीवृन्दावन में यमुना से दूरवर्ती स्थानों में गर्मी के दिनों में पशु-पक्षियों को जलाभाव से बहुत कष्ट होता है, गहरे कुओं के अलावा कहीं पानी नहीं रहता। हम लोगों के आश्रम के पिछले बरामदे में ही श्रीयुक्त बाबाजी महाराज अक्सर बैठा करते थे, वहीं उनके आसन के सामने एक बड़े मिट्टी के बर्तन में उनके आदेशानुसार पानी भरकर रखा जाता था। कुत्ते, बिल्ली तथा बन्दर उसमें से पाली पीते थे, एक छींके में भी पानी भरकर मिट्टी का बर्तन टाँग दिया जाता था जो कि पक्षियों के लिये था।

वृक्ष-लता के प्रति भी उनकी करुणा का परिचय हम लोगों ने बहुत बार देखा। एक दिन शाम को बंगदेश के एक ग्राम में तालाब के किनारे-किनारे श्रीयुक्त बाबजी महाराज टहल रहे थे। तालाब के किनारे काफी दूर तक पौधे लग रहे थे। हमारे एक गुरुभाई ने कुछ पौधों को उखाड़ फैंका। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने अप्रसन्न भाव से उन्हे यह करने से मना किया। गुरुभाई ने फिर और पौधे नहीं उखाड़े। उन्होंने इस विषय में लिखा "उनको चलने में सुविधा रहे इसी कारण मैं वैसा कर रहा था लेकिन फिर भी उन्होंने यह करने की मनाही की। पहले तो मेरी समझ ही नहीं आया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया तथा

उनका अप्रसन्न भाव देखकर मन में कुछ दुःख भी हुआ। उनकी कृपा ही से बाद में मेरे समझ में आया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया? दयालुता वश उन्हें यह पसन्द नहीं हुआ कि मैं पौधे उखाड़ूँ? यह सामान्य घटना भी वास्तविक रूप में मेरे लिये स्मरणीय बन गई।"

शिवपुर आश्रम में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के कमरे से कुछ दूर पर एक इमली का पेड़ है। हम लोगों के देश के प्रचलित संस्कार के अनुसार इमली के पेड़ की हवा अच्छी नहीं मानी जाती है। इस पेड़ को कटवाने के लिये हम लोगों ने बहुत आग्रह किया, किन्तु श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने अपनी असहमति देते हुए कहा-'देखो बाबा ! वह तो तुम्हारा कुछ अनिष्ट नहीं कर रहा है, जमीन भी बहुत घेर नहीं रखी है, एक तरफ खड़ा है, उसे क्यों मारते हो?'

अब उनकी अपूर्व क्षमा के विषय में कुछ बताऊँगा। उनकी क्षमा के बारे में सोचते ही विस्मित होना पड़ता है। १९२८ ई. के प्रथम भाग में जब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज श्रीहट्ट के अन्तर्गत अनेक स्थानों में भ्रमण कर रहे थे, उस समय उनके साथ हमारे साधु गुरुभाई श्रीरामकृष्णदासजी तथा दूसरे सम्प्रदाय के एक अल्पवयस्क साधु थे। यह साधु लोभवश श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की प्रणामी में से कुछ रुपये ले लेते थे। एक दिन एकादशी के उपलक्ष्य में बाबाजी महाराज के फलाहार की जो वस्तुऐं रखी थीं, उनमें से चुपचाप खाकर जब वह कुछ फेंकने जा रहा था तो पकड़ा गया। इस सम्बन्ध में जब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को बताया गया तो उन्होंने बहुत क्रोधित होकर उसको मारा-पीटा।

आखिर में जब वह साधु कातरता से क्षमा प्रार्थना करने लगा तब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने कहा-'लिख दे कि और कभी कुछ अपराध करेंगे तो हमको नंगा करके निकाल दीजियेगा।' तब उन्होंने यही किया। फिर उस कागज को जरूरी तथा महत्वपूर्ण समझने का

भाव दिखाते हुए कहा-"रामकृष्णदास ! यह कागज मेरी झोली में रख दो" तथा साधु को प्रसाद खाने को कहकर शयन-कक्ष में चले गये।

थोड़ी देर बाद जब वे लौटे थे तथा रामकृष्णदास उनके हाथ पैर दबा रहे थे तो उन्होने श्रीयुक्त बाबाजी महाराज से कहा-"बाबा ! इसको आप खर्चा देकर वृन्दावन भेज दें, यदि फिंर चोरी करता हुआ पकड़ा गया तो हमारी भी बदनामी होगी।" श्री श्रीबाबाजी महाराज ने अपनी मधुर वाणी में जबाव दिया-"बाबा ! फिर तो उसके लिये कुछ आशा ही नहीं रहेगी, अच्छा तो यही रहेगा कि वह तुम लोगों के साथ रहे, सत्संग से उसके स्वभाव में संशोधन हो सकता है।" यह बात उन्होंने इतने आद्र स्वर से कही कि रामकृष्णदासजी और आपत्ति नहीं कर सके।

जिसको हम लोग अन्याय व अपकर्म समझते हैं वैसे गर्हित काम यदि उन्हें बताकर क्षमा माँगी जाती तो वे क्षमा कर देते थे। किसी घटना को उपलक्ष करके श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने अपने कुछ शिष्यों से कहा था-"तुम यदि दोष ही देखना चाहो तो मुझ में भी सैकड़ों दोष हैं।"

फिर एक दिन अपने गुरुदेव की किसी बात का उल्लेख करते हुए हम लोगों को कुछ उपदेश दे रहे थे, वह विंशेष स्मरणीय है। हम लोगों के एक गुरुभाई किन्हीं सब करणोंवश बहुतों के अप्रिय हो गये थे। उसके अनेक दोष बताते हुए बहुतों ने श्रीयुक्त बाबाजी महाराज से उसे कुछ दण्ड देने का अनुरोध किया। सब कुछ उन्होंने बहुत शान्तिपूर्वक सुना तथा फिर कहा-"देख, अब तो उसे शिष्य बना लिया है, अब उसे कैसे छोडूँ? तुम लोग उसे छोड़ सकते हो किन्तु मैं तो यह नहीं कर सकता। मेरे बाबा✤ भी कहते थे-'एक गुण रहने से दो दोष

✤ अर्थात् श्रीकाठियाबाबाजी महाराज।

साथ-साथ सदा ही लगे रहते हैं।' देख बाबा ! सत्त्व, रज और तमोगुण सभी में हमेशा होता है। इसमें सत्वगुण के कार्य को गुण तथा रज और तमोगुण की क्रिया को दोष कहते हैं। इस कारण किसी में भी एक गुण रहने से दो दोष भी होंगे। मुझ में भी रज और तमोगुण की क्रिया होती है, इस कारण मुझ में भी यथेष्ट दोष है। सिर्फ दोष रहने के कारण यदि तुम लोग दण्ड देने को कहते हो तो फिर मुझको भी तुम्हें निकालना होगा। यह सुनकर सब लोग शान्त हो गये।"

श्रीयुक्त पतितपावनदासजी नाम के एक वृद्ध साधु गुरुभाई हैं। वह बताते हैं-"मैंने तो श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को हमेशा साक्षात् महादेव के रूप ही में देखा। कोई यदि अपराध करता तो एकदम अग्निमूर्ति हो जाते, किन्तु कोई कितना भी बड़ा अपराध करके उनके पास जाकर अपना अपराध स्वीकार करके क्षमायाचना करता तो उसका अपराध झट से क्षमा कर देते।" एक दिन हम लोगों के एक गुरुभाई अपने अतीत के कुकृत्यों का निष्कपट इतिहास श्री श्रीबाबाजी महाराज को बताकर अनुतप्त हो रहे थे, कुछ कार्य तो बहुत ही गुरुतर पाप कृत्य थे। सब कुछ सुनकर उन्होंने कहा-"बाबा ! तुम्हारे अपराध बहुत ही गुरुतर हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है, लेकिन अब तुमने अनुतप्त होकर सब कुछ निष्कपट भाव से गुरु को बता दिया है तो अब अभय हो जाओ। श्रीभगवान ने तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर दिये।"

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज का सब लोगों के प्रति व्यवहार में एक भाव अन्तर्हित रहता था और वह था सब जीवों के प्रति कल्याण-कामना।

वृन्दावन से मथुरा छः सात मील की दूरी पर है। किसी न किसी काम के लिये श्रीयुक्त बाबाजी महाराज वहाँ कभी-कभी जाते थे। लौटते समय में श्री श्रीठाकुरजी के लिये कोई चीज लेकर आते थे।

बहुत दिनों की बात है, एक बार किसी काम के उपलक्ष्य में वह मथुरा गये। उन्हें शाम को ही लौटना था, लेकिन काफी देरी होने लगी। रात के नौ अथवा साढ़े नौ बजे श्रीयुक्त बाबाजी महाराज एक बड़ा कुम्हड़ा लिये जल्दी-जल्दी आश्रम आते दीखे। अनन्तदासजी ने उनसे कुम्हड़ा लेकर पूछा-'बाबा ! इतनी देरी कैसी हो गई? हम लोग तो सोच-सोच कर परेशान हो रहे थे।' उन्होने उत्तर दिया-"बाबा ! शाम को जब वृन्दावन दरवाजे आकर इक्का ठीक करने लगा तो रात हो जानें के कारण इक्केवाला एक रुपया माँगने लगा। ठाकुरजी के पैसे को इस तरह खर्च करने की इच्छा नहीं हुई। इसलिये चलकर आया हूँ, इससे मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ, श्री श्रीठाकुरजी का पैसा अपव्यय करना उचित नहीं है।" इसी प्रकार एक बार आश्रम की किसी बात के लिये हम लोग कुछ अधिक व्यय करने की सोच रहे थे, तब उन्होंने तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा-"गृहस्थ लोग कितना परिश्रम करके रुपया कमाते हैं? फिर तुम लोगों को देते हैं, यह बात तुम लोग समझ नहीं सकते हो।"

श्री श्रीबाबाजी महाराज केवल हमारे आध्यात्मिक कल्याण की ओर ही दृष्टि नहीं रखते थे, वरन् व्यावहारिक शिक्षा भी हम लोगों ने उनसे ही ग्रहण की। सब कार्यो में ही उन्हें अपूर्व दक्षता प्राप्त थी। इस प्रकार के सर्वकर्मनिपुण लोग संसार में दुर्लभ ही हैं। जो कुछ वह करते थे, इतनी दक्षता तथा सुन्दरता से करते थे कि फिर उसमें कुछ करने को नहीं रहता था। कभी-कभी काम हम लोगों से ठीक प्रकार से नहीं हो पाता था तो वह उसे ठीक से करवाते तथा हम लोगों को सिखाते। कभी-कभी वह स्वयं ही कर लेते थे। हमारे ज्येष्ठ साधु गुरुभाई को तो उन्होंने झाड़ू लगाना, वर्तन माँजना से लेकर रसोई बनाना तक सिखाया।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के हाथ का बना हुआ भोजन जिन लोगों ने खाया है वह बताते हैं कि उस भोजन का स्वाद ही अपूर्व था।

वह सब कुछ जल्दी तथा बड़ी सफाई से बनाते थे। वह नये-नये प्रकार के व्यंजन बनाया करते थे। जो चीजें हम व्यर्थ समझकर फेंक देते हैं, वह उनका उपयोग करके सुस्वाद्यव्यंजन तैयार कर देते थे। रसोई की कुछ सामग्री के बँधे-बँधाये नाप-तौल भी उन्होंने हम लोगों को सिखाये–जैसे खीर में एक सेर दूध और एक छटाँक चावल तथा पाव चीनी। खिचड़ी–आधा सेर चावल तथा आधा सेर दाल, सेन्धा नमक ढाई तोला और घी एक छटाँक से आधा पाव तक। हलुआ–जितनी सूजी उतना ही घी तथा दुगनी चीनी इत्यादि।

तीर्थ-यात्रा में जो उनके साथ रहे, उनसे मैंने सुना कि श्रीयुक्त बाबाजी महाराज प्रयोजनानुसार सब प्रकार के काम स्वयं कर लिया करते थे। किसी के लिये अपेक्षा नहीं करते थे। उनके अनलस स्वभाव, दृढ़ नियम-निष्ठा का परिचय तो पाठक पहले ही पा चुके है। आयु होने पर जब शरीर भी रोग ग्रस्त रहता था, तब भी उनका यही स्वभाव था। किसी काम को छोटा नहीं समझना चाहिये, सब कामों को भगवत्-सेवा-बुद्धि से करना चाहिये, यह उपदेश भी वह सब को देते थे। वह कहा करते थे कि सेवा का काम मन से करना चाहिये।

एक दिन श्रीवृन्दावन आश्रम में रात के प्रसाद ग्रहण करने के बाद श्रीयुक्त बाबाजी महाराज जब लेटे हुए थे तथा रामकृष्णदासजी उनके पैर दबा रहे थे तो उन्होंने पूछा-"तुम्हारा सब काम हो गया न?" उस दिन शाम को बहुत से साधु-अतिथि आने के कारण सबकी रसोई बनाने मे काफी देर हो गई थी, फिर प्रसाद खाते-खिलाते और भी देर हो गई। रामकृष्णदासजी ने जवाव दिया-'आज अधिक काम होने के कारण बहुत देर हो गई, सब लोग थक भी गये हैं और आज सर्दी भी अधिक है, इस कारण रसोईघर परिष्कार नहीं किया है, कल सुबह करेंगे।' सुनते ही वह बिस्तर पर से उठ गये तथा यह कहते हुए

झाडू-बाल्टी लेकर स्वंय ही रसोई साफ करने को चल दिये-'बाबा ! तुम लोग आज थक गये हो इसलिये यह काम मैं कर देता हूँ। ठाकुरजी के काम में अनियमितता करना ठीक नहीं है।' उन्हें तो यह काम क्या करना था? सुनते ही सब लोग आ गये तथा थोड़ी देर ही में रसोई धुलकर साफ हो गई।

उनमें आलस्य तो लेशमात्र भी नहीं था। हम लोग अक्सर बहुत से काम 'आज नहीं, फिर करेंगे' कहकर छोड़ देते हैं। उनके साथ में इतने वर्षो रहने पर भी उनके मुख से कभी यह नहीं सुना, बल्कि प्रयोजन होने पर उनकी अद्भुत कर्मशक्ति देखकर विस्मित होना पड़ता था। वह बिना थके हुए अनेक देर तक लगातार काम कर सकते थे तथा एक साथ अनेक प्रकार के काम करने की भी उनमें अनन्य सुलभशक्ति थी। एक ही समय अनेक गुरुभाई-बहन आकर उपस्थित होते थे। सभी उनका पूर्ण मनोयोग लाभ करते थे, यह मैंने स्वयं देखा तथा दूसरों से जिज्ञासा करके भी जाना।

श्री श्रीबाबाजी महारजा के चरित्र की विशेषताऐं उनके जीवन काल में हम लोग सम्यक उपलब्धि नहीं कर सके। उनके तिरोभाव पर इस विषय में हम जितना भी सोचते है, उतनी ही उनकी समस्त विशेषताऐं हमारे मानसचक्षु के सम्मुख प्रकाशित हो उठती हैं।

षष्ठ अध्याय

सदाचार और आभ्यान्तरिक प्रकृति

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के सब आचार-व्यवहार शास्त्रानुगत थे। शास्त्रोपदिष्ट अथवा साधुओं द्वारा आदृत सदाचार का यदि वह किसी को लंघन करते देखते थे, तो वह कठोर शासन करते थे। इसका दृष्टान्त निम्नलिखित है–

१९३१ ई. में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज आसाम प्रान्त के किसी शहर में गये थे। रात के आठ बजे ट्रेन पहुँची। वहाँ पर बाबू के यहाँ ठहरने का प्रबन्ध था। वह वहाँ के विशिष्ट नागरिकों और स्थानीय गुरुभाईयों को लेकर स्टेशन पर आये, सबको ले जाने के लिये दो मोटर गाड़ी भी लाये। गाड़ी से उतरते ही स्थानीय गुरुभाईयों के साथ श्रीयुक्त बाबाजी महाराज एक मोटर में बाजार चले गये, हम लोग श्री श्रीठाकुरजी को लेकर दूसरी मोटर द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे। इन दिनों बाबा की तबियत ठीक नहीं थी, अधिक रात हो जाने पर वह कुछ नहीं खाते थे। इसलिये मैं जल्दी-जल्दी रसोई बनाने के आयोजन में जुट गया। घर की स्त्रियों से पूछकर जिन बर्तनों में माँस, मछली न बना हो वैसे बर्तन माँगे। वह लेकर मैं रसोई बनाने में लग गया। रात के साढ़े नौ बजे के करीब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज आ पहुँचे। थोड़ी देर में रसोई बनने पर मैं उनके पास जाकर उत्साह पूर्वक कहने लगा–"बाबा ! रसोई हो गई है, भोग लगाऊँ क्या?" यह सुनते ही मुझे डाँटते हुए बोले–'तुम से खाना बनाने को किसने कहा था? इन लोगों के बर्तन तुमने क्यों स्तेमाल किये? तुम्हें मालूम था कि मैं बाजार गया हूँ, मैं तो बर्तन ही लेने गया था।' इस पर मैंने कहा–'आप बर्तन लेने

गये हैं? यह तो मुझे नहीं मालूम था। देरी होने से आपको खाने में देरी हो जायेगी, इस कारण इन लोगों से पूछकर निरामिष बर्तनों में ही मैंने रसोई की है।' इस पर उन्होंने जोर से कहा–"मूर्ख ! तुम्हें यह नहीं मालूम कि जो लोग मछली खाते हैं, उनके यहाँ ऐसा बर्तन मिलना मुश्किल है। जो रसोई बनाई है, वह सब फैंक दो उसका भोग नहीं लगेगा। जब तक दूसरी बार रसोई नहीं बनेगी तब तक ठाकुरजी का भोग नहीं लगेगा और न मैं ही खाऊँगा।" तब मैंने कहा–"बाबा ! मुझसे गलती हो गई है, आप क्षमा करें, मैं फिर से रसोई बना रहा हूँ।" फिर वे शान्त होकर बैठ गये। खाना बनाते-बनाते रात के बारह बज गये तथा प्रसाद मिलते-मिलते एक बज गया। इतनी रात होने पर भी श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने खूब प्रसन्न मन से प्रसाद ग्रहण किया।

दूसरी तरफ विशेष-विशेष स्थान पर प्रचलित सदाचार सम्बन्धी दृढ़ता में शैथिल्य भी देखा गया। पहले यह सब देखकर मुझको विस्मय होता, लेकिन फिर समझ मे आया कि शास्त्रानुकूल युक्ति अनुसार लघु का विचार कर कर्तव्य निर्धारण करके वे ऐसा करते थे तथा यही उपदेश भी था। इस विषय की तीर्थ-भ्रमण अध्याय में कुछ आलोचना हो चुकी है। शास्त्रोपदेष्टा ऋषिगणों के प्रति उनकी श्रद्धा और अनुराग अनुकरणीय था। वह अपने गुरुदेव को ब्रह्मर्षि कहकर ही अभिहित करते थे। जिस प्रकार वह अपने गुरुदेव से प्रेम करते थे, उसी प्रकार प्राचीन ऋषियों के प्रति भी उनका प्रेम था। इस प्रेम के गाम्भीर्य का परिचय हम लोगों ने अनेक बार पाया। जैसे कि यह निम्नलिखित घटना–

एक बार जब श्रीयुक्त बाबाजी महाराज गोहाटी में थे तो अध्यापक श्रीयुक्त पद्मनाथ भट्टाचार्य, श्रीलक्ष्मीनारायण चट्टोपाध्याय

आदि शहर के संमान्य व्यक्ति उन्हें स्थानीय हरि-सभा में ले गये। पहले कीर्तन हुआ, फिर नाना प्रकार का सत्प्रसंग हुआ। बहुतों ने प्रश्न पूछे और उन्होंने उनके उत्तर दिये। सभी को बहुत आनन्द हुआ। अन्त में कुछ लोग कहने लगे–'आप हम लोगों को सर्वद्रष्टा ऋषिगणों की महिमा बताईये, आपसे हम उन लोगों का गुणानुवाद सुनना चाहते हैं।' उस दिन सभा में प्राचीन आदर्शानुरागी संस्कृतज्ञजन भी थे तथा आधुनिक शिक्षा प्राप्त किये उच्च पदाधिकारी भी थे। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के आगमन का सम्वाद सुनकर ही वे आये थे। सभी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। किन्तु बाबाजी महाराज सहसा कुछ उत्तर नहीं दे सके। थोड़े समय के लिये वहाँ एक अभूतपूर्व दृश्य उपस्थित हो गया। वह मुद्रितनयन होकर समाधि की भंगी में स्थिरभाव से आसीन हो गये, उनके ललाट से ज्ञान-ज्योति व तप-प्रभा निःसृत होने लगी, चेहरे की कान्ति चौगुनी हो गई, उपस्थित जनता निस्तब्ध होकर मुग्ध दृष्टि से उन्हें देखने लगी। उस समय वे कुछ भी कह नहीं सके, बल्कि बच्चों की भाँति सुबक-सुबक कर रोने लगे। अनेक बार कुछ कहने का प्रयास किया लेकिन निष्फल ही रहे। अन्त में सबने कहा–"आपको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, हमें उत्तर मिल गया। बहुत कुछ कहने पर भी शायद इतनी अच्छी तरह समझ में न आता।"

अपने गुरुदेव के विषय में कुछ बोलते ही उनकी देह पुलकित हो जाती थी, श्रीभगवान के विषय में कुछ कहते ही आँखों में पानी आ जाता था, लेकिन उस दिन जैसा विह्वल भाव कभी नहीं देखा था। 'भाव को अन्दर ही दाबकर रखना है, प्रकाशित नहीं होने देना है,' वह यही उपदेश दिया करते थे तथा अपने जीवन में भी पालन करते थे। किन्तु उस दिन इसका व्यतिक्रम देखा गया।

आसन पर स्थिर भाव से बैठे हैं तथा हम लोगों की ओर देख रहे हैं, लेकिन यथार्थ में दृष्टि किसी और जगत की ओर रहती थी। बातचीत करने में भी यही भाव रहता था, बात समाप्त होने पर वही स्थिर, नीरव और आत्मसमाहित✤ भाव रहता था, यदि कोई जिज्ञासा करता तभी वह उपदेश देते। उसी आत्मसमाहित भाव में सब प्रकार की बातें कर लेते थे।

रोज सुबह उठकर शौच, स्नान के पश्चात् कुछ देर के लिये वे अपने आसन पर एकान्त में बैठते। इस समय हाथ जोड़कर कुछ देर इस तरह बैठते जैसे कि किसी को प्रणाम कर रहे हों। उसके बाद बाहर आकर बैठते थे। श्री श्रीठाकुरजी की श्रृंगार-आरती के समय रोज उपस्थित रहते● थे। आरती के बाद प्रणाम करके सबकी ओर देखकर हाथ जोड़कर मधुर स्वर में 'दण्डवत् महाराज' कहते। जब वे श्रीवृन्दावन-आश्रम में रहते तो इस समय वे ही श्री श्रीठाकुरजी का चरणामृत व प्रसाद वितरण करते थे।

✤ 'देवायतन' पत्रिका के सम्पादक ने लिखा-"X X X षड्दर्शन की व्याख्या करते-करते उनके मुखमण्डल-जो वैराग्यमण्डित ब्रह्मचर्योदीप्त था-पर उज्ज्वल प्रभा आ जाती, भक्ति प्रसंग पर बोलते हुए नयनों में जल भर आता था X X X।" 'सुदर्शन' पत्रिका में श्रीयुक्त सत्यभूषणदत्त वकील ने लिखा-"प्रथम दर्शन ही से स्वामी सन्तदास की मूर्ति शान्तिपूर्ण लगी X X X समागत दर्शन मण्डली की ओर उनकी आँखे रहतीं, लेकिन लगता कि दृष्टि कहीं दूर जगत में है। मुँह से आलाप करते, किन्तु उनका मन-प्राण अन्तर के किसी देवता के चरणों में रहता। उनकी मुखछवि देखकर ही मन प्रसन्न हो जाता तथा तृप्ति मिलती थी। उनकी बहुत ही सौम्य, सुन्दर तथा शान्त मूर्ति थी।' ये दोनों लेखक हमारे गुरुभाई नहीं हैं।

● जो अनुपस्थित रहते अथवा देर से आते उनको वे डाँटते थे।

इसके बाद फिर अपने आसन पर विराजमान हो जाते तथा प्रयोजनानुसार दीक्षा-दान, उपस्थित लोगों से सदालाप आदि अनेक प्रकार के कार्य करते थे। रोज ही अनेक चिट्ठियाँ आती थीं, उनका जवाब भी इसा समय देत थे। आश्रम-सम्बन्धी जिन बातों में उनका निर्देश आवश्यक था, वह सब बातें भी इसी समय करते तथा प्रयोजनीय उपदेश भी देते थे। ग्यारह बजे पुनः स्नान करते तथा श्री श्रीठाकुरजी का भोग लग जाने पर अन्यान्य सकलजनों को प्रसाद के लिए बिठाकर स्वयं प्रसाद पाते। अनेक बार आचमन करने के बाद फिर आकर सबका खाना-पीना देखते तथा फिर विश्राम को जाते। कभी खाने के बाद सबके साथ सदालाप करते तथा फिर विश्राम करने को जाते थे।

विश्राम के बाद सद्ग्रन्थों का पाठ होता था। गीता, भागवत, पुराण, भक्तमाल, Imitation of christ आदि नियमित रूप से पढ़े जाते थे। कभी-कभी सुबह-शाम भी इन ग्रन्थों का पाठ होता था। न जाने एक-एक ग्रन्थ कितनी बार पढ़ लिया जाता था? आखिरी दिनों में इसी प्रकार तरुण साधु-शिष्यों को वे संस्कृत, व्याकरण व गीता आदि पढ़ाते थे।

शाम को थोड़ी दर [illegible] में घमा करते थे। श्रीवृन्दावन में रहने से पैदल घूमते थे। बंगदेश जाने पर कोई-कोई [illegible] उन्हें मोटर में घुमाने ले जाते थे। नियम से सन्ध्या-आरती से पहले वे लौटे आते थे। सन्ध्या-आरती के बाद अपने आसन पर बैठते। इस समय नाना प्रकार का सत्प्रसंग होता। रात को प्रसाद ग्रहण करने के बाद थोड़ी देर टहलते तथा फिर शयन करते थे।

आश्रम से सम्बन्धित बातों में वह हम सबको बुलाकर हम लोगों का मत लेते थे। हम लोग भी बेफिकरी से अपना-अपना

अभिमत देते, फिर वह कुछ बातें मानकर कुछ बदलकर अपना निर्देश देते थे। श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या जो उन्होंने की थी, उसमें भी हम लोगों में से किसी के अभिप्राय के अनुसार उसमें परिवर्तन कर दिया, इस तरह बड़े-बड़े कामों में भी वह हम लोगों के अभिमत की उपेक्षा नहीं करते थे। बीमारी में जो कुछ हम पथ्य कहकर देते थे, वह उसे समझकर बच्चे की भाँति ग्रहण कर लेते थे और हम लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करते थे, जैसे कि हम उनके अभिभावक हैं।

श्रीमद्शंकराचार्य के मत का उन्होंने अनेक स्थलों पर समालोचना व खण्डन किया, किन्तु वे जब उनका उल्लेख करते तो 'शंकर भगवान' कहकर श्रद्धा मर्यादा ही से करते थे। वास्तव में सब को उपयुक्त मर्यादा देना उनका स्वभाव था।

इस प्रसंग में एक बात और उल्लेखनीय है। साधु और संन्यासियों में कभी-कभी गृहस्थियों के प्रति अनादर व अवज्ञा का भाव देखा जाता है। यह भाव श्रीयुक्त बाबाजी महाराज में किंचित्मात्र भी नहीं था तथा वह अपने साधु-शिष्यों को भी इसी प्रकार का उपदेश देते थे। गृहस्थाश्रम में रहकर भी उपयुक्त साधन-भजन करने से भगवान-लाभ किया जा सकता है, यही उनका अभिमत था। उनके गृहस्थ शिष्यों में किसी-किसी की साधन-अवस्था काफी उन्नत थी, अतः वह अपने नवीन साधु-शिष्यों को उनका उदाहरण देते तथा उनसे सीखने का उपदेश देते थे। दूसरी ओर गृहस्थ-शिष्यों को, साधुओं को उपयुक्त मर्यादा देने का उपदेश देते थे। साधुओं की पंगत के समय वहाँ किसी गृहस्थ-शिष्य के उपस्थित होने पर उसका शासन (रोक) करते थे।

निस्वार्थ होकर हर कर्म को भगवत्-सेवा समझते हुए करना यही उनकी कर्म-पद्धति थी। वह सब कार्य निर्लिप्त भाव से और साथ

ही साथ उत्साहपूर्ण होकर सम्पन्न करते थे। उनके उत्साह और अद्भुत कर्मशक्ति को देखकर विस्मित हो जाना पड़ता था। हम लोग युवक थे तथा वे प्रायः अस्सी वर्ष के थे, फिर भी हम लोग काम करने में उनकी बराबरी नहीं कर पाते थे। 'वेदान्त-दर्शन' जिसकी व्याख्या उन्होंने की थी, उसका तीसरा संस्करण प्रकाशित होने के समय इस ग्रन्थ में उपसंहार योग करने का प्रयोजन अनुभूत हुआ। मूल ग्रन्थ का मुद्रण हो रहा था। उपसंहार लिखने का काम आरम्भ हुआ। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज बोलते जाते तथा हमारे एक गुरुभाई जो कॉलेज में अध्यापक थे, वह लिखते जाते। सुबह शौच-स्नानादि के बाद दोनों काम करने बैठते, श्रृंगार-आरती के समय को छोड़कर साढ़े ग्यारह बजे तक लिखना चलता, फिर प्रसाद पाकर बैठ जाते तो शाम के साढ़े पाँच बजे तक काम चलता। एक सप्ताह से कुछ अधिक तक यह काम हुआ फिर गुरुभाई क्लान्त और अवसन्न हो गये, सर में दर्द व जी मिचलाने लगा। लिखने का काम दूसरे को लेना पड़ा, इस तरह हम लोगों ने मिलकर यह काम समाप्त किया। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज में किसी को कुछ थकान के लक्षण नहीं देखे। उपसंहार की लिखाई शेष होने तक काम चला, इसके बाद फिर वही आत्मसमाहित निष्कर्म।

हर कार्य करने में उनका लक्ष्य केवल एक ही रहता था— भगवत्-सेवा, यही उनके विचारों व कथन से दर्शित होता था। १६२६ ई. में प्रयाग के कुम्भ में जाने के लिये जिस दिन यात्रा करनी थी, उससे एक रात पहले एकाएक उनकी तबियत विशेष रूप से खराब हो गई। वह बहुत ही बेचैनी अनुभव करने लगे, कभी उठकर बैठते कभी लेट जाते बीच-बीच में 'हे महाराज' कहते जाते। यन्त्रणा बढ़ती गई। हमारे साधु गुरुभाई वनमालीदासजी के पूछने पर बताने लगे–'मेरुदण्ड

के नीचे से दर्द उठता है तथा ऊपर की ओर जाते-जाते हृदय पर दबाव डालता है, जिससे बीच-बीच में श्वासरोध-सा हो जाता है।' रात को चार बजे के करीब कुछ बेचैनी कम हुई तथा निढाल से होकर बिस्तरे पर लेट गये। सुबह उनसे उठा भी नहीं गया, बहुत ही दुर्बल तथा पीले दिखाई पड़े। किसी तरह वे दीवार पकड़कर शौच को गये। शौच के बाद जब हाथ पैर धो रहे थे तो धीरे-धीरे स्वगतभाव से कहने लगे-'कल तो शरीर छूट ही गया [illegible] ने फिर से जिला दिया।' श्री श्रीराधाबिहारीजी की श्रृंगार-आरती [illegible]नय किसी तरह गिरते पड़ते बीच-बीच में दीवार का सहारा लेकर मन्दिर द्वार तक गये। वहाँ हाथ जोड़कर श्री श्रीठाकुरजी की ओर एकटक देखते हुए अश्रुसिक्त नयनों से आत्मसमर्पण की भंगी से-'हे प्रभो ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, यह शरीर, प्राण, मन सब तुम्हारा ही है, जैसा रखना चाहो वैसा ही करो'-यह भाव उनके सर्वांग से प्रस्फुटित हो रहा था। श्री श्री राधाबिहारीजी को प्रणाम करके जब वे श्रीगुरुदेव के मन्दिर के सम्मुख आकर खड़े हुए तो उनके होठ हिल रहे थे, जैसे कि कुछ कह रहे हों, नेत्रों से अविरल अश्रु धारा बह रही थी।

अगले दिन ही प्रयाग जाना था। आठ बजे के करीब रामकृष्ण मिशन के डाक्टर आये, उन्होंने शरीर की परीक्षा लेकर कहा-"इस अवस्था में अब आप कल नहीं जा सकेंगे, कुछ दिन बाद तबियत ठीक होने पर ही जा पायेंगे।" लेकिन बाबाजी महाराज ने अतिशय दीनभाव तथा गद्गद स्वर से कहा-"बाबा ! जब भगवान ने इस शरीर को जीवित छोड़ दिया है तो जो जाने का दिन स्थिर हुआ है, उसी दिन जाना होगा।" उन्होंने यह बात इस तरह से कही कि डाक्टर भी फिर कुछ न कह सके। दूसरे दिन यथा समय उनको उसी अवस्था में हम लोग लेकर गये।

उनकी दीक्षा का भी वास्तविक तात्पर्य अविद्याग्रस्त जीवरूपी भगवान की सेवा था। जिसके द्वारा सर्व प्रकार के दुःख ताप नष्ट हों और परमानन्दलाभ हो, उसी दीक्षा-दान से जीवन के प्रत्येक कार्य साधारण तथा बड़े किस प्रकार से भगवत्-सेवा समझकर करें, यह उन्होंने अपने शिष्यों को उपदेश दिया।

उनके कर्म-सम्बन्धी अन्य एक विषय को देखकर भी हम लोग विस्मित होते थे। काम के समय पर उनको बीमारी नहीं रहती थी। शिवपुर के आश्रम की जिस दिन प्रतिष्ठा होने वाली थी, उससे पहले दिन उन्हें दस्त हो गये, वे काफी दुर्बल हो गये थे। रात तक इलाज से भी कुछ विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ा। अगले दिन श्री श्रीराधाबिहारीजी की प्रतिष्ठा, वैदिक यज्ञ आदि बहुत कुछ था, अतः उन्होने प्रयोजनानुसार सब कुछ किया तथा स्वस्थ रहे। दूसरे दिन फिर तबियत खराब हो गई, वही दस्त फिर शुरु हो गये, ऐसा लगता मानो पीड़ा भी उनको कुछ समय की छुट्टी दे देती थी। इस प्रकार से प्रायः होता था। देहान्त से दो-चार दिन पहले भी इसी प्रकार से हुआ था। १९३५ ई. की पौष मास की 'प्रवासी' पत्रिका में हमारे गुरुभाई डाक्टर ब्रजवल्लभ साहा ने लिखा-'उन दिनों शरीर अस्वस्थ होने के कारण वह अधिक बातचीत नहीं करते थे, थक जाते थे। किन्तु देह-त्याग से पाँच दिन पहले प्रसिद्ध अद्वैत वेदान्तिक श्रीयुक्त राजेन्द्रनाथ घोष उनसे मिलने गये, उसदिन उन्होंने दो घण्टे तक श्रीनिम्बार्क-मत के भेदा-भेदवाद का जिस निपुणता से समर्थन किया कि समवेत् शिष्य और जन-समुदाय विस्मत हो गया। उस समय तो ऐसा लगने लगा कि वह पूर्ण स्वस्थ हो गये। इस विषय में तो उनकी उठने-बैठने की शक्ति ही चली गई।' अस्वस्थ अवस्था में उनके गुरुदेव का प्रसंग आने पर वह

रोगयन्त्रणा भूल जाते, भगवान की कथा कहते-कहते उत्साहभाव से उठ बैठते। एक बार उनसे इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछा था, तो उन्होंने जवाब दिया था–'बाबा ! उनके काम के लिये वह शक्ति का अभाव नहीं करते हैं।'

कभी-कभी बच्चों जैसा आचरण भी करते थे। वृन्दावन में शाम को टहलते समय कुछ दूर जाकर ठहर जाते तथा फिर हम लोगों से जो उनके साथ जाते थे, पूछते–"बताओ कितनी दूर चलकर आ गये?" कोई भी ठीक-ठीक नहीं बता पाता, सब अन्दाज ही से बताते। फिर वह कहते–'कोई नहीं बता पाया?' हाथ की लाठी को जमीन में ठोकते हुए कहते-"यह जगह आश्रम के दरवाजे से चार फर्लांग पर है।" "कैसे मालूम हुआ?" "कदम गिनता जो आया हूँ।" इस प्रकार बालकवत् कहते कि बहुत ही कोशिश करके हम लोग हँसी रोक पाते थे। १९३४ ई. में वृन्दावन आश्रम में कार्तिक के महीने में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज बीमार हो गये थे। इलाज से कुछ ठीक तो हो गये लेकिन फिर जलवायु परिवर्तन के लिये उन्हें इटावा ले जाया गया। वहाँ पर हम लोग एक महीने से कुछ ज्यादा ही रहे। वृन्दावन में ही बीमारी के समय उन्होंने जटाएँ छटवा दी थीं, वह गाम्भीर्यमण्डित श्री अब नहीं रही थी, देखने में छोटे, दुबले तथा बालकवत् लगने लगे थे। आने के कुछ दिन बाद एक दिन दोपहर को वृन्दावन से दो साधु गुरुभाई वहाँ आये। थोड़ी देर बाद ही इन्हें प्रसाद दिया गया, बाबा उन्हें पास बिठाकर ही स्नेह से खिलवा रहे थे। इन दिनों में एक गुरुभाई सोलह-सत्रह वर्ष का होगा, उसके साथ इनका सख्य भाव जैसा था। वह कहने लगा–'बाबा ! आप यहाँ आकर कुछ मोटे हो गये हैं।' दोनों हाथ फैलाकर वह कहने लगे–'यहाँ कुछ दिन रहने पर तू भी इतना मोटा

हो जायगा।' उनका ऐसा भाव देखकर तथा कहने का ढंग देखकर हम लोग भी हँसने लगे। फिर एक दिन इसी से बोले–'तूने ऊँट का नाच नहीं देखा, यहाँ पर एक दिन हुआ था। तूने कभी देखा है?' वह बोला–'नहीं बाबा ! ऊँट का नाच तो कभी नहीं देखा।' "यह देख, इस तरह से नाचता है" कहकर सिर के ऊपर हाथ कर नकल करते हुए बताने लगे। यह देखकर हम लोग खूब जोर से हँसे।

श्रीमान् मनोहरदास नामक हमारे एक ब्रजवासी साधु गुरुभाई हैं। इनका जन्म भी ब्रज में हुआ तथा बचपन ही में वह घटनावशतः आश्रम में रहने के बाद श्री श्रीबाबाजी महाराज के प्रति श्रद्धापूर्ण हो गये तथा उन्होंने भी उन्हें साधु-शिष्य बना लिया। तब से वह उन्हीं के साथ रहे तथा बहुत निष्ठा के साथ सेवा करते गये। इनके साथ भी बाबाजी महाराज का सख्यभाव था, उनके साथ बर्ताव करते हुए वह बच्चे हो जाते थे। उनको स्नेह भी बहुत करते थे तथा उनके गुणों की प्रशंसा भी हम लोगों से प्रायः किया करते थे। उनका यह अपूर्व वात्सल्यभाव हम सभी को आकर्षित करता था। एक दिन यह प्रसंग उनके सामने ही उठा। उन्होने सब कुछ सुनकर कहा–"देखो बाबा ! किसका कैसे कल्याण होता है, यह तो तुम लोग नहीं समझ सकते हो, यह बालक अपने माता-पिता की बड़ी लाड़ली सन्तान थी, छोटी-सी उमर में सब कुछ छोड़कर मेरे पास आ गया। यदि इसे मैं स्नेह नहीं करूँगा तो इस उमर में आश्रम की कठोर जीवन-यात्रा में किस प्रकार टिक सकेगा? इसी कारण उससे मै इस प्रकार व्यवहार करता हूँ। बाबा! योगी किसी के वश में नहीं है।"

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने वेदान्त-दर्शन तृतीय संस्करण के उपसंहार लेखन में किस प्रकार विपुल परिश्रम किया, यह पहले बताया

जा चुका है। इसी समय की बात है कि वह एक दिन सुबह बोलते जा रहे थे तथा हममें से कोई लिखता जा रहा था कि एक मामला उनके सामने प्रस्तुत हुआ। आश्रम से थोड़ी दूर पर श्री श्रीठाकुरजी का एक बगीचा है, वहाँ पर फूल, तुलसी तथा साग-सब्जी होती है। भजनलाल नामक एक ब्रजवासी नौकर बहुत दिनों से बगीचे का काम कर रहा था। उसने बगीचे से कुछ ग्वार की फली चोरी कर ली थीं, अतः उसके विरुद्ध कुछ लोग शिकायत लेकर आए। बाबाजी महाराज ने सब कुछ सुनकर कहा–"उसको बुलाओ।" भजनलाल ने आकर अपना अपराध अस्वीकार किया। वह उससे जिरह करने लगे। इस पर वह ठीक से जवाब नहीं दे सका और उसका अपराध प्रमाणित हो गया। तब वह बहुत गुस्से में–'चोरी किया, फिर हमारे सामने झूठ भी कहने लग गया' कहते हुए आसन पर से उठे तथा उसके पास जाकर एक थप्पड़ मारा तथा 'फिर ऐसा काम करोगे तो यहाँ से निकाल देंगे' कहकर वापस आसन पर आ बैठे। बैठते ही उनका क्रोध जाने कहाँ चला गया? "अरे तुम लोग बैठे हो अच्छा। बाबा लिखो" कहकर अर्द्ध समाप्त वाक्य जहाँ समाप्त किया था वहीं से आगे बोलना आरम्भ कर दिया, यह बताने की भी आवश्यकता नहीं हुई कि उन्होने कहाँ पर समाप्त किया था? फिर से वही ज्ञान-प्रभादीप्तिमय मुखश्री हो गई।

इसी प्रकार एक दिन हम लोगों को गीता पढ़ा रहे थे, तो इगरारा से कुछ लोग आये। उन्हें जल्दी ही वापस जाना था, इस कारण तभी उनसे मिलकर बातें करनी थीं। उन्होने जाकर उनसे सब हिसाब-किताब की बातें कीं तथा तर्क-वितर्क भी किया। जब वे लोग प्रणाम करके चल दिये तो फिर हम लोगों के समीप आये-'तुम लोग काफी देर से बैठे हो' कहकर यथा-स्थान से व्याख्या करनी आरम्भ कर दी तथा

फिर उसी भाव में मग्न हो गये। जिस विषय पर बोल रहे थे, उसका सम्पूर्ण भाव उनकी मूर्ति में उद्भासित हो रहा था। भावान्तर होने में एक क्षण भी नहीं लगता था। वास्तव में इस प्रकार के महापुरुषों के सम्बन्ध में साधारण विचार बुद्धि व्यर्थ और निष्फल है। उनके संसर्ग में अनेक समय बिताने तथा उनका आचरण लब्ध करके उनके विषय में मेरी तो यह दृढत्र धारणा हो गई है कि उनके बाध्यरूप के अन्तराल में जो पूर्णस्वरूप है, वह हमारे लिये बोधातीत है। परिपार्श्विक अवस्था के अनुसार जब जिस गुण और शक्ति की क्रिया हुई वही प्रकाशित होती है। इसलिये उसमें किसी एक को अथवा समष्टि को उनका निजस्व कहना असम्भव है। असली बात तो यह है कि उनके विषय में कुछ कहने पर अपनी ही अक्षमता की अनुभूति होती है जैसे कि-

असितगिरिसमं स्यात् कज्ज्वलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरु वरशाखा लेखनी पत्र मूर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा सारदा सर्वकालम्,
तथापि तव गुणानामीश! पारं न याति।।*

वह तो अनन्त के साथ एकीभूत हो गये हैं, उनका अन्त किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है।

---

* यदि स्याही का पर्वत समुद्र में डाल दिया जाये (अर्थात् पूरा सागर ही स्याही हो जाये) और उस स्याही से पारिजात वृक्ष की शाखा की लेखनी से सारी पृथ्वीरूपी कागज पर स्वयं सरस्वती भी चिरकाल तक लिखती रहें तो भी तुम्हारे गुण समूहों की वर्णना शेष नहीं हो सकती।

सप्तम अध्याय
अन्तर्धान

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की जन्मपत्री हम लोगों को प्राप्त हुई, उनकी जन्मकुण्डली नीचे दी गई है।✣ संसार-त्याग से बहुत पहले जब वे गृहस्थाश्रम में ही थे, तभी उन्होने काशीधाम में जिसके पास भृगुसंहिता का मूल ग्रन्थ है, उससे अपनी जन्मपत्री दिखलाई थी, उन्होंने जो कुछ भविष्यवाणी की थी, उसमें से मात्र दो का ही उल्लेख यहाँ करूँगा। एक तो थी–'सहस्राधिक शिष्यों के साथ वैकुण्ठवास' तथा दूसरी उम्र के सम्बन्ध में थी। भृगुसंहिता की भविष्यवाणी के अनुसार उनकी परमायु ६६ वर्ष तथा कुछ महीने थी लेकिन साथ ही साथ यह भी था कि साधन फलस्वरूप बढ़ भी सकती है।

१६२६ ई. में प्रयाग कुम्भमेले से पहले एक रात को उनकी तबियत बहुत खराब हो गई थी, वह पूर्वाध्याय में लिखा जा चुका है। इस समय उनकी आयु भृगुसंहिता के अनुसार पूर्ण होकर थोड़ा समय और हो गया था। जिस तरह से देहत्याग के समय अवस्था होती है,

---

✣ शकाब्द १७८१/१/२७/४८/५७/२४ तुला राशि चित्रा नक्षत्र–

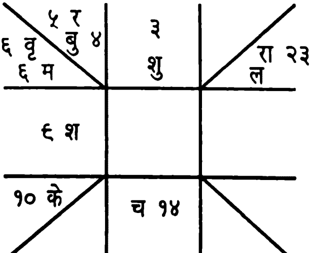

वही अवस्था उनकी उस रात को हो गई थी। उन्होने किसी-किसी शिष्य को यह बात बाद में बताई थी कि देह-त्याग तो उस दिन हो ही गया था, लेकिन फिर श्री श्रीठाकुरजी ने उनको कुछ समय के लिये जीवित कर दिया। लोककल्याण के लिये उन्हें कुछ काम और भी करना था, इस कारण वह कुछ समय के लिये संसार में और ठहर गये। जब कि इसके बाद वह पूर्ण स्वस्थ कभी नहीं रहे। उनके आमाशय की पुरानी बीमारी बीच-बीच में उखड़ जाती थी। लगभग छः वर्षो के बीच चार-पाँच बार काफी बीमार हुए। १६३२ ई. में आषाढ़ में जब पटना से वृन्दावन जा रहे थे तो गाड़ी में ही 'लू' लग जाने के कारण बहुत बीमार हो गये थे; कितने ही दिन बिस्तर पर रहे। अगले वर्ष श्रावण में जब शिवपुर में थे, तब भी कठिन पीड़ा से आक्रान्त रहे। इस प्रकार जीर्ण शरीर लेकर ही वह सुन्दर-सुष्ठु काम करते रहे।

१६३४ ई. के जाड़ों में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज जो बीमार हुए कि वह फिर पूर्णतया ठीक ही नहीं हुए। इटावा में रहने से उनका स्वास्थ्य थोड़ा अवश्य अच्छा हो गया था, किन्तु पौष मास में श्री श्रीदादा गुरुजी के उत्सव के लिये फिर वृन्दावन आना पड़ा। वृन्दावन आते ही फिर से बुखार आने लगा। उत्सव के बाद बाबाजी महाराज की इच्छानुसार पहले तो इगरारा गये। खुली जगह होने के कारण वहाँ की जलवायु अच्छी है, लेकिन वहाँ एक महीने रहने पर भी स्वास्थ्य में कुछ अन्तर नहीं आया। गुरुभाईयों को जब वह संवाद मिला तो उन्होंने अन्य क़िसी स्वास्थ्यकर स्थान जाने के लिये अनुनय-पत्र भेजे। पटना कालेज के अध्यापक श्रद्धेय गुरुभाई श्रीयुक्त सुधीरगोपाल मुखोपाध्याय ने पटना आने के लिये प्रार्थना की तथा किराया भी भेजा। तदनुसार वे इगरारा से लौटकर वृन्दावन आये तथा फिर दो-चार दिन बाद पटना

गये। वहाँ पहुँचकर पहले तो कुछ उन्नति लगी, किन्तु फिर अधिक न हुई। यहाँ से गया, हजारी बाग, गिरिड और जामताड़ा होकर जेठ के महीने में शिवपुर आश्रम पहुँचे। किसी स्थान पर भी विशेष स्वास्थ्योन्नति नहीं हुई। हर स्थान पर जाते ही कुछ दिन ठीक लगता, किन्तु फिर कुछ परिवर्तन नहीं होता। वह कहते-"हर नयी जगह जाने पर जलवायु के प्रभाव से जो कुछ उन्नति होती है, वह प्रथम तीन सप्ताह में ही हो जाती है, फिर कुछ अन्तर नहीं पड़ता है।"

शिलौंग से भी एक गुरुभाई ने लिखा कि इस समय (वर्षारम्भ से पहले) यहाँ की जलवायु खूब अच्छी है। अतः शिवपुर कुछ दिन रहकर शिलौंग की ओर यात्रा की, रास्ते में गौहाटी में दो-चार दिन विश्राम लेकर ज्येष्ठ मास के अन्तिम भाग में शिलौंग पहुँचे। यहाँ भी प्रायः तीन सप्ताह रहे, किन्तु स्वास्थ्य में कुछ उन्नति न हुई। लेकिन विभिन्न स्थानों के गुरुभाईयों के आग्रह के कारण अनेक जगह जाना पड़ा। श्रीहट्ट, हविगंज, अगरतला, कुमिल्ला आदि स्थान घूमकर आषाढ़ मास के शेष भाग में शिवपुर लौटे और वे फिर से अधिक बीमार हो गये। इस भ्रमण का शुभ फल यह हुआ कि बहुत से नर-नारियों ने उनका चरणाश्रय लाभ किया। पुराने शिष्यों ने उनका आखिरी दर्शन लाभ किया।

इस समय हम लोगों ने सोचा भी न था कि उनकी लीला-सम्वरण के दिन निकट आ रहे हैं। प्रयाग कुम्भ के समय में उन्होंने बताया था कि देह-रक्षा में अभी देरी है, इस कारण हम लोग निश्चिन्त ही थे। लेकिन इस पिछले वर्ष की लगातार अस्वस्थता के कारण सभी लोग चिन्तित हो गए। पेट की खराबी तथा ज्वर वगैरह कुछ न कुछ चला

जा रहा था, इस कारण चिकित्सक भी चिंतित हुए। लेकिन यह फिर भी नहीं सोचा कि वह शीघ्र ही यह देह छोड़ेंगे।

शिवपुर पहुँचते ही थोड़ा-थोड़ा बुखार रहने लगा। दो-चार दिन ही में आमाशय-यकृतवेदना आदि के कारण बीमारी और बढ़ गई। इलाज से कुछ फायदा हुआ तथा फिर स्थान परिवर्तन की बात उठी। इसी समय में अथवा भुवनेश्वर में आश्रम होने की बातें चल रही थीं। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज ने कहा–"तुम लोग मुझे वायु-परिवर्तन के लिये कहीं ले जाना चाहते हो तो भुवनेश्वर ही क्यों नहीं चलते हो, वहाँ की जलवायु तो अच्छी है।" इस तरह १६३५ ई. में (भादों) उनको भुवनेश्वर लेकर गये। वहाँ पर कुछ भी फायदा नहीं लगा। वह इस अवस्था में ही रोज रिक्शा से जाकर आश्रम के लिये जगह देखते, एक सप्ताह तक इस तरह के बाद एक स्थान पसन्द किया और जमीन के मालिक के साथ बातचीत करके गुरुभाई विजयबाबू और विनोदबाबू को रुपये लेकर आने के लिये शिवपुर पत्र लिखा यथा समय जमीन खरीद ली गई। उन दोनों गुरुभाईयों की इच्छानुसार हमारे वृन्दावन के ठाकुर श्री श्रीराधाबिहारी के नाम ही दलील सम्पादित हुई। बाबाजी महाराज ने स्वयं ही मन्दिर और आश्रम का नक्शा प्रस्तुत कराके नींव रखने का दिन स्थिर कर दिया।

यहाँ पर उनकी अवस्था दिनों-दिन खराब ही होती जा रही थी। इतने दुर्बल हो गये कि बोलने में भी कष्ट होने लगा। भुवनेश्वर में अच्छे डाक्टर भी नहीं थे। इस कारण उनको वहाँ रखना उचित नहीं लगा। ऐसी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में उन्हें शिवपुर लाया गया तथा अच्छे इलाज की व्यवस्था की। भुवनेश्वर ही से वह जल्दी वृन्दावन लौटना चाहते थे, यहाँ आकर उनका आग्रह और भी बढ़ गया। वे बार-बार

यही कहते थे। चारों तरफ से लोग उनके दर्शनों को आ रहे थे, उनको इस अवस्था में वृन्दावन ले जाने के लिये डाक्टरों का भी मत नहीं था, इस कारण वृन्दावन लौट नहीं सके। कई एक बार यात्रा का दिन स्थिर हुआ और हर बार परिवर्तन हो गया। आश्विन की २५ वी तारीख को वृन्दावन निम्नलिखित पत्र भेजा–

"प्रिय वंशीदास ! तुम्हारा पत्र मिला। तुम सब मेरा आशीर्वाद लेना। मेरी अवस्था ऐसी है कि खाना खाने की रुचि ही नहीं रही है। कुछ भी खाने की इच्छा नहीं होती है, आहार करने पर जी मिचलाने लगता है। शरीर इतना दुर्बल हो गया है कि दो-चार बात भी नहीं कर सकता हूँ। ईजीचेयर पर बिछाकर ही मुझे एक जगह से दूसरी जगह ले जाते हैं। इस कार्तिक को वृन्दावन आने का निश्चय किया था, लेकिन बन्धुओं तथा डाक्टरों ने सहमति न दी। यात्रा करने में समर्थ नहीं हूँ। अब १३ कार्तिक को यहाँ से चलना पक्का किया है।"✣

धीरे-धीरे उनकी दुर्बलता इतनी बढ़ गई कि कभी-कभी मूर्च्छा-पतन हो जाता था। शरीर की इस अवस्था में भी कर्मधारा नहीं रुकी थी। एक वर्ष पहले उन्होंने लोक-कल्याणकारी एक महत् प्रचेष्टा में हस्तक्षेप किया था–साधक-सम्प्रदाय-समूह में मतभेद मिटाकर एकता स्थापन करने के लिये। इसी उद्देश्य से 'भेदाभेद (द्वैताद्वैत) सिद्धान्त एवं श्रीमद्शंकराचार्य प्रभृति भाष्यकार गण' नामक एक पुस्तक भी लिखी थी। इसमें उन्होंने महर्षि वेदव्यासकृत ब्रह्मसूत्रों की जो विभिन्न व्याख्याऐं प्रचलित हैं, उनमें कितना ऐक्य तथा कहाँ-कहाँ विरोध है, यह स्पष्ट रूप से बताया है। इन सब विभिन्न मतों में किस प्रकार सामंजस्य हो सकता है, इसकी भी आलोचना की है। अब इस अवस्था में भी इसके

✣ यह दिन भी परिवर्तित किया गया।

लिये चेष्टा करने में वे सजग थे। आश्विन मास में वृन्दावन में हमारे एक गुरुभाई को पत्र लिखा–"X X X इस बार प्रयाग में जो कुम्भ मेला होगा, उसमें संन्यासी-सम्प्रदाय द्वारा मेरी पुस्तक 'भेदाभेद सिद्धान्त' की विशेष समालोचना होगी। कोई-कोई तो इस ग्रन्थ के पक्षपाती हो गये हैं, जिससे कि सब सम्प्रदाय एक हो सकें ऐसी चेष्टा भी होगी, अतएव श्रीमान् धनञ्जयदास से कहना कि सम्पूर्ण पुस्तक को भली-भाँति पढ़कर अच्छी तरह अपना अधिकार कर ले वैसे भी वेदान्त दर्शन को भली भाँति अधिकार कर लेना जरूरी भी विचार विषय पर इस प्रकार की तैयारी कर लेनी चाहिये कि वह अप्रस्तुत न रहे। मेले में जाने की मेरी सामर्थ्य हो सकेगी ऐसा नहीं लगता है, इस कारण उसे ही विशेष रूप से प्रस्तुत होना चाहिये X X X" उनके देहान्त से एक पखवाड़ा पहले ही श्री श्रीस्वामी महादेवानन्द गिरि उनके दर्शनों को आये। उन्हें इस पुस्तक का एक खण्ड अर्पण करते हुए कहा–"कुम्भ मेले में मेरा जाना तो सन्देहपूर्ण है। तुम्हें मैंने सदा छोटा भाई सरीखा समझा है, इस विषय पर ध्यान रखना।" सम्प्रदाय-समूह में जो मतभेद है, उसे मिटाने के लिये किस प्रणाली से काम किया जाये, इस विषय में काफी देर बातचीत हुई। फिर कुछ दिन बाद प्रायः मुमूर्षु अवस्था में प्रसिद्ध वेदान्तिक श्रीयुक्त राजेन्द्रनाथ घोष के साथ जो उनका दार्शनिक विचार-विमर्श हुआ, उसका उल्लेख पूर्वाध्याय में किया जा चुका है, उक्त ग्रन्थ ही इस दार्शनिक विचार का कारण था। इसका एक खण्ड श्रीयुक्त राजेन्द्रबाबू को समालोचना के लिये दिया गया था, वह इसी के उपलक्ष्य में शिवपुर आश्रम आये थे। उस दिन दो घण्टे तक उनके साथ विचार-विमर्श करके एकदम निढाल होकर लेट गये। इतने पर भी उसी दिन शाम को हमारे गुरुभाई श्रीयुक्त शिशिरकुमार राहा को

बुलाकर ब्रह्मस्वरूप, जीवतत्त्व और जगत्‌तत्त्व के विषय में प्रायः दस-बारह पृष्ठ लिखवाये और कहा कि-'इस सम्बन्ध में यही मेरा अन्तिम वक्तव्य है।'

दूसरी ओर वह इस अवस्था में भी गुरुरूप में हम लोगों के प्रति जो उनके कर्तव्य थे, वे करते जाते थे। उनके उन उपदेशों को स्मरण करके अब समझ में आता है कि उनके लीला-सम्वरण के दिन निकट आ रहे हैं, ऐसा आभास रहता था। तब हम समझ ही नहीं पाये।

आश्रम के बाग में हम लोगों को गुड़ाई करने को कहकर वह खिड़की में से प्रसन्न भाव से देखते थे। एक दिन कहने लगे-"तुम लोग अपना काम करते हुए मिलकर उनकी ओर जा रहे हो, यही मैं देखकर जाना चाहता हूँ।"

एक दिन बच्चों की भाँति जिद करके कहने लगे-'तुम लोग मुझे एक 'ब्रह्म-संहिता' खरीद दो।' पुस्तक खरीद लायी गयी। उसे बीच-बीच से देखते तथा स्वयं दो-एक गीत गाते। महायात्रा से कई एक दिन पहले ही से यह निम्नलिखित गान मधुर स्वर में अक्सर गाते थे-

तोरा के जाविरे आयरे भाइ, सबे मिले प्रेमधामे जाइ।
तथाय प्रेममयेर प्रेम मुख, एस देखे प्राण जुड़ाइ।।
पापेर मोहिनी मायाय मुग्ध हइये सवाय।
कलकाल आर थाक्वो बल भूलिये हेथाय।।
एस प्रेम भरे केंदे केंदे सवे ताँर पाय लुटाइ।
पापताप समुदाय किछु नाहिक तथाय।
नित्यप्रेम नित्यशान्ति विराजे सेथाय।।
ए शोन प्रेममय डाकितेछेन एस आनन्देते धाइ सबाइ।
एस प्रेमानन्दे नेचे जाइ, (तोरा आय) ।।

हिन्दी अनुवाद–२५ वें चलो सब मिलकर प्रेमधाम चलें। वहाँ प्रेममय का दर्शन करके शान्ति पायें। पाप की मोहिनी माया से मुग्ध होकर समय का भान भी नहीं रहता है, सब कुछ भूल जाते हैं। आओ प्रेम से भरकर उनके चरणों में लेटें। पाप-ताप वहाँ कुछ नहीं है, नित्य-प्रेम और नित्य-शान्ति विराजती है। अरे सुनो प्रेममय बुला रहे हैं, आओ प्रसन्नता से दौड़ चलें, नाचते हुए जायें; तुम लोग भी आओ।

एक दिन हमारे किसी गुरुभाई के पूछने पर कि–"कैसे हो बाबा !" उन्होंने उत्तर दिया–'अब इस शरीर में कुछ नही है, इतना दुर्बल हो गया है कि तुम लोगों से बात भी नहीं कर पाता हूँ। किन्तु बड़े सुख में हूँ, कोई कष्ट नही है।' दुर्बलता खूब बढ़ गई थी, खाने की कुछ इच्छा ही नहीं होती थी, जो कुछ खाते वह भी बाहर हो जाता। शरीर में कुछ बीमारी है ऐसा नहीं लगता था, इस अवस्था में भी अत्यन्त प्रसन्नता का भाव था। उनका स्वाभाविक गाम्भीर्य कुछ शिथिल हो गया था, अपरिमित आनन्द ने उसका स्थान ले लिया था।

वृन्दावन जाने का आग्रह बढ़ता जा रहा था, या यों कहें कि वह जाने के लिये व्याकुल हो गये थे। लेकिन शरीर इतना कमजोर हो गया था कि किसी भी समय हृदय काम करना बन्द कर सकता था। इस अवस्था में इतनी लम्बी रेल-यात्रा कल्पनातीत थी, हर बार यात्रा का दिन स्थिर होता और फिर सब लोग कहकर स्थगित करा देते। एकदिन हम लोगों का मनोभाव समझकर उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया–"यदि रास्ते ही में देह छूट जाये तो उसमें आपत्ति क्या है? भगवान तो सब जगह ही हैं।"

इसी समय श्रीयुक्त बृजलाल शास्त्री उन्हें देखने आये, अतः उन्होंने उनसे कहा–"बृजलाल बाबू ! जिस दिन मैंने संसार छोड़कर

वृन्दावनयात्रा की थी, उसदिन सच्चे बन्धु की भाँति मेरी सहायता की थी, इसी प्रकार अब भी मेरी सहायता करके मुझे वृन्दावन की गाड़ी चढ़ा दो, अब यह शरीर छूटनेवाला है। श्रीगुरुदेव के आश्रम के प्रति अतीव आकर्षण हो रहा है, जिससे कि मैं वहाँ पहुँच जाऊँ, ऐसा बन्दोबस्त कर दो।" इस पर बृजलाल बाबू रोने लगे एवं श्री श्रीबाबाजी महाराज की वृन्दावन-यात्रा का बन्दोबस्त करने लगे।

हम लोगों ने भी यह अनुभव किया कि अब उन्हें रोका नहीं जा सकता, इस कारण मरे मन से उनकी जाने की व्यवस्था करने लगे। गाड़ी में रिजर्वेशन करवाया गया तथा हाथरस जंक्शन उतरकर वृन्दावन तक मोटर-यात्रा की व्यवस्था ठीक समझी गई। यह सब बन्दोबस्त करने के लिये हमारे साधु गुरुभाई दिवोदासजी पहले ही वृन्दावन चले गये। वृन्दावन तार देकर श्रीयुक्त अमूल्य रतन बसु श्री श्रीबाबाजी महाराज के साथ ही वृन्दावन तक चलेंगे, यह भी ठीक कर लिया गया।

२२ कार्तिक को सन्ध्या की गाड़ी से हम लोग श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को लेकर वृन्दावन के लिये रवाना हो गये। विदाई के समय आश्रम मे तथा स्टेशन पर हजारों नर-नारी आये। जिसने उन्हें आकर प्रणाम किया उसे ही उन्होंने प्रसन्न भाव सें आशीर्वाद दिया। साथ में भी अनेक चल दिये। उनके द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में यशोदानन्दनदास नामक एक पंजाबी साधु शिष्य, कन्हैयालाल नामक बंगाली शिष्य तथा डाक्टर शिष्य अमूल्य बाबू थे, पास के तीसरे दर्जे के डिब्बे मे भी सात-आठ शिष्य व शिष्या थे। ट्रेन चलने के समय श्री श्रीबाबाजी महाराज ने सबकी ओर देखते हुए प्रसन्नता से कहा-"तुम लोग चिन्ता

नहीं करना।" सैकड़ों जन के अर्द्ध रुद्ध कण्ठ से जय-जयकार हुई तथा गाड़ी चल दी।

श्रीयुक्त कन्हैयालाल ने बताया–

"हू हू करती हुई गाड़ी चल दी। बाबा के ट्रेन में सफर करना कुछ नयी घटना नहीं, किन्तु इस बार जो अन्तर था वह कहा नहीं जा सकता। मन गाड़ी के वेग के साथ नहीं चल रहा था, वरन डिब्बे में एक जगह ही स्थिर था। किन्तु मन में कुछ विशेष भय व उद्विग्नता नहीं थी। भय के साथ अभय का, उद्वेग के साथ शान्ति का अपूर्व मिश्रण था।"

"गाड़ी वर्द्धमान पहुँचते न पहुँचते ही अंधेरा-सा होने लगा। बाबा ने शौच के लिये कहा। 'बैडपैन' स्तेमाल करने के लिये वह प्रस्तुत नहीं हुए, चेयर ही पर बिठाकर पखाने में ले गये। उन्हें पकड़कर ही बिठाया गया। वहीं से वह कहने लगे–'यशोदानन्दन दास को बता दे कि ठाकुरजी का उत्थापन करें।' मैंने उन्हें वैसा ही कहा। उनकी इच्छानुसार यशोदानन्दन दास ने एक स्थान गंगाजल से परिष्कार कर साथ के श्री श्रीशालग्रामदेवजी और श्री श्रीदादागुरुजी महाराज की मूर्ति (छोटा-सा एक फोटो) की वहाँ स्थापना की तथा आरती का आयोजन करने लगे। इस तरफ शौच के बाद बाबाजी महाराज ने भी गंगाजल माँगा। अतः उनके हाथ में गंगाजल दिया गया, उन्होने अपने सर, मुख तथा सारे शरीर पर उसे छिड़का। अमूल्यबाबू तथा यशोदानन्दनदास को मैंने बुलाया तथा जब तीनों ने उन्हें उठाकर चेयर पर बैठाया तो ऐसा लगा कि उन्हें फिट आ गया। चेयर पर बिठाते ही आँखें ऊपर को चढ़ गईं ऐसा लगा कि बस शरीर छूटनेवाला है। मैं रोने लगा, अमूल्यभाई ने जल्दी से इन्जेक्शन दिया, यशोदानन्दनदासजी कहने लगे। लेकिन वह फिर होश में आ गये तथा कहने लगे–"बाबा ! मेरी

साँस चढ़ गई थी, इसलिये इस प्रकार हो गया। तुम लोग परेशान मत हो, भय की कोई आवश्यकता नहीं है, अभी मुझे आसन पर ले चलो।"

"बाबा को आसन पर लाकर लिटा दिया तथा चादर ओढ़ा दी। X X X 'वर्द्धमान' आकर गाड़ी कब ठहर गई कुछ पता ही न चला। थोड़ी देर बाद नहीं जाने दिया, वहीं 'बैड पैन' दे दिया। हारकर मुझसे कहा-"मुझे उठाकर बिठा।" मैंने डाक्टरबाबू की ओर देखा, उन्होंने कहा-'बिठाया नहीं जायेगा।' बाबा ने बच्चों की भाँति जिद करके कहा-'मुझे एक बार उठाकर बिठा दे न।' डाक्टरबाबू इस बार मना न कर सके। हम दोनों ने मिलकर उन्हें उठाकर बिठाया, पीठ की तरफ दो तकिये लगा दिये। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा-'हो गया।' तब धोकर, पोंछकर गंगाजल डालकर उन्हें मैंने लिटा दिया, चादर व रजाई ओढ़ा दी। वह भी शान्ति से लेट गए।"

"कब गाड़ी चल दी कुछ याद नहीं। एक बार पानी पीने की इच्छा प्रकट की, गंगाजल लाया, किन्तु सन्ध्या हो गई कहकर फिर नहीं पिया। गाड़ी में वह जब से चढ़े थे तब से प्रायः हाथ जोड़े ही रहे। X X X X X श्रीठाकुरजी की आरती हुई, स्तुति पाठ हुआ, बाबा हाथ जोड़े ही रहे। यशोदानन्दनदास जब आरती-दीप उनके पास लाये तो खूब अच्छी तरह से आरती ली। उनके सारे शरीर पर शंख का जल छिड़का।.........कहा-"अब जल दें" ! गंगाजल पिया। मुझे इशारे से बताया-'इस तरह से दाब, जो हड्डी में भी लगे।' X X X सहसा यशोदानन्दन से कहा-"कुछ चिन्ता मत करो।"✣

✣ ये उस समय सोच रहे थे कि-'यदि बाबा इस समय देह-त्याग करेंगे तो मुश्किल होगी, ट्रेन में से उतरवा देंगे इत्यादि।' इनके पास आश्रम के कुछ रुपये भी थे, इसलिए भी चिन्तित थे। यह सब इन्होंने बाद में बताया।

"मैं पैर दाब रहा था X X X गाड़ी तीव्रता से आसनसोल की ओर जा रही थी। बाबा जप कर रहे थे। सहसा उनके हाथ स्थिर, गाल थोड़े लटक पड़े, नेत्र-तारा ऊपर की ओर जाकर भ्रू-मध्य में स्थिर X X X

"तब सन्ध्या के सात बजकर दस मिनट हुए थे।" X X X

"नीरव, विश्व ब्रह्माण्ड मानों एकदम स्थिर, रुद्ध श्वास। मन की अवस्था क्या बताऊँ कुछ समझ ही नहीं आ रहा था। हृदय फटा जा रहा था X X X आसनसोल X X X धनवाद X X X हज़ारी बाग X X X गया X X X मुगलसराय X X X इलाहाबाद। प्रत्येक स्टेशन ही पर दर्शनार्थी आ रहे थे, उन्हें डिब्बे में चढ़ने नही दिया, सभी को मालूम था कि उनकी तबियत ठीक नहीं थी, वह सो रहे हैं यह देखकर सभी चुपचाप लौट गये।" X X X

"टूँडला से जब गाड़ी चली तब साढ़े बारह बजे होंगे। सबने मिलकर बाबा की देह को कुर्सी पर बिठा दिया। सभी और विशेषतः डाक्टर बाबू देह की यह अवस्था देखकर बहुत ही विस्मित हुए।"

कल सात बजे से हृदय ने काम करना बन्द कर दिया, करीब अठारह घण्टे हो गये लेकिन देह वैसी ही कोमल और सहज तनिक भी जड़ता नहीं। पद्मासन-भंगी में बिठाकर हाथ जोड़ दिये गये। शरीर पर कपड़ा ढक दिया।

"जब गाड़ी हाथरस जंक्शन पर पहुँची तो डेढ़ बज गया था। एक मोटर लेकर अनन्तदासजी तथ दिवोदासजी खड़े थे। गाड़ी रुकते ही वह डिब्बे में आये। अमूल्यभाई ने धीमे-धीमे उन्हें सब कुछ बता दिया। जल्दी ही वह दोनों चेयर पकड़कर बाहर ले गये और बाबा की देह मोटर में स्थापित कर दी। अमूल्यबाबू उनके साथ ही गये। ड्राईवर

को गाड़ी जल्दी चलाने को कहकर वह लोग (अमूल्यभाई व अनन्तदासजी) हमारी दृष्टि से ओझल हो गये।"

तीन बजे ये लोग आश्रम पहुँचे। आश्रम के पिछवाड़े जहाँ बाबाजी महाराज बैठा करते थे, वहीं सामने के चबूतरे पर उनकी देह लिटा दी गई। थोड़ी देर ही मे बस से सामान तथा अन्य संगी साथियों को लेकर दिवोदासजी भी आ गये। इस बीच यह सम्वाद बिजली की तरह समस्त वृन्दावन में फैल गया। एक आश्रम से दूसरे आश्रम इस तरह सब जगह समाचार फैल गया, साधुओं के झुण्ड के झुण्ड आश्रम मे आ पहुँचे। साधुओं के अलावा गृहस्थ, धनी, दरिद्र आदि अनेक नर-नारियों के समूह वहाँ उनके अन्तिम दर्शनों को आ गये।

साधुगणों ने मिलकर एक विमान प्रस्तुत किया, जिसमें अनेक फूलमालाऐं सजाई गईं। सन्ध्या होने से कुछ पहले बाजे और संकीर्तन के साथ विमान लेकर चले, अपार जनता साथ में थी। हमारे गुरुभाईयों ने विमान को कन्धा दिया। जयध्वनि से गगन विदीर्ण हो रहा था। शहर में प्रविष्ट होने पर हजारों लोग साथ-साथ चलने लगे। क्या अनुपम दृश्य था। ब्रजवासी-'धन्य हो महाराज', 'जय महाराज', 'ऐसा महात्मा और नहीं मिलेगा' कहते हुए प्रणाम करने लगे, किसी ने फूल माला अर्पण की तो किसी ने आरती। जुलूस की गति धीमी हो गई, विपुल जनता धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। 'काठियाबाबाजी महाराज की जय', 'जय काठिया बाबाजी महाराज की जय'✤ जय-जयकार करते हुए धीरे-धीरे पुराने शहर से सेवाकुंज, श्री श्रीराधारमणजी मन्दिर, गोपेश्वर

✤ यद्यपि श्रीयुक्त बाबाजी महाराज काठ की कोपीन धारण नहीं करते थे, किन्तु श्री श्रीकाठियाबाबाजी की गद्दी पर होने के कारण ब्रजवासी उन्हें काठियाबाबा ही कहते थे।

महादेव का मन्दिर, वंशीवट आदि स्थान होते हुए यमुनाजी के सब घाट दर्शन करते-करते अन्त में युगलघाट जाकर सब पहुँचे। उनके गुरुदेव श्रीस्वामी रामदास काठिया बाबाजी महाराज के देह का अग्नि-संस्कार भी यहीं हुआ था। जब उनकी देह को पद्मासन में बिठाकर हम लोग उनको यमुना-जल से स्नान करवा रहे थे, तो ऐसा लग रहा था, मानों वह ध्यान में लीन हैं, हाथ-पैर में वही सहजता तथा कोमलता थी। सब लोग दर्शनों के लिये पागल हुए जा रहे थे, 'धन्य-धन्य' के नाद से आकाश गुंजायमान हो गया था। सभी कह रहे थे कि मृत देह की इस प्रकार की अवस्था कभी नहीं देखी थी। चन्दन की लकड़ी तथा घी के सहयोग से अग्नि संस्कार का कार्य जल्दी ही सम्पन्न हो गया। इतनी देर तक इस आनन्दोत्सव में शोक के लिये अवकाश ही नहीं रहा था। अब जब सब शेष हो गया तो शून्य-हृदय लेकर हम लोग आश्रम लौटे। रात के साढ़े ग्यारह बजे थे।

दूसरे दिन आश्रम की युगलमूर्ति श्री श्रीराधाबिहारीजी की मुखश्री भी मलिन थी। उनका यह मलिन-भाव विशेषतः श्रीजी का तो अनेक दिन तक रहा।

मथुरा में श्रीयुक्त बनवारीलाल भटनागर नामक हमारे एक गुरुभाई हैं।✤ वे श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के आने का हमेशा समाचार रखते थे। 'आज वह थके होंगे कल सुबह जाकर दर्शन करूँगा' यह सोचकर वह उस दिन नहीं आये। दूसरे दिन जब सुबह आकर सब

✤ यह मथुरा के एक विशिष्ट नागरिक और वकील हैं। आश्रम की जमीन के सम्बन्ध में मथुरा के कोर्ट में जब एक मुकदमा हुआ, तो उसी के उपलक्ष्य में श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के संस्पर्श में आये तथा उनकी ओर आकृष्ट हुए। बाद में उनका शिष्यत्व लाभ किया। यह हिन्दी-अनुवादिका उनकी कनिष्ट पुत्री है।

कुछ सुना तो वह एकदम दुःखी होकर रोने लगे तथा हम लोगों ने उन्हें सूचना क्यों नहीं दी, इस पर भी क्षोभ प्रकाशित किया। किसी किसी ने उनसे कहा कि हम लोग हतबुद्धि हो गये थे तथा आपको सूचित करने का समय भी नहीं था। उनको सान्त्वना भी दी लेकिन उनको शान्ति नहीं मिली। आश्रम में काफी देर बैठे शोक करते रहे फिर रोते-रोते ही मथुरा लौट गये। घर जाकर भी सारे दिन दुःख में कातर रहे। रात को श्री श्रीबाबाजी महाराज उनके सम्मुख आविर्भूत हुए तथा उनसे कहा-'बाबा, लोक दृष्टि के अनुसार ही यह देह त्याग की है, तुम शान्त हो। तुम लोग सदा मेरे दृष्ट-जगत में रहोगे। तुम वृन्दावनआश्रम में जाते रहना तथा दर्शन करके आना।'

तब इन्होंने शान्त होकर उन्हें दण्डवत् की और अन्तर्हित हो गये। यह सब कुछ बनवारी बाबू ने हम लोगों को बाद में बताया।

श्री श्रीबाबाजी महाराज की देह रक्षा के थोड़े दिन बाद ही मण्डलेश्वर श्री श्री १०८ स्वामी महादेवानन्द गिरि महाराज का यह निम्नलिखित पत्र आया-

श्री श्रीभोलानन्द संन्यासाश्रम
लालतारा बाग हरिद्वार
ता. २६ कार्तिक १३४२ सन्

नारायण स्मरणं,

महाशय ! बाबाजी सन्तदासजी के तिरोधान-सम्वाद से मैं बहुत ही दुःखी हुआ। उनका भण्डारा व समाधि का कार्य भली-भाँति सम्पन्न हो उसके लिये विधिवत् व्यवस्था कीजिये। वह आत्मज्ञानी पुरुष थे, उनके सम्बन्ध में देहत्याग के स्थान के विषय में प्रश्न उठाना ही

व्यर्थ है, कारण शास्त्र कहते हैं–तनु त्यजतु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा। ज्ञानसंप्राप्ति समये मुक्तो ऽसौ विगताशयः। X X X

मंगलाकांक्षी

स्वामी महादेवानन्द गिरि

इनकी बात से हम लोगों को बहुत आनन्द हुआ। अन्य एक विषय में भी कुछ संशय था, वह भी एक सिद्ध महात्मा की कृपा से तिरोहित हो गया। उनकी देहत्याग के २४ घण्टे बाद भी उनके हाथ पैर इतने कोमल क्यों रहे वह भी उस समय समझ नहीं आया। जयपुर के प्रसिद्ध महात्मा 'सिद्धबाबा' जब इसके बाद वृन्दावन आये तो उनसे इस विषय में पूछा उन्होंने बताया–"वृन्दावन तक ब्रह्मरन्ध्र में रहे। तुम सबको मालूम नहीं रहा, वे भगवत्-स्वरूप थे, उनकी इच्छा तुम सब कैसे समझोगे।" यह सुनकर वह संशय मिट गया।

स्थानीय नियम के अनुसार तेरहवें दिन भण्डारा चाहिये, किन्तु इतनी जल्दी सब कुछ व्यवस्था नहीं हो सकती थी, इस कारण वृन्दावन की साधु-मण्डली से अनुमति लेकर ठीक एक मास बाद भण्डारे का दिन निर्धारित किया। वृन्दावन में तेरहवें दिन कुछ साधु व ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा वस्त्रादि दान किये, शिवपुर निम्बार्काश्रम में वृहत् भण्डारा हुआ। बंगदेश के अनेक प्रसिद्ध पण्डित आये तथा निकट के आश्रमों व मठों के साधु वगैरह आये। दरिद्र नारायण को भोजन करवाया गया, छै हजार के करीब लोगों ने उस दिन वहाँ प्रसाद पाया। श्रीहट्ट, वामै, हरिगंज, शिलौंग, मैमनसिंह, फरीदपुर, कुमिल्ला, नवीनगर, खुलना, वारिशाल, किशोरगंज, पटना, गया, समस्तिपुर आदि स्थानों पर इस दिन उनके नाम पर भण्डारा हुआ।

पूजा के बाद जब हाईकोर्ट खुला तो (११ नवम्बर) अस्थायी प्रधान विचारपति सर मन्मथनाथ मुखोपाध्याय और विचारपति मिस्टर एस. के. घोष के इजलास में श्री श्री बाबाजी महाराज के परलोकगमन मुखोपाध्याय ने उनके प्रति श्रद्धा प्रकाश करते हुए संक्षेप में उनकी जीवन कहानी सुन्दरता से वर्णित की। फिर कलकत्ते के एलबर्ट हाल में श्री श्रीबाबाजी महाराज को श्रद्धांजलि देने के लिये एक विराट् सभा का आयोजन हुआ। सर मन्मथनाथ मुखोपाध्याय ने सभापति का आसन ग्रहण किया तथा बहुत से गण्यमान व्यक्तियों ने इस सभा में योग दान दिया।✣

कलकत्ते के प्रसिद्ध समाचार-पत्रों में भी श्री श्रीबाबाजी महाराज के सम्बन्ध में लेख प्रकाशित हुए।

२२ अग्रहायन, रविवार शुक्ला त्रयोदशी को श्रीवृन्दावन आश्रम में सुवृहत भण्डारे का अनुष्ठान हुआ। एकादशी के दिन आश्रम के जिस भाग में उनके गुरुदेव का मन्दिर है, उसी के पास नवनिर्मित प्रकोष्ठ में उनका तैलचित्र व पादुका प्रतिष्ठित हुईं। अगले दिन इस तैल चित्र को लेकर ब्रजवासीगण व साधुगण महासमारोह के साथ वृन्दावन शहर परिभ्रमण को गये। नगर में सब जगह ही उनकी आरती व फूलमाला द्वारा पूजा की गई। अगले दिन भण्डारा हुआ। आश्रम को खूब सुन्दर रूप से सजाया गया। श्री श्रीठाकुरजी की मूर्ति की भी मुखश्री प्रसन्नता पूर्ण थी, उनका श्रृंगार भी उस दिन बहुत ही सुन्दर हुआ था। दूर-दूर से महन्तगणों को निमन्त्रित किया गया था, वह सब लोग आये। गुरुभाई-बहन भी आये। गीता व भागवत पाठ तथा कीर्तन किया गया। हजारों की संख्या में लोग आये। अनेक प्रकार के मिष्ठान्न

✣ इसका विस्तृत् वर्णन परिशिष्ट में है।

तथा उत्कृष्ट भोज्य-द्रव्यों से श्री श्रीठाकुरजी को भोग लगाया गया, फिर सारे दिन इस प्रसाद द्वारा साधु, ब्राह्मण, ब्रजवासी, दरिद्रनारायण आदि को भोजन करवाया। साधुओं और ब्राह्मणों को धोती प्रदान की गयी। जो भी आया सभी को प्रसाद दिया गया। आठ हजार लोगों ने उस दिन प्रसाद ग्रहण किया। श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की तस्वीर भी वितरण की गई। बहुत ही सुन्दर और सुचारु रूप से यह कार्य सम्पन्न हुआ।

इसके दो मास बाद प्रयाग के कुम्भ मेले, दो वर्ष बाद वृन्दावन के अर्ध कुम्भ-मेले तथा फिर हरिद्वार के पूर्ण कुम्भ-मेले में भी उनके उद्देश्य में वृहत् भण्डारे हुए। पूर्ण-कुम्भ में तो १५ हजार साधुओं ने प्रसाद ग्रहण किया।

उनकी इच्छानुसार हमारे आश्रम में साधु-सेवा आजकल भी होती है। इन सब भण्डारे तथा साधु-सेवा में जो कुछ खर्च होता है तथा हुआ उसके लिये अपने आप ही कहीं न कहीं से पैसा आ जाता है तथा सब कुछ भली भाँति सुसम्पन्न हो जाता है।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के देहान्त के बाद हमारे गुरुभाई श्रीयुक्त बनवारीलाल बाबू की भाँति अन्य लोगों ने भी उनके साक्षात् दर्शन लाभ किये तथा करते हैं। इस प्रकार की एक घटना इस ग्रन्थ में वर्णित की गई हैं। हमारे किसी गुरुभाई को उन्होंने लिखा था—"मेरी देह रक्षा में अभी समय है। वह तो होगा ही किन्तु तुम लोगों को इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ेगा।" वस्तुतः उनकी कृपा आज भी उनके न रहने पर भी हम लोग उसी प्रकार अनुभव करते हैं या यों कहें कि उससे भी अधिक अनुभव करते हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। महापुरुषों के देहान्त के बाद ऐसा ही होता है, वह भी यही उपदेश देते थे। उनके उपदेशों का अर्थ उस समय बोधगम्य नहीं हुआ, आज सब समझ में

आता है। किसी को निराश होने की आवश्यकता नहीं है। उनकी करुणा धारा आज भी प्रवाहित हो रही है तथा सबको शान्ति प्रदान कर रही है। लोक-दृष्टि से आज उनकी स्थूलदेह नहीं है, किन्तु जिस प्रकार वह दूर रहकर सबको समय-समय पर दर्शन देकर लीला प्रकाश करते थे, वह आज भी कर रहे हैं। विपदा में सहायता व दुःख से उद्धार करके वह आज भी लोक-कल्याण कर रहे हैं। 'मैं सर्वदा ही तुम्हारे साथ हूँ' 'तुम लोगों को हमेशा मैं देखता रहता हूँ' आदि वाक्य सफल कर रहे हैं। उनकी लीला व महिमा के विषय में सोचने मात्र ही से हृदय आशा व आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है।

ॐ शान्ति ॐ शान्ति ॐ शान्ति

ॐ गुरो कृपाहि केवलम्

समाप्त

परिशिष्ट (क)

उपदेशावली

श्री श्रीबाबाजी महाराज के कुछ उपदेशों को संकलित करके नीचे लिखा जा रहा है। विषय के अनुसार श्रेणी-विभाग कर दिया गया है।

इस जन्म के सुख-दुःख

(१) इस जन्म में सुख, दुःख, लाभ, क्षति तथा यश, अपशय पूर्वजन्म के कर्मानुसार मिलता है। यह भी साधारणतया देखा जाता है कि परिश्रमी, बुद्धिमान्, पण्डित लोगों को अर्थाभाव रहता है तथा अविद्वान् और अकर्मी लोगों के पास खूब धन-वैभव रहता है, यह सब पूर्व-जन्म के कर्मसंस्कारवश होता है।

(२) रोग, शोक आदि तो जन्मान्तर के फल-स्वरूप सभी को थोड़ा बहुत भोगना पड़ता है। यह सब भोगने ही से जन्मान्तर की दुष्कृति कट जाती है, जब तक यह दुष्कृति नहीं कटती तब तक चित्त की मलिनता दूर नहीं होती है तथा धर्म की ओर भी विशेष अग्रसर नहीं हुआ जाता है। इस कारण रोग-शोक उपस्थित होने पर धीरज रखना चाहिये।

(३) पूर्वकालीन कर्मों का फल सबको भोगना पड़ता है। भोग के द्वारा ही कर्म शेष होते हैं। इन्हीं कर्मों के फलस्वरूप रोग होते हैं। अनेक महापुरुषों ने रोग के कारण क्लेश सहे हैं। X X X रोग भी पूर्व-जन्म के फलस्वरूप होता है, इसके विषय में शास्त्रों का उपदेश है कि रोग होने पर उसकी उचित चिकित्सा करवानी चाहिये। चिकित्सा रोग का प्रायश्चित-स्वरूप है।

(४) जो पूर्व जन्म में पुण्य-कर्म क़रते हैं, वह इस जन्म में सुख भोग करते हैं तथा इस तरह पुण्य का क्षय होने पर चित्त शुद्ध होता है। जो पाप करते हैं, वह इस जन्म में क्लेश भोग करते हैं तथा इस भोग द्वारा पाप-क्षय होते हैं तथा फिर उनका चित्त शुद्ध होता है। इस तरह सुख-दुःख दोनों ही विधाता द्वारा प्रदत्त हैं, ज्ञानी लोग इसे धीरज के साथ सहन करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि यही कल्याणकर हैं।

(५) स्थूल दृष्टि से जिसे तुम सुखदाता व दुःखदाता समझते हो वास्तव में ऐसा कुछ नहीं है। अपने कर्मों के फल ही तुम भोग कर रहे हो तथा करोगे। X X X वह तो केवल निमित्तमात्र है। जो दुःख का हेतु है उसके प्रति तो दया रखनी उचित हैं। जिसको यह समझ है, उसके दुःख भोग की मात्रा भी भगवान कम कर देते हैं।

(६) यह हमेशा याद रखो कि संसार क्रीड़ा-भूमि है। यह सुख-दुःख, अभाव-प्राचुर्य सभी क्षणिक व बाहिरी वस्तु हैं, आत्मा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

(७) सम्पद-विपद, दुःख-सुख सभी अस्थिर हैं। श्रुति के अनुसार "यत्किंचत् जगत्यां जगत्"–अर्थात् जगत में सब कुछ गमनशील है, यह मानकर सभी अवस्थाओं को सहन करना चाहिये।

(८) इस जन्म के कर्मों का फल साधारणतः परजन्म में मिलता है। केवल गुरुतर पाप व पुण्य का फल इस जन्म में ही भोगना होता है।

(६) नियमित रूप से भगवत्-उपासना करने पर जन्मान्तर के कर्म-भोग सहज में कट जाते हैं। परन्तु प्रारब्ध कर्म-भोग के बिना क्षय नहीं होता।

शान्ति लाभ

(१०) विरुद्धाचरण देखने पर भी जिसकी मन की शान्ति में व्याघात न पड़े, वही अखण्ड शान्ति-लाभ कर सकते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने कहा है-"साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते" यही उद्देश्य रखना चाहिये।

(११) जिसके हृदय में सदैव धैर्य रहे, दूसरों के कृत्यों को देख विद्वेष बुद्धि नहीं आये, उनका चित्त ही निर्मल कहा जा सकता है तथा वे ही यथार्थ शान्ति के अधिकारी हैं।

(१२) साधारण व्यवहार में जितनी निष्कपटता, सरलता एवं निस्वार्थ प्रीति अन्तर में उदय हो, उतनी ही चित्त में वास्तव में निर्मलता होती है।

(१३) सच्ची शान्ति पाने का सहज पथ :- जब जिस अवस्था में भगवान रखें उसी में सन्तुष्ट रहने का अभ्यास करो। ऐसा करने से भगवान प्रसन्न होते हैं तथा पूर्वसंचित दुष्कर्म बलहीन हो जाते हैं।

(१४) सब प्रकार की आशा, वासना का परित्याग करने पर ही यथार्थ शान्ति मिलती है। जब तक भोग-ऐश्वर्य के प्रति आसक्ति रहेगी तब तक शान्तिलाभ करना मुश्किल है।

(१५) X X X वे जब जैसा रखें, उसी के अनुसार संतुष्टचित्त से जीवन बिताने ही में शान्ति है।

(१६) जो जितना अकिंचन भाव से भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण कर सके, उतनी ही शीघ्रता से शान्ति-लाभ कर सकता है। सब प्रकार का अभिमान और अहंकार परित्याग करना पड़ता है।

(१७) भगवत्-सेवक होने पर हर प्रकार के सेवा-कर्म को प्रफुल्लचित्त से सम्पादन करना चाहिये। भगवान जो भी काम करवाते

हैं, उसी में कल्याण है, यही मानकर सब काम करना उचित है। इस प्रकार से मानकर जो जीवन बिताते हैं, वही यथार्थशान्ति के अधिकारी हैं-"स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।"

(१८) वाह्य वस्तु के प्रति आसक्ति अनादिकाल से चली आ रही है। इसे अकिंचित् समझकर भी पूर्व संस्कारवश मन से इसकी तृष्णा नही जाती है। भजन करते-करते संस्कार का वेग कम होता है। निष्ठापूर्वक भजन से धीरे-धीरे शान्ति-लाभ होता है।

(१६) सेवक बुद्धि से यथासाध्य सेवा करते रहो तथा नियम से थोड़ा भगवत्-नाम-साधन करो। श्रीभगवत् कृपा से अवश्य शान्ति लाभ होगा।

वाह्य आचरण

(२०) व्यर्थ की बातों में बिल्कुल समय मत बिताओ, भगवान का मनन अधिक से अधिक करो।

(२१) दूसरों के दोष-दर्शन तथा निन्दा परित्याग करना चाहिये। ऐसा करने से सब प्रसन्न रहेंगे, सबकी प्रसन्नता ही भगवान की प्रसन्नता है।

(२२) सभी में भगवान विराजमान हैं, यह सोचकर किसी की अवज्ञा नहीं करनी चाहिये, बल्कि सेवा द्वारा सबको सुखी बनाने का ही यत्न करना चाहिये।

(२३) दूसरे के दोष-दर्शन पर ही उसके प्रति अवज्ञा आती है। जो सब में भगवत्-दर्शन करते हैं, उनमें दोष-दर्शन की बुद्धि विलुप्त हो जाती है तथा अवज्ञा का भाव भी नहीं आता है। जहाँ तक हो, यही भाव रखना श्रेयस्कर है।

(२४) सबके सम्मुख नम्र और विनीत बनने की चेष्टा करो। X X X मन से सदा शुद्ध, पवित्र और निर्लिप्त रहने की कोशिश करो।

(२५) भक्तमाल, वाल्मीकि रामायण आदि ग्रन्थ रोज सुबह पाठ करेन की चेष्टा करो, इससे हृदय में पवित्र भाव उत्पन्न होंगे तथा मन की अस्थिरता कम होगी।

(२६) जो जितना महत् होगा उसे उतना ही धैर्यवान तथा परिश्रमी होना होगा।

(२७) सबसे सदा सरल और निष्कपट व्यवहार करना चाहिये।

(२८) परनिन्दा कदापि नहीं करना।

(२९) आत्मप्रशंसा कभी नहीं करना।

(३०) काज-कर्म में आलस्य छोड़ना चाहिये। X X X सदा क्षमाशील और सदय होकर सबके प्रति बर्ताव करना चाहिये।

(३१) पापी, नीच जानकर किसी से घृणा नहीं करनी चाहिये। यही सच्चे वैष्णव का लक्षण है।

(३२) किसी को आपसे कष्ट न हो, यह विशेष ध्यान रखना चाहिये। किसी के प्रति विद्वेषभाव आने पर उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये।

(३३) हिंसा, विद्वेषशून्य होकर सबसे मित्रतापूर्वक व्यवहार करते हुए जीवनयापन करेन की चेष्टा करो।

(३४) बाहिरी कार्य करते हुए दूसरों की सुविधा का ध्यान रखना चाहिये। दसजनों के साथ मिलकर रहने पर अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं किया जाता है।

(३५) जहाँ पर परनिन्दा-विशेषतः वैष्णव, साधु, संन्यासी आदि की निन्दा हो रही हो, वहाँ से उठकर चला जाना उचित है।

(३६) यह हमेशा याद रखना चाहिये कि थोड़े-बहुत गुण-दोष सभी में होते हैं। दूसरों के दोष जो क्षमा करते हैं, भगवान उनके दोष क्षमा करके उन्हें पवित्र कर देते हैं।

रिपु-दमन और मन-संयम

(३७) काम, क्रोध अनन्तकाल से हृदय पर अधिकार किए हुए हैं, इनको जीतना सहज नहीं है। यदि दीर्घकाल के बाद भी इन्हें जय कर सकें तो भी सौभाग्य समझना चाहिये। सबसे मधुर और प्रीति बर्ताव करके धीरे-धीरे इसके दमन करने की चेष्टा करनी चाहिये।

(३८) मन में भगवान का हर समय नाम-स्मरण करने की चेष्टा करते रहो, यह कामादि रिपु सब बलहीन हो जायेंगे। X X X यह सब शरीर-धर्म एकदम परित्याग नहीं किये जा सकते हैं, लेकिन धीरे-धीरे वशीकृत होते हैं। अतएव हताश होने का कोई कारण नहीं है, प्रयत्न करते रहना चाहिये।

(३९) जब दुःख होने को होता है तो परम आत्मीय की बुद्धि भी प्रतिकूल हो जाती है, परम मित्र भी दुःख देता है, यह बात सदा याद रखनी चाहिये। इस तरह से दूसरे पर क्रोध नहीं आता है तथा अच्छे कार्य करने की प्रवृत्ति होती है। यह याद रखना कि भगवान तुमको हमेशा देख रहे हैं, इस कारण उनके जीव के प्रतिकूल आचरण को भी क्षमा करने की चेष्टा करो।

(४०) जिस प्रकार समय-समय पर भूख, प्यास लगना शरीर का धर्म है, उसी प्रकार काम-क्रोध भी शरीर के धर्म हैं। शरीर की अवस्था के अनुसार इनका ह्रास व वृद्धि होती है। उनके उपस्थित होने पर 'गुणागुणेषु वर्त्तन्त इति मत्वा न सज्जते' यह गीता का वाक्य याद

करके धैर्यावलम्बन करना चाहिये। साध्यानुसार नाम-जप करते रहना चाहिये। उसी से पार हो जाओगे।

(४१) मन में कामवृत्ति की चिन्ता न करने पर भी शरीर में अपने आप रस संचित होता है, यह शरीर का धर्म है। प्रायः दशमी व एकादशी को शरीर की ऐसी अवस्था होती है। इसके लिये दशमी से अमावस व पूर्णिमा तक शरीर को अनाहारी अथवा अल्पाहारी रखकर रस को सुखा देना चाहिये।

(४२) दोष एवं गुण सभी में थोड़े बहुत तो रहते हैं। उनकी उपेक्षा करके ही किसी से प्रीति की जा सकती है। तुम में स्वयं अनेक दोष हैं जो दिखाई नहीं पड़ते हैं, इसके कारण तुम से कोई विद्वेष करे तो भी ठीक नहीं है, दूसरों के दोष के कारण तुम्हारा भी विद्वेष करना अनुचित है। यह विद्वेषभाव ही मन को कलुषित रखता है, इस कारण इसको त्यागकर सबसे प्रीति रखो, यही वैष्णव धर्म है।

(४३) निष्ठापूर्वक जप करने से मन निर्मल होता जाता है। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और अभिमान आदि रिपुओं का दमन करने का प्रयत्न करो, बुद्धि का उद्धत-भाव जाये तथा शान्त-भाव आये इसकी चेष्टा में लगे रहो।

(४४) सबके प्रति दया और क्षमा का भाव रखो। यदि तुम दूसरे के दोष देख क्रोध करोगे तथा क्षमा नहीं करोगे तो भगवान किस प्रकार क्षमा करेंगे। यह याद रखते हुए क्षमावान बनने की चेष्टा करो। भगवान के जीवों की सेवा करना ही परम धर्म है। यदि सेवा-बुद्धि से काम करोगे तो क्रोध व अहंकार शीघ्र ही दूर हो जायेगा। नाम में रुचि होने से कामादि अपवित्र भाव दूर हो जायेंगे। भगवत्कृपा सदा तुम्हारा कल्याण साधन करेगी।

कर्तव्य-कार्य और सेवक भाव

(४५) केवल कर्तव्य-बुद्धि से कार्य करना चाहिये फल की आशा से नहीं।

(४६) चेष्टा करने पर भगवान जब और जैसा फल देना उचित समझेंगे सो देंगे। क्या होगा यह सोचकर मन को व्याकुल करना बुद्धिमानी नहीं है।

(४७) फलाकांक्षा-शून्य होकर निर्लिप्त-भाव से विहित-कर्म अनुष्ठान करने से चित्त में निर्मलता आती है। अलस-भाव से बातें करने में समय वृथा ही नहीं जाता, बल्कि क्षति भी होती है।

(४८) जो आलस्यहीन होकर उद्यमशील होते हैं, वह उन्नति करते हैं और जो भगवान को आत्मसमर्पण करके खूब भजननिष्ठ होते हैं, उनके अन्य काम न करने पर भी भगवान उनके सब अभाव पूर्ण करते हैं। अतएव अभावमुक्त होने के लिये या तो आलस्यहीन कर्मचेष्टा चाहिये अथवा निष्काम होकर भजननिष्ठा चाहिये।

(४९) जो जो काम भगवान जिससे करोयेंगे वह जन्म के समय ही निर्धारित कर देते हैं, अतः करने पड़ते हैं। वे ही कर्मो के प्रवृत्ति दाता हैं, ऐसा समझकर जो जीव कर्म करते हैं, वह उसमें निर्लिप्त रहते हैं तथा अन्त में सद्गति प्राप्त करते हैं। जो उनका सेवक बनकर सब कार्य सेवा-बुद्धि से करते हैं, उनकी कभी अधोगति नहीं होती।

(५०) हिंसा-विद्वेषशून्य होकर सबके प्रति मैत्रीभाव रखकर जीवन बिताने की चेष्टा करो। उपदेशानुसार यथासाध्य कार्य करो। इससे भगवान प्रसन्न होंगे।

(५१) स्वेच्छा से काम करना तथा अन्य काम आ जाने से सर पर बोझ समझना यह मनोवृत्ति तामसिक हैं।

(५२) पिता-माता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्रादि सभी को भगवान का रूप समझकर सेवा करो। किसी के प्रति भी अपनत्व नहीं रखना। सब उनके हैं, तुम तो सेवकमात्र हो, यही भाव मन में रखो। इसका फल सब साधनों से भी अधिक है।

(५३) सांसारिक काम सेवा-बुद्धि से करने पर वह भगवत्-आराधना के सदृश है।

(५४) भगवान सर्वातीत होने पर भी वह सर्वमय हैं, विश्व ब्रह्माण्ड के कण-कण में व्याप्त हैं। इसी विश्वास से सबकी सेवा करो।

(५५) वर्तमान काल में जीव पाँच मिनट के लिये भी चित्त को स्थिर करने में समर्थ नहीं है, फिर ध्यान, धारणा, समाधि किस प्रकार की जा सकती है? इस प्रकार की चित्तवृत्ति-सम्पन्न पुरुषों के विषय में भगवान ने गीता में कहा है–

"अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव"

(५६) भजन के साथ-साथ भगवान के जीवों की सेवा करना भी कर्तव्य है। अन्य जीव-जन्तु भी जो संसर्ग में आयें, उनकी भी सेवा करने की चेष्टा करना।

(५७) स्वयं को निर्दोष समझने के लिये बाहरवालों की दृष्टि में भी निर्दोष रहो, ऐसा आचरण करना चाहिये।

(५८) ब्रह्म-प्राप्ति में जो कर्म सहायक हैं, उनकी प्रशंसा तथा जो विलम्बबोधक कार्य हैं, उनकी निन्दा करना अज्ञानता का परिचायक है। भगवान ने गीता में कहा है–"साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।" श्रीमद्भागवत् में भी भगवान ने कहा है कि दूसरों का दोष-दर्शन करना भी दोष है।

(५९) साधारणतः मन स्थिर करना सभी के लिये कठिन है। भगवान ने इस प्रकार के मनुष्यों के लिये कर्मयोग का उपदेश दिया है।

सेवा-बुद्धि से भगवत्कार्य करते-करते जो निर्मलता आती है, उसी से उद्धार हो जाता है, ऐसा भगवान ने स्वयं कहा है।

आचार नियम

(६०) हिन्दू-धर्म कहने से किसी विशेष वर्ग का धर्म तथा कुछ आचार नियममात्र का ही अर्थ नहीं निकलता है। यह तो मनुष्यमात्र का सनातन धर्म के उच्च उपदेशों को ग्रहण करने के लिये मन व शरीर की पवित्रता आवश्यक है और इसके लिये अभिज्ञ, ज्ञानी पुरुषों द्वारा प्रवर्तित आचार-नियम अबलम्बन करना आवश्यक है।

(६१) यथार्थ हिन्दू-धर्म के लिये आचार-नियम बहिरंगमात्र हैं, अन्तरंग साधन के साथ ही मिलित होकर यह उपकार करता है, नहीं तो कुफल ही उत्पादन करता है।

(६२) शरीर की अवस्था के अनुसार व्रत-उपवास आदि करने चाहिये, असमर्थ शरीर होने पर व्रतादि नहीं करने चाहिये।

(६३) गंगा-स्नान तीर्थ-सेवादि कार्य कल्याणकारी हैं। जिनका चित्त अपेक्षाकृत निर्मल है, वही गंगादि का पुण्य स्पर्श का प्रभाव अनुभव कर सकता है। दूसरे लोगों को भी थोड़ा बहुत फल अवश्य मिलता है।

(६४) अशौच होने पर भी नित्य-पूजा कभी नहीं बन्द करनी चाहिये X X X भक्ति ही पूजा का मुख्य अंग है। भक्ति से समस्त वस्तु पवित्र होती है X X X शरीर अस्वस्थ होने पर उसे आपत्काल कहते हैं। ऐसी अवस्था में बिना स्नान किये जप, पूजा करने में कोई दोष नहीं है।

(६५) रास्ते में, भ्रमण में आहार-नियमों की पूरी रक्षा नहीं हो सकती है। शास्त्रों के उल्लेखानुसार आपत्-धर्म का अवलम्बन करना उचित है।

(६६) यात्रा में यदि श्रीगुरुदेव और श्री श्रीठाकुरजी की मूर्ति साथ में हो तो रेलगाड़ी ही में उत्तम जल से साफ करके कुछ भोग लगा देने का सुयोग कर लेना चाहिये। गाड़ी में स्थापना करने में कोई दोष नहीं है। काठ और पृथ्वी समान है। मिट्टी पर सभी खड़े होते हैं, सभी का आसन मिट्टी है, इसमें स्पर्श-दोष नहीं होता है। इस कारण डिब्बे में अन्य लोगों के रहने से स्पर्श-दोष नहीं होता है।

(६७) जहाँ तक सम्मत हो सामाजिक प्रथाओं का विरोध नहीं करना चाहिये। आदर्श-रक्षा के लिये भी सामाजिक भित्ति को विशेष नहीं हिलाना चाहिये। यह ध्यान रखते हुए कुछ भी व्याघात नहीं होगा।

नाम-जप और दास्यभाव-साधना

(६८) प्रतिदिन नियम-निष्ठापूर्वक भजन करो। निर्दिष्ट समय जाप करने के अलावा खाते, बैठते, चलते, फिरते, लेटते हर समय मन्त्र जप करने की चेष्टा करो। X X X यथा साध्य सबकी सेवा करो। इस प्रकार करने से शीघ्र ही शान्ति प्राप्त होगी तथा भगवत्-प्रसन्नता अनुभव होगी।

(६९) निष्ठापूर्वक तथा भक्तिपूर्वक नित्य भजन करना एवं सब घर में भगवान विराजित हैं, यह अनुभव करते हुए अपने को सबका सेवक समझने की चेष्टा करनी चाहिये। स्थिर बुद्धि से सबके प्रति विनीत भाव रखना चाहिये। इस प्रकार प्रयत्न करने पर भगवत्-कृपा होती रहेगी तथा इस प्रकार अन्तर में आनन्द का अभाव नहीं रहेगा।

(७०) नित्य भगवत्-नाम जप करना नहीं भूलना। किसी न किसी तरह समय निकालकर जप करना X X X शरीर अस्वस्थ हो तो बिस्तर पर पड़े-पड़े ही माला फेरते रहना। माला नहीं लेने पर

भी हमेशा मन ही मन में मन्त्र जपते रहना चाहिये। इससे तुम्हारे अनाचारजनित पातक विनष्ट हो जायेंगे। श्रीभगवान के नाम से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

(७१) भक्तिपूर्वक भगवत्नाम-साधन करते रहो, इससे चित्त निर्मल होगा, जितना निर्मल होगा उसके अनुपात ही में कर्तृत्वाभिमान. ....दूर होगा।

(७२) जप करते समय किसी मूर्ति का ध्यान न करते हुए केवल मन्त्र ध्वनि के प्रति ही लक्ष्य रखकर जाप करने से मन शीघ्र ही स्थिर हो जाता है तथा हर प्रकार से कल्याण-लाभ होता है।

(७३) तन्त्र में जो षड्चक्र के विषय मे लिखा है, वह सर्वथा सत्य है। आध्यात्मिक साधन का यही स्वाभाविक पंथ है, इसी में से होकर सबको जाना पड़ता है, जब कि जाने को प्रणाली अनेक प्रकार की है। प्राणायाम का उद्देश्य यही षट्चक्र का बेधन होता है। राजयोग में जो ध्यान है, उसके फलस्वरूप भी षड्चक्र का बेधन होता है। X X X तुम लोग जो साधन करते हो वह भी निष्ठापूर्वक करने से षड्चक्र का रास्ता खुल जाता है।

(७४) भोर में उठना ही अच्छा है, यदि नहीं उठ सको तो अन्य शान्ति के समय भजन करना चाहिये। शुष्क्ता आदि स्थायी नहीं होगी, कभी-कभी आयेगी ही। उस ओर लक्ष्य न रखकर निष्ठापूर्वक रोज नाम-जप करने की चेष्टा करना, हताश होने का कोई कारण नहीं है।

(७५) ठीक प्रकार जप होने से मन प्रसन्न होता है तथा सब लोगों के प्रति प्रीति होती है। किन्तु कभी-कभी शरीर में तेजवृद्धि होने से शुष्कता आ सकती है, उस समय मन स्थिर करके जप करने से शुष्क्ता जाती रहती है।

(७६) गोस्वामी प्रभु रोज शाम को एक गान करते थे, उसका शेष चरण यह है–

ऐसी भक्ति कर घट भीतर छोड़ कपट चतुराई।
सेवा बन्दन और अधीनता सहज मिले रघुराई।।

अतः यह सदा याद रखना।

(७७) उपास्य के प्रति भगवत्-बुद्धि रखने से उंनके प्रति यथार्थ वात्सल्य, सख्य और शान्त-भाव नहीं प्राप्त होता है। X X X भगवत् प्रतिमूर्ति के प्रति भाग्य ही से किसी-किसी के यह भाव उपजात होते हैं। किन्तु यह सर्वसाधारण के पक्ष में प्रशस्त मार्ग (royal road) नहीं है। X X X दास कहने का अर्थ सम्पूर्ण रूप से अधीन होना है। जो सम्पूर्ण रूप से दास हैं, वह प्रभु के अंग विशेष स्वरूप हैं X X X। इस प्रकार के दास के प्रभु ही नियन्ता हैं, वही आत्मा हैं, प्रभु से पृथक् कोई अस्तित्व ही नहीं है।

(७८) दृश्यमान् सभी ब्रह्म है और तुम (साधक) ब्रह्म के अधीन अंशमात्र हो। ब्रह्म ही तुम्हारी आत्मा है और तुम उसके दासमात्र हो, यह समझकर सभी जागतिक जीवों को ब्रह्म ही का प्रकाश-भाव मात्र समझकर अदोषदर्शी होकर सबकी (पिता, माता, स्त्री, पुत्र आदि) निर्लिप्त भाव से सेवा में संलग्न होना चाहिये। यह ब्रह्मलाभ करने का सहज उपाय है।

मृत्यु-शोक-शान्ति

(७९) जगत में कोई परेशान नहीं रह सकता है, सभी को यह देह छोड़नी होती है। विधाता ने सभी की इस संसार में रहने की समय-अवधि अवधारित कर दी है। अतः समय होने पर सभी को जाना होगा।

(८०) प्रत्येक के जन्म के साथ ही आयु और भाग्य स्थिरीकृत होता है, उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता है।

(८१) सभी को जाना होगा, किस समय उसकी पुकार पड़ेगी, कहा नहीं जा सकता है। इसलिये प्रत्येक को मृत्यु के लिये सर्वदा प्रस्तुत रहना चाहिये।

(८२) इस जन्म के कर्म शेष होने पर ही जीव को जाना पड़ता है, हम लोग मोहवश उसे रखने की चेष्टा करते हैं; किन्तु विधाता का नियम टाला नहीं जा सकता है और वही वास्तव में कल्याणजनक है, इसके विरुद्ध चेष्टा करना कल्याणजनक नहीं है। X X X मनुष्य देह धारण करके साधारणतः सभी संसाराश्रम ही में रहते हैं। X X X अब विचार करके देखो कि इसमें दुःख का भाग अधिक है। मनुष्य-जीवन अधिकतर क्लेशकर है, सुख का अंश तो अल्प ही है। आयु पूर्ण होने पर क्लेश के जीवन से छुटकारा मिल जाता है तो इसके लिये तुम इतना दुःख क्यों करते हो? यह सब विवेचना करके शोक- परित्याग करना चाहिये........जिससे कि उसकी आत्मा को सर्व प्रकार का सुख मिले, उसके लिये समुचित श्राद्ध कार्य करो।

(८३) सभी को समय आने पर जाना होगा। इसके लिये सर्वदा प्रस्तुत रहना चाहिये। इस प्रकार प्रस्तुत रहने से चित्त अपेक्षाकृत निर्मल रहता है एवं भजन में भी मन लगता है।

(८४) संसार में किसी का शरीर चिरस्थायी नहीं है, यह जानकर बुद्धिमान् लोगों को अपने व अन्य किसी के शरीर के प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। नियति तो भगवान के हाथ में है। जितने दिन रहना है, उतने दिन क्षणभंगुर वस्तु समझकर भी यत्न अवश्य करना है। इसके पतन पर दुःख करना बुद्धिमानी नहीं है। अपने शरीर

को भी क्षणभंगुर जानकर आसक्तिहीन होकर भजन में मन लगाना चाहिये।

(८५) खूब सचेष्ट होकर भजन करो, इससे अर्थ और वित्त सम्बन्धी मोह कम होने लगेगा। फिर स्त्री, पुत्र और परिवार से भी मोह कम होता जायेगा, उनके वियोग से कोई कष्ट नहीं होगा। फ़िर अपनी देह का मोह भी नहीं रहेगा और इस तरह मृत्युभय भी दूर हो जायेगा।

(८६) जिनको इस संसार में फिर से आने की इच्छा नहीं है, उनको प्रत्येक क्षण ही मृत्यु के लिये प्रस्तुत रहना उचित है। मृत्यु आने पर यह यह न लगे कि कुछ दिन और रह लेते। मृत्यु को वरण करो। मृत्यु के समय संसार की किसी वस्तु के प्रति भी लगाव रहने पर फिर से संसार में जन्म लेना होता है। अतएव यदि मोक्ष की इच्छा है तो ऐसे भाव से कर्म करो कि यह विचार ही न आए कि काम अधूरा रह गया।

(८७) श्रीमद्भगवद्गीता का ऊँचे स्वर से पाठ करने पर अन्तर का क्लेश कम होता है। यदि समझ में नहीं आता तो भी ऊँचे स्वर ही से पाठ करना। वियोगजनित दुःख इसी प्रकार से दूर होता है।

(८८) मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती है। बचपन, यौवन अथवा वार्द्धक्य सभी उसके लिये समान हैं। यद्यपि यह सब जानते हैं, किन्तु थोड़ा-बहुत सभी को इस विषय में मोह होता है। श्रीमद्भगवद्गीता मूल संस्कृत ग्रन्थ का ऊँचे स्वर में रोज पाठ करो, अर्थबोध चाहे न हो तो भी पाठ करो, यदि अन्य कोई ऊँचे स्वर में पाठ करे तो उसे श्रद्धापूर्वक सुनने से भी लाभ होता है।

गुरु

(८९) प्रत्येक प्रकार की विद्या-शिक्षा के लिये गुरु का प्रयोजन होता है, कोई भी विद्या सीखने के लिये दूसरों की सहायता लेनी ही

पड़ती है। ब्रह्मविद्या तो सभी विद्याओं में कठिन है तथा सभी विद्याओं का सार कहा जा सकता है। अतएव यह विद्या सीखने के लिये तो गुरु बहुत ही प्रयोजनीय है।

(६०) अध्यात्मतत्व सम्बन्धी ग्रन्थों का पाठ करने पर, मन-संयम करने का अभ्यास करने पर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं अनेक प्रकार की अलौकिक शक्ति लाभ कर सकते हैं, परन्तु मोक्षमार्ग-लाभ सद्गुरु की कृपा के बिना नहीं हो सकता है।

(६१) ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान सद्गुरु के आश्रय-बिना नहीं हो सकता है। भक्तिपूर्वक उनके चरणों मे आत्मसमर्पण करने पर हीं साधक को ब्रह्मप्रकाश होता है।

(६२) यह सदा स्मरण रखो कि मन के माफिक जो काम करते हैं, उसे साधुगण गँवार कहते हैं, कहा भी है–'मनमुखी गँवारा, गुरुमुखी भगवत् प्यारा' जो मनमुखी होकर कार्य करते हैं, उन्हें क्लेश ही होता है।

(६३) सद्गुरु से भक्तिबीज ग्रहणकर निष्ठापूर्वक भजन करने से ही यथार्थ कल्याण होता है।

(६४) गुरु वाक्य पालन करने से ही भगवान की कृपा होती जाती है।

(६५) जिनमें कर्त्तत्व-बुद्धि है, वह गुरु से केवल उपदेशमात्र ग्रहण करके अपने मन से साधन-भजन करके कृत-कृत्य होना चाहते हैं, वह भूल करते हैं।

(६६) जिन्होंने मुझे सद्गुरु रूप में ग्रहण करके आश्रय लिया है, वह इस (मेरे) शरीर में रहकर ही तुम्हारे गुरु हो गये तथा तुम्हारा कल्याण-विधान करेंगे। वह तुम्हारे समस्त कार्य देखते हैं तथा तुम

अपने चित्त की निर्मलता को भी सही परिमाण में अनुभव कर सकते हो। तुम्हारी समझ में यह भी आयेगा कि वह तुम्हारे सम्बन्ध का समस्त विधान कर रहे हैं। यह सब अन्तर की अनुभूति का विषय है।

(९७) गुरु केवल देह-विशेष से ही आबद्ध नहीं हैं, वह भगवान से अभिन्न हैं। जिस देह का अवलम्बन करके भगवान तुमको उपदेश करते हैं, वह देह तो चिर स्थायी नहीं है, उसके प्रति केवल गुरु-बुद्धि रखने से गुरुतत्व प्रकाशित नहीं होता। सब जीवों के प्रति भगवद्-बुद्धि से सेवा-भाव रखने से गुरुदेह के अवर्तमान में भी उसी के द्वारा गुरु-सेवा रूप में भगवत्-सेवा होती है।

(९८) गुरु ही परमात्मा है, यही गुरु-तत्व है। परमात्मा ही तुम्हारे उद्धार के लिये गुरु-रूप में अवतीर्ण हुए हैं।

मुक्ति

(९९) यदि वास्त्व में अपना कल्याण चाहिये तो सद्गुरु की शरण लेकर अपने को सम्पूर्ण रूप से उनके अधीन कर दो, बिना कुछ सोचे उनके आदेशों का पालन करो, ऐसा करने ही से कर्म-बन्धन से मुक्ति मिलेगी तथा देहान्त होने पर मोक्ष प्राप्त होगा।

(१००) अवधारित समय भजन करो तथा अन्य समय भगवत्-सेवा-बुद्धि से जीवों की सेवा करो। इस प्रकार करने से कर्म के प्रति कोई आसक्ति नहीं होती है एवं जीव मुक्ति-लाभ का अधिकारी होता है।

(१०१) यदि भगवान ने तुम्हें ग्रहण किया है तो संसार-बन्धन से मुक्ति होगी ही, लेकिन वह समय होने पर होगी। चंचल और उतावले होने से कोई लाभ नहीं है, वरन् उससे भगवद्-विधान के ऊपर विश्वासहीनता ही प्रकट होती है। अतएव श्रुति और महाजनों ने कहा है–

"न त्वरमानेन लभ्यः"

यथा समय तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा, चिन्ता की कोई बात नहीं है।

(१०२) तुम लोगों ही में किसी की एक जन्म ही में मुक्ति हो जायेगी तो दूसरों की तीन जन्म तक देरी हो सकती है। सबके पीछे ही हमारे गुरुदेव हैं। मेरी देह का अवलम्बन करके वही शिष्य बना रहे हैं।

(१०३) सद्गुरु ने तुमको ग्रहण किया है, इसका अर्थ यही है कि परम गति प्राप्त होगी। इस विषय में कोई संशय नहीं होना चाहिये।

(१०४) आरम्भ में उपास्य का तत्व गुरुमुख ही से ज्ञात होकर साधन करने से भक्ति उदय होती है। जिसके प्रति भक्ति होगी, वह उसके स्वरूप के सम्बन्ध में जानने के बाद ही होगी। तद्विषयक ज्ञान होने पर ही भक्ति संचारित होती है तथा भक्ति की पूर्णता होने पर ही भगवत्-दर्शन होता है।

(१०५) जीव गुण में विभु होने पर भी वृद्धावस्था में समस्त गुण प्रकाशित नही हो पाते हैं।.........साधनादि करने से जितनी देह निर्मल होती है, उतनी ही शक्ति प्रकाशित होती है। देहात्मबुद्धि सम्पूर्ण विलुप्त होंने पर ब्रह्मसाक्षात्कार लाभ हो सकता है। तब वह जो विशेष कार्य करना चाहें सभी कर सकते हैं।

(१०६) सब जीवों के कल्याण के लिये तथा मोक्षानन्द प्रदान करने के लिये ब्रह्म जो श्रीकृष्ण विग्रह के रूप में प्रकाशित हुए हैं, उनके चरणों में आत्म-समर्पण करके उनका ध्यान तथा सद्गुरु-प्रदत्त उनका नाम सर्वदा जप करके जो जीवन बिताते हैं, वह मोक्षाधिकारी होते हैं।

(१०७) श्री श्रीबाबाजी महाराज की निम्नलिखित उपदेशावली उनके एक शिष्य से संगृहीत की है :-

(क) किसी के प्रति मन में द्वेष नहीं रखो। द्वेष किससे करोगे? जीव-जगत सब ही तो वही हैं, वही तो सबकी अन्तरात्मा हैं।

(ख) संसार के सब काम सेवाबुद्धि और श्रद्धा-सहित करना। जब सभी में 'वह' हैं तो उनकी ही सेवा कर रहा हूँ, समझकर यही उनकी प्रत्यक्ष सेवा-पूजा है।

(ग) मनुष्य का जन्म और कर्म भगवत्इच्छा से नियन्त्रित व निर्दिष्ट होता है। अतः अपनी अवस्था में सन्तुष्ट रहकर उनका दासानुदास समझकर निष्काम सेवक होना चाहिये।

(घ) इसी आदर्श के ऊपर संसार-धर्म का पालन करना संसारी के लिये उच्चांग-साधन है।

(ङ) सागराभिमुखी नदी कभी सीधी बहती है? सर्प के समान ही उसकी गति होती है। इसी प्रकार भगवदभिमुखी जीवनधारा में भी अनेक उत्थान, पतन तथा समस्या रहती है। धीरज के साथ सब कुछ सहन करके चलने ही में पथ सुगम होता है।

(च) शरणागत होना ही सर्वोपरि है। आत्मोन्नति लाभ की इच्छा होने पर आत्मोसर्ग करना अनिवार्य है। पथ का अभाव नहीं है, कोई भी रास्ता पकड़कर चला जा सकता है। किन्तु सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् के शरणापन्न होने पर ही शान्ति मिलती है।

(१०८) १६३० ई. में फरीदपुर में दीक्षादान के बाद कुछ शिष्यों को नित्य-कर्म सम्बन्धीय उन्होंने जो उपदेश दिये थे, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

(क) साधारणतया एक बार सुबह व एक बार शाम को स्थिरचित्त होकर जप करना चाहिये। सुबह भोर में तथा सन्ध्या को जप करने का नियम है ही लेकिन यदि उस समय कुछ काम हो तो उसे समाप्त करके जप करना चाहिये।

(ख) बाकी समय चलते, फिरते, लेटते, बैठते (यहाँ तक कि शौच के समय में भी) नाम जप किया जा सकता है। इस अवस्था में माला से नहीं, वरन् मन ही मन करना चाहिये। समय को वृथा नष्ट नहीं करना चाहिये।

(ग) अशौचादि अवस्था में भी माला जपना नहीं छोड़ना चाहिये।

(घ) जप करते समय पैर में जूता नहीं हो यही उचित है, जप की मर्यादा इसी में है। किन्तु तुम लोगों के लिये तो यह सम्भव नहीं होगा, अतः अवस्था विशेष होने पर पैर में जूता रहने पर भी जप किया जा सकता है।

(ङ) अपने समस्त दैनिक कार्य सेवाबुद्धि ही से करना। किसी के मन को क्लेश मत देना। रात को सोने से पहल दिन भर के कामों के विषय में सोचकर देखना चाहिये कि सब काम सेवा-बुद्धि ही से किये हैं तथा मन ही मन जप भी चलता रहा है अथवा नहीं। यदि ऐसा नहीं कर पाए हो तो भगवान से प्रार्थना करो कि भविष्य में मैं अपना यह संकल्प पूरा कर सकूँ, ऐसा मुझे साहस व शक्ति दें। फिर भगवान का स्मरण करते हुए सो जाना।

✤ समाप्त ✤

श्रीकाठियाबाबा चैरीटेबिल ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित ग्रन्थ माला

1. श्रीनिम्बार्क साधनसार
2. ब्रजविदेही श्रीमहन्त स्वामी रामदास काठियाबाबाजी का जीवन चरित्र
3. ब्रजविदेही श्रीमहन्त स्वामी सन्तदास काठियाबाबाजी का जीवन चरित्र
4. ब्रजविदेही श्रीमहन्त स्वामी धनञ्जयदास काठियाबाबाजी का जीवन चरित्र
5. स्वामी धनञ्जयदास श्रद्धाञ्जलि शतकम्
6. श्रीश्रीरामदास काठियाबाबाजी
7. श्रीश्रीसन्तदास काठियाबाबाजी
8. श्रीश्रीधनञ्जयदास काठियाबाबाजी
9. श्रीनिम्बार्क वेदान्त संक्षिप्त सार
10. श्रीसन्तदास स्तवरत्नाञ्जलिः

प्राप्ति स्थान

श्रीकाठियाबाबा का स्थान

गुरुकुल मार्ग, वृन्दावन (उ. प्र.)

फोन नं. (0565) 442770

Website - www.kathiababa.com

E-mail - rbd@kathiababa.com